पाणिनीयशिक्षा

शिक्षाग्रन्थपरिचयात्मिकया विस्तृतया भूमिकया सरलया छात्रोपयोगिन्या
शोधोपलब्धिपूर्णया च वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्यया संस्कृतव्याख्यया
नारायण्याख्यया सरलया हिन्दीव्याख्यया च विभूषिता
पाणिनीयशिक्षासूत्रसमेतैर्विविधैः परिशिष्टैश्च सहिता

व्याख्याकारः
शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

विद्याभवन-प्राच्यविद्या-ग्रन्थमाला
८९

पाणिनीयशिक्षा

शिक्षाग्रन्थपरिचयात्मिकया विस्तृतया भूमिकया सरलया छात्रोपयोगिन्या
शोधोपलब्धिपूर्णया च वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्यया संस्कृतव्याख्यया
नारायण्याख्यया सरलया हिन्दीव्याख्यया च विभूषिता
पाणिनीयशिक्षासूत्रसमेतैर् विविधैः परिशिष्टैश् च सहिता

व्याख्याकारः

शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

ब्रह्ममीमांसाचार्यः, संस्कृतसाहित्याचार्यः, एम्.ए. (संस्कृते),
एम्.ए. (फिलोसफिविषये), विद्यावारिधिः (पीएच्.डी.),
वाचस्पतिः (डी.लिट्., वाराणसीस्थ-स.सं.वि.वि., १९९२)
(भारतवर्षान्तर्गत-हिमवत्खण्डस्थगण्डकीप्रदेशाभिजनः)

सम्पादकाः

आमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः शुक्लयजुर्वेदाचार्यः
प्रमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः धर्ममीमांसाचार्यः
सुमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः ब्रह्ममीमांसाचार्यः
(स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्बगृहपतिगृह्याः)

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी - 221 001

दूरभाष—2420404

Email - cvbhawan@yahoo.co.in

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

थस संस्करण 2017

मूल्य 175.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली - 110 007

दूरभाष—23856391

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, 21-ए. अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली

दूरभाष : 32996391

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० 1129, वाराणसी-221 001

दूरभाष-2335263

विषयानुक्रमणिका

भूमिकायाम्

१. शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र का सामान्य परिचय............................७

२. वेदाङ्गों का परिचय............................७

३. वेदवेदाङ्गों के अध्ययन-बोध-आचरण-प्रचारण में स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब का कार्य............................८

४. शिक्षा का विशेष परिचय............................१४

५. शिक्षा का (शिक्षाशास्त्र का) प्रयोजन............................१५

६. भारतवर्ष में शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र का उद्भव और विकास.........१६

(क) प्रातिशाख्य............................१७

(१) ऋग्वेदप्रातिशाख्य......१८ (३) शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य... २०

(२) तैत्तिरीयप्रातिशाख्य.... १९ (४) ऋक्तन्त्र.................. २१

(५) शौनकीयचतुरध्यायिका.... २१

(ख) शिक्षा नाम से लोक में ज्ञायमान ग्रन्थ............................२२

(ग) भारतवर्षीय शिक्षाविद्या का पाश्चात्त्यों में प्रभाव............................२२

७. भारतवर्षीय शिक्षाग्रन्थों का सङ्क्षिप्त विवरण............................२३

(अ) वेदशाखाविशेष-सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ............................२३

(क) ऋग्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ............................२४

(१) शैशिरीयशिक्षा............ २४ (३) पाणिनीयशिक्षा.............. २५

(२) शौनकशिक्षा.............. २४ (४) स्वराङ्कुशशिक्षा............ २५

(५) स्वरव्यञ्जनशिक्षा...... २५

(ख) शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ............................२५

(१) याज्ञवल्क्यशिक्षा.......... २६ (३) प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा....... २६

(२) वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा... २६ (४) सम्प्रदायप्रबोधिनी शिक्षा..... २६

(ग) कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ............................२७

(१) चारायणीयशिक्षा........ २७ (२) भारद्वाजशिक्षा.............. २७

(३) व्यासशिक्षा .... २७ (५) सर्वसम्मतशिक्षा २८
(४) कौहलीयशिक्षा .... २८ (६) पारिशिक्षा.................. २८
(७) कौण्डिन्यशिक्षा............ २८
(घ) सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ २८
(१) नारदीयशिक्षा.............. २९ (२) लोमशीयशिक्षा २९
(३) गौतमीयशिक्षा २९
(ङ) अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ............................ ३०
(१) माण्डूकीयशिक्षा.......... ३० (२) वर्णपटल.................... ३०
(३) दन्त्योष्ठविधि.............. ३०
(आ) सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ ३१
(१) आपिशलीयशिक्षासूत्र..... ३१ (४) षोडशश्लोकी-शिक्षा ३२
(२) पाणिनीयशिक्षासूत्र........ ३२ (५) कौण्डिन्यायनशिक्षा....... ३३
(३) चान्द्रवर्णसूत्र.............. ३२ (६) बकारविवेक................. ३४
८. **पाणिनीयशिक्षा का विशेष परिचय**.............................. ३५
९. **पाणिनीयशिक्षा की पूर्व व्याख्याएँ** ४१
१०. **पाणिनि मुनि का सङ्क्षिप्त परिचय**.............................. ४४
११. **पाणिनीय व्याकरण की विशेषताएँ**.............................. ४८
पाणिनीय व्याकरण वर्णनात्मक व्याकरण है.............................. ४८
पाणिनीय व्याकरण देशिक रूप से भी व्यापक भाषा का वर्णन (अन्वाख्यान) करता है ४९
पाणिनीय व्याकरण शिष्टप्रयुज्यमान अनादि अनपभ्रष्ट यज्ञिय भाषा का वर्णन (अन्वाख्यान) करता है.............................. ४९
पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसनीयता ५०
परम्परा में पाणिनीय व्याकरण की मान्यता ५२
१२. **प्रस्तुत व्याख्या की विशेषताएँ** ५४
१३. **उपसंहार**.............................. ५५
इस संस्करण में विशेष वक्तव्य.............................. ५६
पाणिनीयशिक्षामूलपाठः ५७

पाणिनीयशिक्षाश्लोकविषयानुक्रमणिका

(तत्तद्विषयप्रतिपादकपद्यसङ्ख्यानिर्देशयुता)

	श्लो.	पृ.
प्रतिज्ञा	१,२	६९
वर्णसङ्ख्या	३	७०
वर्णगणना	४,५	७३
वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया, वर्णभेदकारणगणना च	६,७,८,९,१०	७९
स्वरकृतवर्णभेदाः, कालकृतवर्णभेदाश् च	११	८३
पाठस्वर-गानस्वर-संवादः	१२	८६
वर्णस्थानगणना	१३	८८
ऊष्मगतिभेदाः	१४	८९
ऊष्मगतिविशेषविवेकः	१५	९१
वर्णविशेषस्थाननिरूपणम्	१६,१७,१८,२२	९२
ए-ओ-ऐ-औ-वर्णविचारः	१९	९९
संवृत-विवृतवर्णविशेषविचारः	२०-२१	१०३
अनुस्वार-यमा-ऽयोगवाहस्थानविशेषः	२२	१०६
अनुस्वारस्वरूपादिकम्	२३	१०७
अनुस्वाराद्युच्चारणे विशेषः	२४	१०९
वर्णोच्चारणे आवश्यकस्य कौशलस्य निरूपणम्	२५	१११
रङ्गवर्णोच्चारणनिरूपणम्	२६-२९	११२
कम्पस्वरोच्चारणवैशिष्ट्यम्	३०	११८
वर्णोच्चारणकौशलमाहात्म्यम्	३१	१२०
अधमपाठकलक्षणम्	३२	१२२
पाठकगुणविचारः	३३	१२५
पाठप्रकारविशेषाणां निषेधः	३४-३५	१२६

श्रौतसोमयागेषु त्रिषु सवनेषु वाचः स्थानविशेषणां प्रयोगस्य प्रकाराः ३६-३७ १२८
आस्यप्रयत्नाः (आभ्यन्तरप्रयत्नाः) ३८ १३३
अनुप्रदानम् (बाह्यप्रयत्नाः, स्वरयन्त्रप्रयत्ना वा) ३९-४० १३६
[वर्णपटलम् १४०
स्थानपरिचायकं चित्रम् १४१
करणपरिचायकं चित्रम् .... १४२]
वेदपुरुषाङ्गपरिचयः, साङ्गवेदाध्ययनमाहात्म्यं च ४१-४२ १४३
हस्तकार्यस्वरनिर्देशप्रकारः ४३,४४,४८ १५०
पदशय्याः (उदात्तादिस्वरमूलकपदप्रस्तारः) ४५ १५५
स्वरप्रस्तारोदाहरणम् ४६-४७ १५६
मात्राविशेषनिदर्शनानि ४९ १६१
कुतीर्थाऽऽगतवेदपाठनिन्दा (असद्गुरुनिन्दा) ५० १६२
सुतीर्थाऽऽगतवेदपाठप्रशंसा (सद्गुरुप्रशंसा) ५१ १६३
स्वरवर्णादिविकलोच्चारणे हानिः ५२-५३ १६५
हस्तस्वरनिर्देशस्याऽऽवश्यकता ५४-५५ १७२
शिक्षाशास्त्रगुरुपरम्परा, पाणिनिगौरवं च ५६-५९ १७५
पाणिनीयशिक्षापठनाऽधिकारि-माहात्म्यादिकम् ६० १८०
वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्यव्याख्याकारपरिचयः १८५

परिशिष्टे

१. प्रायेण शिक्षाग्रन्थेषु स्थितानि कति चन सुभाषितानि १९५
२. शिक्षाशास्त्रसम्बद्धाः के चन पारिभाषिकाः शब्दाः सव्याख्याः (सङ्क्षिप्त हिन्दी अर्थ सहित) २०६
३. पाणिनीयशिक्षासूत्रम् २२९
४. श्लोकपादानुक्रमणिका २४९
५. आधारग्रन्थाः सहायकग्रन्थाश् च २५३

भूमिका

१. शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र का सामान्य परिचय

आजकल शिक्षाशास्त्र कहने से लोग शिक्षणविधिसम्बन्धी शास्त्र समझते हैं। इस को अङ्ग्रेजी के एजुकेशन (Education) शब्द का अनुवाद मानते हैं। किन्तु हम यहाँ पर शिक्षाशास्त्र शब्द को हमारे प्राचीन छह वेदाङ्ग शास्त्रों में से प्रथम वेदाङ्ग शास्त्र के वाचक के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं। हमारे विचार में शिक्षणविधिसम्बन्धी शास्त्र को आधुनिक ही नाम "शिक्षणशास्त्र" देना और शिक्षाशास्त्र नाम हमारे प्राचीन परम्परागत शिक्षारूप शास्त्र के लिए सुरक्षित रखना उचित है।

२. वेदाङ्गों का परिचय

वेदाङ्ग छह माने गए हैं। उनका प्राचीनतम क्रमबद्ध उल्लेख अथर्व-वेदियों के मन्त्रोपनिषद्रूप मुण्डकोपनिषद् में मिलता है। यथा—

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवाऽपरा च। तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (१।१।४–५)।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में वेदाङ्गों के क्रम में कुछ उलटफेर है (२।४।१।११)। वहाँ कहा गया है— **"षडङ्गो वेदः, छन्दःकल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं शीक्षा च्छन्दोविचितिरिति"।**

कातीय-गोत्रचरणपृच्छा-प्रतिज्ञासूत्र में भी वेदाङ्गों का क्रमबद्ध उल्लेख किया गया है— **"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षडङ्गानि"** (कण्डिका ४, सूत्र ४)।

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पुराने माने गए मौर्यकाल के ग्रन्थ कौटलीय अर्थशास्त्र में भी मुण्डकोपनिषत् के ही क्रम से वेदाङ्गों का उल्लेख है, जैसे– **"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर् ज्योतिषमिति चाऽङ्गानि"** (१।३)।

वेदाङ्गों का उल्लेख श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में यत्रतत्र मिलता है।

सभी वेदाङ्ग वस्तुतः मुनियों के द्वारा वेदों से ही उद्धृत किए हुए माने जाते हैं। इस बात को ऋग्वेद-प्रातिशाख्य-वर्गद्वय-वृत्ति में स्पष्ट किया गया है। पाणिनीयशिक्षा की शिक्षाप्रकाशव्याख्या में भी यह बात प्रतिपादित है।

मन्दमति लोगों को वेद के स्वरूप, प्रयोग, अर्थ और रहस्य को अच्छी तरह से समझाने के हेतु ही मुनियों ने ये वेदाङ्गरूप सोपान बनाए हैं। यह बात यास्क के निरुक्त में आए हुए कथन से स्पष्ट रूप में ज्ञात होती है, यथा–

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस् तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः, उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर् वेदं च वेदाङ्गानि च। (१।६।४)।

ऊपर उद्धृत वचनों से यह स्पष्ट है कि वेदाङ्ग छह हैं, और वे हैं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दश्शास्त्र और ज्योतिष।

३. वेदवेदाङ्गों के अध्ययन-बोध-आचरण-प्रचारण में स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब का कार्य

वैदिक वाङ्मय का भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में प्रमुख स्थान है। इसी में भारतवर्षनिवासी लोगों का जीवनदर्शन आधृत है। वर्तमान परिस्थिति में वैदिक वाङ्मय का यथार्थ ज्ञान की दुर्लभता दीखती है। इसी कारण से स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से वेद-वेदाङ्ग-वाङ्मय के अध्ययन, बोध, आचरण और प्रचारण में विशेष प्रयास हो रहा है।

इस प्रसङ्ग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दश्शास्त्र और ज्योतिष इन छह अङ्गों की सहायता से वेद का अध्ययन करके वेद के स्वरूप, अर्थ, प्रयोग और रहस्य को समझने, यथाशक्ति प्रयोग में लाने और प्रचार करने में स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब क्रियाशील है।

वेदाङ्गों में शिक्षा प्रथम स्थान में है। शिक्षा के ग्रन्थ बहूत उपलब्ध हैं। किन्तु सम्पूर्णाङ्ग ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। हम ने शिक्षा वेदाङ्ग में पर्याप्त अध्ययन करके भारतवर्ष के ५००० वर्ष के संस्कृतवाङ्मय के इतिहास में शिक्षाशास्त्र के अद्वितीय ग्रन्थ के रूप में **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा**-नामक सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ निष्पन्न किया है और डिमाई साइज का लगभग ९०० पृष्ठ का ग्रन्थ संस्कृत में प्रकाशित किया है (२०४९ वै.)। इस में मूल विषय ११५८ कारिकाओं में वर्णित हैं और विस्तृत रूप में प्रमाणों को प्रस्तुत करके व्याख्या भी की गई है। इस विशालकाय ग्रन्थ के परिशिष्ट में आज तक अमुद्रित चारायणीयशिक्षा, पारिशिक्षा जैसे कुछ शिक्षाग्रन्थ भी पहली वार मुद्रितप्रकाशित किए गए हैं। देश्य भाषा के प्रभाव से संस्कृत के दीर्घ अवर्ण, अन्य दीर्घ स्वरवर्ण, ऋकार, लृकार, एकार, ओकार, अनुस्वार, विसर्ग, ञकार, वकार इत्यादि वर्ण तथा क्ष, ज्ञ इन संयुक्ताक्षरों की उच्चारणप्रक्रिया का ज्ञान और अभ्यास संस्कृताध्येताओं के लिए भी दुर्लभ हो गया है, जिनका शुद्ध उच्चारण अत्यावश्यक है। अत एव इस विषय में प्रातिशाख्यादि ग्रन्थों का पर्याप्त अनुसन्धान कर उक्त वर्णों में विशेष प्रकाश डाला गया है। वेद-शाखाविशेष का उच्चारण उस शाखा के प्रातिशाख्य और शिक्षाग्रन्थों के अनुसार होना आवश्यक होता है। विविध वेदशाखाविशेषों में पाये जाने वाले यमवर्ण, नासिक्यवर्ण, अन्य विद्वानों से अचर्चित किड्किडाकारवर्ण इत्यादि के साथ विविध शाखाओं की उच्चारणगत विशेषताओं पर भी प्रातिशाख्यादि शिक्षाग्रन्थों के प्रमाणों को रखकर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्राच्य तथा पाश्चात्त्य अनुसन्धाताओं की त्रुटियों का भी सप्रमाण निर्देश किया गया है। इस ग्रन्थ में सन्तानाध्याय में संहिताकार्यविषयक कतिपय स्थलों में पाणिनि के, कात्यायन के और पतञ्जलि के प्रतिपादनों में भी न्यूनताएँ और त्रुटियाँ भी दिखाई गई हैं। **पाणिनीयशिक्षा** की वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्य व्याख्या भी १९९८ क्रैस्ताब्द में ही प्रकाशित करवाई गई थी। **नारदीयशिक्षा** की विशिष्ट व्याख्या भी चौखम्बा

विद्याभवन से प्रकाशित करवाई गई है (२००२ क्रै.)। नेपाली भाषा में भी **नेपाली वर्णोच्चारणशिक्षा** नाम का ग्रन्थ रचा गया है और नेपाल के साझाप्रकाशन से प्रकाशित (२०३१ वै.) भी करवाया गया है।

वेदाङ्ग कल्पशास्त्र में भी गम्भीर अनुसन्धान किया गया है और भारतवर्ष के उत्तरभाग में रहनेवाले अधिकांश ब्राह्मणों की स्ववेदशाखारूप माध्यन्दिनीय-वाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदशाखा की नित्यसदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धपद्धतियों में स्वशाखासूत्र की प्रतिकूल बातें पाकर उनको शुद्ध करने के लिए मार्गप्रदर्शनार्थ **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायिनां निरग्निकानां द्विजानां नित्यसदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि-वैदिकमन्त्रसङ्ग्रहः** नाम का विशिष्ट भूमिका और टिप्पणियों से युक्त ग्रन्थ भी बनाया गया है और प्रकाशित भी किया गया है (२०५२ वै.)। इस ग्रन्थ में स्वशाखावेदसूत्रानुसार ही धार्मिक कर्म की कर्तव्यता पर विशेष विवेचन भी किया गया है। प्रचलित सन्ध्योपासनपद्धतियों की अस्तव्यस्तता को देखकर **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायिनां द्विजानां कात्यायन-त्रिकण्डिक-स्नानसूत्रोक्ता सन्ध्योपासनपद्धतिः** नाम का ग्रन्थ भी विस्तृत विवेचनात्मक प्रस्ताविका के साथ रचा गया है और चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित करवाया गया है (२००० क्रै.)। कर्मकाण्ड की अन्य पद्धतियाँ भी प्रकाशित करवाने की योजना है। धर्म का मूल वेद और वेद के ज्ञान का और संरक्षण का मूल ब्रह्मयज्ञ है। किन्तु वर्तमान काल में ब्राह्मणों में भी ब्रह्मयज्ञ के विषय में चेतना की न्यूनता देखी जाती है। अतः हम ने विवेचनात्मक विस्तृत प्रस्ताविका के साथ में **ब्रह्मयज्ञपद्धति** नाम का ग्रन्थ भी बनाया है और चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित भी करवाया है (२००४ क्रै.)। वैदिक यज्ञ के विषय में भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब में विस्तृत अध्ययन-मनन हुआ है। वैदिक सनातन वर्णाश्रमधर्म का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत परिचय देने के लिए नेपाली भाषा में **वैदिक धर्म मूल रूपमा** नाम का ग्रन्थ प्रकाशित भी हुआ है (द्वि.सं., २०६२ वै.)। इस में हम ने चार वेद, छह वेदाङ्ग, छपन्न स्मृतियाँ, अठारह महापुराण, रामायण, महाभारत इन शास्त्रों का विवेचनात्मक सार देने का प्रयास किया है और उन ग्रन्थों से शतशः वचन उद्धृत करके सप्रमाण विषयविवेचन किया है। इस ग्रन्थ

को संस्कृत में और हिन्दी में भी प्रस्तुत करने की योजना है। वैदिक कर्मकाण्ड में स्वशाखासूत्र की व्यवस्था में ध्यान आकृष्ट करने के लिए और गरुडपुराण (प्रेतकल्प) के विषय में लोक में व्याप्त भ्रम को हटाने के लिए भी विस्तृत भूमिका के साथ हिन्दी अनुवाद भी देकर ४९ अध्यायों वाला मूल **गरुडपुराण-प्रेतकल्प** ग्रन्थ भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से प्रस्तुत हुआ है और चौखम्बा विद्याभवन ने इस को प्रकाशित किया है (२००४ क्रै.)।

वेदाङ्ग व्याकरणशास्त्र में भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब में गम्भीर अध्ययन-मनन हुआ है। भारतवर्ष के महान् भाषाविज्ञ यास्क-पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि-वररुचि-भर्तृहरिप्रभृति के हजारों वर्षों के भाषाव्याकरणचिन्तन से परिष्कृत व्याकरणदर्शन का तिरस्कार करके बनाए गए नेपाली भाषा के व्याकरण की (हिन्दी भाषा के व्याकरण की भी लगभग ऐसी ही अवस्था है) समीक्षा करके **जिम्दो नेपालि भासा** (प्रथम खण्ड [२०३० वै.] और द्वितीय खण्ड [२०३७ वै.]) नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। अत्यावश्यक वार्तिक, इष्टि, गणपाठ और अन्य चान्द्र, कातन्त्र इत्यादि व्याकरण के आवश्यक विषय भी समाविष्ट करके पाणिनीय व्याकरण की अष्टाध्यायी का अभ्यास करने योग्य पाठ का वर्षों के परिश्रम से सम्पादन भी किया गया है। इस की वेदपरक विशिष्ट व्याख्या करने की योजना है।

वेदाङ्ग निरुक्तशास्त्रअन्तर्गत निरुक्त-निघण्टुस्थानीय **वेदभाषानिघण्टु** की अमरकोश की शैली में रचना की जा रही है। उसमें लगभग ३,००० श्लोक बनाए जा चुके हैं, ग्रन्थ को पूर्ण बनाने का काम चल रहा है। उसके निदर्शन के रूप में भूलोककाण्ड के देववर्ग और ब्रह्मवर्ग को स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब ने प्रकाशित किया है (२०५० वै.)। इस भाग में भूलोकान्तर्गत माने गए देवता, गोत्र, प्रवर, आश्रमधर्म, वैदिक संस्कार, दर्शपूर्णमास-पशुबन्ध-सोमयागादि वैदिक यज्ञ इत्यादि से सम्बद्ध पदपदार्थों का अनुष्टुप्छन्द के श्लोकों में सङ्कलन किया गया है।

वेदाङ्ग छन्दश्शास्त्र का भी स्वाद्ध्यायाशालाकुटुम्ब में गम्भीर अध्ययन हुआ है। वर्तमान काल में पण्डितों से भी छन्द और वृत्त के भेद में भी ध्यान नहीं दिए जाने से जो अशास्त्रीय व्यवहार हो रहा है, पण्डित लोग भी इन्द्रवज्रा छन्द

इत्यादि कह देते हैं, जब कि शास्त्रीय रूप में त्रिष्टुप् छन्द में इन्द्रवज्रा वृत्त इत्यादि कहना चाहिए, उसके संशोधन के लिए नेपाली भाषा में **वृत्तनक्षत्रमाला** नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है (२०२८ वै.)।

वेदाङ्गज्योतिष में भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब में गम्भीर अध्ययन-मनन हुआ है। वेदाङ्गज्योतिषशास्त्र का आजकल उपलब्ध लगभग ३४०० वर्ष पुराना मूल ग्रन्थ लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष है। इस की वर्षगणना तपश्शुक्ल-प्रतिपदा से अर्थात् वैदिक माघशुक्लप्रतिपदा से प्रारम्भ होती है। वैदिक माघ-शुक्लप्रतिपदा अर्वाचीन राशिपरक मासपरिभाषा की माघशुक्लप्रतिपदा नहीं है। वैदिक वर्ष सौरचान्द्र है, अयन भी सौरचान्द्र हैं। ऋतु भी सौरचान्द्र हैं। वैदिक अधिकमास केवल अयनान्त में आषाढ में और पौष में ही होता है, जिस किसी मास में नहीं। इस विषय में वाराणसी के सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय की सारस्वती सुषमा पत्रिका में **"वेदाङ्गज्योतिषं युगवर्षायनर्तुमासाधिमासादिगणना च"** इस नाम का (५० वर्ष, ३-४ अङ्क, २०५२ वै.) और **"जैमिनीयधर्ममीमांसा-निर्णीतानां वैदिककृत्यकालानां चान्द्रमाननियतत्वम्"** इस नाम का लेख (५१ वर्ष, १-४ अङ्क, २०५३ वै.) तथा वाराणसी के ही सन्मार्ग पत्रिका में (१९९८, अप्रैल २,३) **"लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष और नववर्षारम्भ"** नाम का लेख भी हम ने प्रकाशित करवाया था। अब तो स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब का **यजुर्वेदिनां परम्परया-ऽऽगतं विस्तृतसंस्कृतभूमिकया सोमाकरभाष्येण कौण्डिन्न्यायनव्याख्यानेन च सहितं लगधमुनिप्रोक्तं वेदाङ्गज्योतिषं सङ्क्षिप्तहिन्दीभूमिका-हिन्द्यनुवादादियुतं विविधपरिशिष्टभूषितं च** नाम का ग्रन्थ भी चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित हो चुका है (२००५ क्रै.)। वर्तमान काल में प्रचलित सिद्धान्तज्योतिषग्रन्थों के और इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के सिद्धान्त में बडा अन्तर है। इस में ध्यान देना चाहिए और प्रचलित पञ्चाङ्गपत्रों में सिद्धान्तपक्ष के विषयों के साथ में वेदाङ्गपक्ष का पञ्चवर्षात्मक युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और तिथ्यादि का भी समावेश कर इस महान् ग्रन्थ के मूल वैदिक सिद्धान्त के पुनरुज्जीवन में सहायता करना भारतवर्षीय पञ्चाङ्गकारों का भी कर्तव्य है। नेपाल में विगत एक दशक से भी अधिक समय से इस विषय में समाचारपत्रों और अनुसन्धानपत्रों में अनेक

निबन्धों को प्रकाशित कर इस विषय में प्रकाश डालने का और सम्बद्ध पक्ष में जागरण लाने का काम किया जा रहा है। पञ्चाङ्ग-सुधार-समिति के सदस्य-सचिव एवम् प्रसिद्ध ज्योतिषी निर्मलचन्द्र लाहिडी ने प्रचलित पञ्चाङ्ग के राशि-सापेक्ष मासपरिभाषानुसार की माघशुक्लप्रतिपदा को ही वेदाङ्गज्योतिषोक्त तपःशुक्लप्रतिपदा अथवा माघशुक्लप्रतिपदा मान कर उसी दिन में वेदाङ्गपक्ष का वर्षारम्भ होने की बात अपने एफेमरिज में उल्लेख करने की परम्परा चलाई है। किन्तु वेदाङ्गज्योतिषानुसार तो उस से कभी एक मास पूर्व और कभी दो मास पूर्व ही तपःशुक्लप्रतिपदा अर्थात् वैदिक माघशुक्लप्रतिपदा पडती है और उसी दिन से वेदाङ्गपक्षीय नववर्ष का आरम्भ होता है। इन सब विषयों का प्रभूत विवेचन वेदाङ्गज्योतिष के उक्त व्याख्यान में और उसकी भूमिका में किया गया है। भारतसम्प्रशासन से नियुक्त पञ्चाङ्ग-सुधारसमिति के मेघनाद साहा, निर्मलचन्द्र लाहिडी प्रभृति बडे वैज्ञानिक खगोलविद् और शङ्करबालकृष्ण-दीक्षित, बालगङ्गाधरतिलक, वेङ्कटेश बापूजी केतकर, गोविन्द आप्टे, व़ेबेर, थिबो इत्यादि प्राच्य-पाश्चात्त्य अनुसन्धाता जिस वैदिक कालगणनापद्धति को ठीक-ठीक नहीं समझ सके थे उस वेदाङ्गज्योतिषोक्त वैदिक कालगणना-पद्धति को इस कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान में अच्छी तरह स्पष्ट किया गया है।

वैदिक ब्रह्मविचार को मूल वैदिक प्रमाणों के आधार पर ही मूल वैदिक रूप में ही प्रस्तुत करने के लिए **ब्रह्ममीमांसासूत्रवृत्ति** भी प्रस्तुत की गई है। भूमिका में दर्शनशास्त्रपरिचय, भारतवर्षीय प्रमुखदर्शनों का विवरण, ब्रह्ममीमांसाग्रन्थ-परिचय, ब्रह्ममीमांसासूत्रग्रन्थाध्ययनाधिकारिनिरूपण तथा वेदान्तशास्त्र के ५८ ग्रन्थकारों का परिचय भी समाविष्ट है। इस में सूत्रार्थप्रदर्शन, अधिकरणरचना, कारिकाओं में अधिकरण का सार और हिन्दी सूत्रार्थ भी दिया गया है। इस ग्रन्थ को भी चौखम्बा विद्याभवन ने ही प्रकाशित किया है (२००२ क्रै.)।

संस्कृतभाषाशिक्षण के लिए **व्यावहारिकं संस्कृतम्** नाम की पाठ्य-पुस्तकमाला के अन्तर्गत तीन पुस्तक स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से प्रकाशित किए गए हैं (२०५०, २०५३, २०५८ वै.)। इन सचित्र पाठ्यपुस्तकों में स्वाभाविकता का अनुपालन कर सरलता से भाषाशिक्षण की वैज्ञानिक विधिअनुरूप क्रमबद्ध

रूप में संस्कृतभाषाशिक्षणार्थ विषयवस्तु प्रस्तुत किया गया है। इस में संस्कृत भाषा के उच्चारण में शुद्धता लाने के लिए भी सोदाहरण मार्गनिर्देश किया गया है।

शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य, याज्ञवल्क्यशिक्षा इत्यादि शिक्षाग्रन्थों के अनुसार माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशाखा की शुक्लयजुर्वेदसंहिता का परिशुद्ध सुलभ संस्करण उपलब्ध करवाने की भी योजना है, जो आजतक कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

४. शिक्षा का विशेष परिचय

ऊपर दिए हुए मुण्डकोपनिषद् के क्रम से स्पष्ट है कि शिक्षा वेदाङ्गों में प्रथम है। वेद वर्णराशिरूप हैं। वर्ण वेद के सब से छोटे और प्रारम्भिक अवयव हैं। शिक्षा वर्णों के उच्चारण से सम्बन्ध रखती है। इस हेतु शिक्षा का वेदाङ्गों में प्रथम होना स्वाभाविक है। शिक्षाशास्त्र व्याकरणशास्त्र का भी पूर्वावश्यक तत्त्व है। इस बात को पाणिनीयव्याकरण के भाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी स्वीकारा है। वे कहते हैं– **"व्याकरणं नामेयमुत्तरा विद्या। सोऽसौ छन्दश्शास्त्रेष्वभिविनीत उपलब्ध्याऽधिगन्तुमुत्सहते"** (१।२।३२)। इस में **"छन्दश्शास्त्रेषु"** का अर्थ नागोजिभट्ट ने **"प्रातिशाख्यशिक्षादिषु"** किया है। अन्य उपपत्ति से भी शिक्षाशास्त्र व्याकरण से पहले आनेवाला शास्त्र माना जा सकता है। इस विषय में उपपत्ति कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के उपबन्ध में (पृ.६–८) और शिक्षा की परिभाषा की व्याख्या में (पृ.९०–९१) दी गई है। जिज्ञासु पाठक वहीं देखें।

शिक्षाशास्त्र के लक्षण विद्वानों ने अपनेअपने ढङ्ग से बताए हैं। शङ्करभगवत्पाद ने तैत्तिरीयोपनिषद् के **"शीक्षां व्याख्यास्यामः"** इस वचन के व्याख्या में **"शिक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्"** कहा है। राजशेखर कवि ने काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में **"वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिर् निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षा आपिशलीयादिका"** ऐसा कहा है। आपस्तम्बधर्मसूत्र की व्याख्या में (२।४।१।११) हरदत्त ने **"शीक्षा वर्णानां स्थानप्रयत्नादिकमध्ययनकाले कर्मणि च मन्त्राणामुच्चारणप्रकारं शिक्षयतीति, पृषोदरादित्वाद् दीर्घः"** ऐसा बोला है। ऋग्वेदव्याख्याभूमिका में सायण ने **"वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा

शिक्षा" ऐसा शिक्षा का लक्षण कहा है। कातीय-गोत्रचरणपृच्छाप्रतिज्ञासूत्र में **"तत्र शिक्षा नाम स्वरसंस्कार-लघुगुर्वनुनासिकाऽनुस्वार-पिण्डविसर्जनीय-दन्त्यमूर्धन्य-तालव्यकण्ठ्योष्ठ्ययमाऽनुस्वाराणां यज्ञस्वरूपयज्ञस्वरसंस्कारयोश् चोच्चारणार्थं शिक्षा"** ऐसा कहकर शिक्षारूप वेदाङ्ग का परिचय दिया गया है (पञ्चविंश कण्डिका, सूत्र १)। किन्तु तैत्तिरीयोपनिषद् के **"शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः"** इस कथन के अनुसार ही शिक्षा का लक्षण बताना और समझना उत्तम है। तदनुसार "जिस शास्त्र में अकार-ककारादि **वर्ण**, उदात्त-अनुदात्तादि **स्वर**, ह्रस्व-दीर्घादि **मात्रा**, स्थान-करण-प्रयत्ना-ऽनुप्रदानरूप **बल**, उच्चारणमाधुर्यादिरूप **साम**, और **सन्तान** अर्थात् वर्णप्रश्लेष-विकार-लोपा-ऽऽगमादिरूप पदसन्धि और तत्सम्बद्ध अन्य विषय निरूपित होते हैं वह शास्त्र **शिक्षा** या **शिक्षाशास्त्र** है" यह शिक्षा का लक्षण समुचित है। वर्ण, स्वर इत्यादि के विषय में अधिक बात मूल ग्रन्थ की व्याख्या में ही देखिए। कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में कहा गया ही है–

वर्णानां च स्वराणां च मात्राया बलसाम्ययोः।
पदान्ताऽऽद्योः संहिताया विचारो यत्र लभ्यते॥

तत्सम्बद्धाश् चाऽपरेऽपि विषया यत्र वर्णिताः।
भवन्ति सा हि प्रथमा विद्या शिक्षेति भाषिता॥१।२–३॥

५. शिक्षा का (शिक्षाशास्त्र का) प्रयोजन

शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र का प्रयोजन वेद की उच्चारणशुद्धि की रक्षा करना, यज्ञादि में वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए वेदाध्येताओं को समर्थ बनाना और मन्त्रों का यथोक्त फलदायित्व सुरक्षित करना है। यह बात पाणिनीय-शिक्षा, चारायणीयशिक्षा, नारदीयशिक्षा और पाणिनीयव्याकरणभाष्य में भी आए हुए अधोनिर्दिष्ट वचन से स्पष्ट होती है–

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

सामान्य संस्कृतप्रेमियों के लिए संस्कृत का शुद्ध आदर्श उच्चारण सिखाना और भाषाशास्त्रियों के लिए वैदिक लौकिक संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं के वर्णों का मौलिक यथार्थ ज्ञान देना भी शिक्षा का प्रयोजन माना जा सकता है।

६. भारतवर्ष में शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र का उद्भव और विकास

भारतवर्ष में सभी विद्याओं के मूल उद्भवस्थान वेद भगवान् ही माने जाते हैं। वेद के मन्त्रसंहिता और ब्राह्मण दो प्रधान विभाग हैं। मन्त्रसंहिता में मन्त्रों का सङ्ग्रह है। ब्राह्मण में कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड हैं। कर्मकाण्डभाग का विशेष नाम नहीं है, उसको ब्राह्मण ही कहते हैं। ज्ञानकाण्ड को आरण्यक वा उपनिषद् कहते हैं। कहीं आरण्यक और उपनिषद् संयुक्त नाम भी प्रयुक्त होता है, यथा बृहदारण्यकोपनिषद्। उसी ग्रन्थ को अरण्य में पढे-पढाए जाने से आरण्यक और अविद्या को हटाकर ब्रह्म तक पहुँचाने वाली विद्या के प्रतिपादक होने से उपनिषद् कहा जाता है। कोई ज्ञानकाण्ड के उपासनापरक भाग को आरण्यक और ज्ञानपरक भाग को उपनिषद् मानते हैं। किन्तु उपनिषद् आरण्यक में ही अन्तर्भूत होती है। इसी हेतु मनुस्मृति-महाभारत-प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में आरण्यक के नाम से ही उपनिषदों को उल्लिखित किया हुआ मिलता है।

शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों के बीज वेद के मन्त्रसंहिताओं में भी मिलते हैं। ब्राह्मणग्रन्थ से तो शिक्षा के सिद्धान्तसूत्र चुनकर लिए गए ही हैं। शिक्षा के प्रधान विषयों का निर्देश करने वाला **"शीक्षां व्याख्यास्यामः"** इत्यादि प्रकरण तैत्तिरीयारण्यक का ही है। छान्दोग्योपनिषद् में (२।२२।३–५) स्वरों का महाप्राण-प्रयत्नत्व का विधान है। मुण्डकोपनिषद् में वेदाङ्गों में शिक्षा का प्राथम्येन उल्लेख है। इस विषय में विस्तृत विवरण के लिए जिज्ञासु पाठक संस्कृत में **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा** के उपबन्ध में सम्बद्ध प्रकरण पढें। अथवा सिद्धेश्वर वर्मा का *'क्रिटिकल् ष्टडिज् इन् द फनेटिक् अब्जर्वेशञ्ज् अव् इण्डियन् ग्रमेरियञ्ज्'* नाम का ग्रन्थ वा उसका हिन्दी अनुवाद पढें। वेद-षडङ्गों का निर्देश माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण में **"अङ्गजिद्ब्राह्मणेषु"** इस शब्द से (११।४।३।२०) किया गया है। **"षडङ्गान्यङ्गानि"** इस वाक्य से षड्विंशब्राह्मण में (५।७।२) भी वेदाङ्गों का उल्लेख किया गया है। केनोपनिषद् के **"वेदाः सर्वाङ्गानि"** (४।८)

इस वाक्य की शङ्कर की प्रथम प्रकार की व्याख्या अनुपपन्न होने से वहाँ वेदाङ्गों का उल्लेख मानना तो ठीक नहीं लग रहा है। अथर्ववेद के गोपथब्राह्मण में **"षडङ्गविदस् तत् तथाऽधीमहे"** (१।१।२७) इस वाक्य में वेद के छह अङ्गों का उल्लेख है। वहाँ शिक्षासम्बन्धी वर्ण, अक्षर, मात्रा, स्थान, करण, उदात्त, स्वरित इत्यादि पारिभाषिक शब्द भी मिलते हैं **(१।१।२४–२७)**।

मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद मुख्य **भारतवर्षीय मनीषियों** के मत में अनादि हैं। इन के आविर्भाव के काल का कोई निश्चय नहीं है। पाश्चात्त्य लोग और उनके अनुयायी विचारक वेदों को आज से ६००० से ३००० वर्ष पूर्व तक के मानते हैं। पाश्चात्त्य विचार के अनुयायी कोई भारतवर्षीय विचारक वेद को ६००० वर्ष वा ८००० वर्ष वा ९००० वर्ष वा २७००० वर्ष वा ७७००० वर्ष पुराना भी बताते हैं। वस्तुतः आधुनिक विचारकों के मत से भी वेद प्रागैतिहासिक काल के होने से उनके काल का निर्णय अशक्य है।

श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में वेदाङ्ग शब्दका उल्लेख अनेक स्थल पर मिलता है। शिक्षा वेदाङ्गों में प्रथम है यह बात ऊपर लिखी ही जा चुकी है। शिक्षा में अक्षरों का जो लक्षण और जैसा उच्चारण वर्णित है उसी प्रकार के अक्षरों के उच्चारण से युक्त वेदमन्त्रों के पाठ किए जाने के उल्लेख पुराण, रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि ग्रन्थों में अनेक स्थल में मिलते हैं।

(क) प्रातिशाख्य–

ऋग्वेदप्रातिशाख्यादि प्रातिशाख्यग्रन्थ, जो **पार्षद** नाम से भी व्यवहृत होते हैं और पाणिनि अथवा यास्क से भी प्राचीन हैं, शिक्षा के ही ग्रन्थ हैं। उपलब्ध प्रातिशाख्यों में ऋग्वेदप्रातिशाख्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य (वाजसनेयिप्रातिशाख्य), ऋक्तन्त्र, और शौनकीयचतुरध्यायिका प्रधान हैं। प्रातिशाख्यों को कतिपय प्राचीन अर्वाचीन पण्डित वैदिक व्याकरण मानते हैं। वस्तुतः प्रातिशाख्य शिक्षाग्रन्थ ही हैं। इस विषय में यह बात स्मरण में रहना चाहिए कि व्याकरण का मुख्य विषय वाक्यगत क्रिया-कारक-विभजन और

पदगत प्रकृति-प्रत्यय-विभजन प्रातिशाख्यों में नहीं आता हैं। इस हेतु प्रातिशाख्य व्याकरण नहीं हैं। पदान्त-पदादि-संहिता तो तैत्तिरीयारण्यक के वचन के प्रमाण से शिक्षा का ही विषय है। इस विषय में अधिक जिज्ञासु पाठक कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षा के उपबन्ध में **"प्रातिशाख्यानां शिक्षाग्रन्थत्वम्"** प्रकरण (पृ.१३-१९) को देखें। प्रातिशाख्यों में तत्तद्वेदशाखा से सम्बद्ध शिक्षाशास्त्रीय विषयों का विस्तृत और सूक्ष्म प्रतिपादन किया गया है।

वर्तमान काल में पाए जाने वाले प्रातिशाख्यों का सङ्क्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

(१) **ऋग्वेदप्रातिशाख्य (ऋक्प्रातिशाख्य)**— इस प्रातिशाख्य के रचयिता शौनक हैं। यह प्रातिशाख्य अनेकवार मुद्रित हुआ है। इस का उव्वटकृत भाष्य भी मुद्रित है। किन्तु उव्वटकृत भाष्य में ऋग्वेदप्रातिशाख्य के आदि में वर्तमान वर्गद्वय का भाष्य उपलब्ध नहीं है। इस वर्गद्वयभाग में विष्णुमित्रकृत वृत्ति उपलब्ध और मुद्रित भी है। यह वृत्ति युगलकिशोर पाठक के और काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के संस्करण में भी उपलब्ध है, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय के संस्करण में तो उपलब्ध नहीं है। विष्णुमित्र की वृत्ति अवशिष्ट भाग में मुद्रित नहीं है। इस प्रातिशाख्य की अन्य व्याख्याएँ भी उपलब्ध होने पर भी मुद्रित नहीं हैं। इस प्रातिशाख्य में संलग्न वर्गद्वय में शौनक की ऋग्लक्षण बताने की प्रतिज्ञा, संहिता-पद-क्रमों के अध्ययन का विधि, गुरुत्व-लघुता-साम्य, ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत, लोप-आगम-विकार-प्रकृतिभाव इत्यादि का शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेद-संहिता के सम्बन्ध में प्रतिपादन करने की प्रतिज्ञा तथा अकारादि स्वरों का और ककारादि व्यञ्जनों का स्वरूपतः उपदेश हैं। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में **प्रथम अध्याय** के प्रथम पटल में सञ्ज्ञा और परिभाषा, द्वितीय में संहिता (सन्धिनियम), तृतीय में उदात्तादि स्वर, चतुर्थ में व्यञ्जनसन्धि, पञ्चम में षत्व-णत्व, षष्ठ में व्यञ्जन-द्वित्व; **द्वितीय अध्याय** के प्रथम-द्वितीय-तृतीय (सप्तम-अष्टम-नवम) पटलों में दीर्घ-प्लुतभाव, चतुर्थ-पञ्चम (दशम-एकादश) पटलों में क्रमपाठ के नियम, षष्ठ (द्वादश) पटल में अपदान्तस्थ और अपदादिस्थ वर्णों का तथा परस्पर संयुक्त होने वाले और न होने वाले वर्णों का प्रतिपादन, पदों का नाम आख्यात इत्यादि रूप में वर्गीकरण,

तृतीय अध्याय के प्रथम (त्रयोदश) पटल में बाह्य प्रयत्न और आभ्यन्तर प्रयत्न, अनुनासिक वर्ण, ऋकार-लृकार-ए-ऐ-ओ-औ-वर्णों का स्वरूप, मन्द्रादि वाच-स्थान, वृत्तिनिरूपण, द्वितीय (चतुर्दश) पटल में उच्चारण के दोष, तृतीय (पञ्चदश) पटल में वेद के अध्यापन-अध्ययन के नियम, चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ (षोडश-सप्तदश-अष्टादश) पटलों में छन्दों का निरूपण ये विषय प्रतिपादित हैं। ऋग्वेदप्रातिशाख्य पद्यबद्ध है। यह प्रातिशाख्यों में उत्तम और प्राचीनतम भी माना जाता है।

(२) **तैत्तिरीयप्रातिशाख्य**— प्रातिशाख्यों में दूसरे स्थान में तैत्तिरीयप्रातिशाख्य गिना जाता है। इस का रचयिता निश्चित नहीं है। कोई इस के रचयिता को कार्त्तिकेय मानते हैं। इस प्रातिशाख्य में माहिषेयकृत क्रमसदन-नामक **छन्दोभाषाख्य** भाष्य, सोमयार्यकृत त्रिभाष्यरत्ननामक व्याख्या और गार्ग्यगोपालयज्व-कृत वैदिकाभरणनामक व्याख्या भी उपलब्ध और मुद्रित हैं। अमेरिकी संस्कृतज्ञ ह्विट्नि की आङ्लभाषा में विरचित व्याख्या भी मुद्रित है। यह प्रातिशाख्य वर्ण-स्थान-करणादिनिरूपण में अत्यन्त स्पष्ट और पूर्ण है। तैत्तिरीयप्रातिशाख्य के चौबीस अध्यायों में **प्रथम अध्याय** में वर्णसमाम्नाय, समानाक्षरादि वर्णविशेषसंज्ञा, परिभाषा, ह्रस्व-दीर्घादि मात्रा, उदात्त-अनुदात्तादि स्वर, **द्वितीय** में वर्णोत्पत्ति-प्रकार, **तृतीय** में संहितापाठ में दीर्घ होने वाले पदान्त-पदादि का नियम, **चतुर्थ** में प्रगृह्यत्व के नियम, **पञ्चम** में संहिताकाल के आगम-विकार-लोपों के नियम, **षष्ठ** में षत्व, नकारविकार, **सप्तम** में णत्व, टुत्व, **अष्टम** में वर्गपञ्चमादेश, विसर्ग-विकार, **नवम** में विसर्गविकार, ए-ओ-ऐ-औ का अय् अव् इत्यादि आदेश, प्रकृति-भाव, ङ-न-द्वित्व, नकारविकार, **दशम** में स्वरसन्धि (अच्सन्धि), **एकादश द्वादश** में पूर्वरूप और प्रकृतिभाव, **त्रयोदश** में मकारविकार, णत्वादि, **चतुर्दश** में व्यञ्जनद्वित्व, वर्गद्वितीयादेश, द्वित्वनिषेध, अनुदात्तस्वरविकार, **पञ्चदश** में अनुनासिकत्व, अनुस्वारागम, **षोडश** में पदमध्य में अनुस्वारागम, **सप्तदश** में आनुनासिक्यव्यवस्था का मत, दृढतरप्रयत्नव्यवस्था, आदर्शोच्चारण, **अष्टादश** में प्रणवोच्चारणमतभेद, **एकोनविंश** में विक्रमस्वर और कम्पस्वर, **विंश** में स्वरित-स्वरप्रकार, **एकविंश** में व्यञ्जन की स्वराङ्गता, प्रचय, नासिक्य (यम), अनुनासिक हकार (नासिक्य), स्वरभक्ति, **द्वाविंश** में वर्णों का उपादानकारण, उदात्त-

त्वादिकारण, मन्द्र-मध्य-तार वाचःस्थान, विवृत्त्यादि के काल, गुरुलघुनिरूपण, **त्रयोविंश** में वर्णविशेषोत्पत्तिहेतु, उपांशु-ध्वानादि सात वाचःस्थान, क्रुष्टादि सात स्वर, आह्वरकों के स्वर, तैत्तिरीयों के स्वर, स्वरवृत्तिप्रयोगनियम, **चतुर्विंश** में पदसंहितादिनिरूपण, वेदाध्यायियों के लिए आवश्यक गुरुत्व-लघुत्वादि का ज्ञान, आचार्यों में आवश्यक योग्यता, ये विषय अच्छी तरह निरूपित हैं।

(३) **शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य (वाजसनेयिप्रातिशाख्य)**— इस प्रातिशाख्य के रचयिता कात्यायन माने जाते हैं। इस में उव्वट का और अनन्तका भी भाष्य उपलब्ध है। श्रीरामशर्मा की ज्योत्स्ना नाम की वृत्ति भी उपलब्ध और मुद्रित भी है। इस प्रातिशाख्य में **प्रथम अध्याय** में शब्दोत्पत्ति, वेदाध्ययनपद्धति, संज्ञा, ह्रस्वादि-मात्रा, स्थान, करण, परिभाषा, पदान्त में रह सकने वाले वर्ण, स्पर्शान्त पदों के उच्चारण में विशेष, प्रगृह्य, अक्षरपरिभाषा, व्यञ्जनपूर्वाङ्गतापराङ्गता, उदात्तादि-लक्षण, स्वरितभेद, हस्तस्वर, स्वरप्रयोगविचार, परिभाषा, पदविच्छेद, पदवर्ग, संहितालक्षण, **द्वितीय अध्याय** में पदों में उदात्तादि स्वरों की स्थितिविशेष से पदों का वर्गीकरण, **तृतीय अध्याय** में संहिताधिकार, पदलक्षण, विसर्गविकारादि, टुत्व, षत्व, णत्व, दीर्घभाव, उपधानुनासिकत्व, अनुस्वारागम, नकारविकार, **चतुर्थ अध्याय** में मकारविकार, क-त-आगम, स्वरभक्त्यागम, चकारागम, ऊष्मागम, स्वरागम, विसर्गसन्धिकार्य, यण्सन्धि, ए-ओ-ऐ-औ-विकार, ह्रस्वविधि, दीर्घ-सन्धि, गुणसन्धि, पररूप, वृद्धिसन्धि, ऋलृविकार, पूर्वरूप, प्रकृतिभाव, चुत्व, छत्व, व्यञ्जनद्वित्व, वर्गतृतीयत्वप्राप्ति, वर्गप्रथमत्वप्राप्ति, वर्गद्वितीयत्वप्राप्ति, वर्गपञ्चमत्वप्राप्ति, हकारविकार, पदान्तस्थयकारवकारलोप, सन्धि में उदात्तादि-स्वरविकार के नियम, एकवर्णवद्भाव, ड़ढ़भाव, ऋकार-लृकारस्वरूप, पद-विशेष, यमागम, जकार-यकारभाव, पदपाठनियम, क्रमसंहितानियम, **पञ्चम अध्याय** में समस्तपदों का विभाग करने का नियम (अवग्रह), **षष्ठ अध्याय** में आख्यातादि पदों में उदात्तादि स्वर की स्थिति के नियम, द्विस्पर्शक पद, त्रि-स्पर्शक पद, द्विङकारक पद, **सप्तम अध्याय** में इति से सन्धि, **अष्टम अध्याय** में वर्णसमाम्नाय, वर्णों के स्वर-व्यञ्जनादि वर्ग, वर्णसङ्ख्या, स्वाध्यायाध्ययन-नियम, वर्णदेवता, अक्षरपरिभाषा, पदपरिभाषा, पद के नाम-आख्यातादि भेद, पदों के गोत्र, देवता, ये विषय प्रतिपादित हैं।

(४) **ऋक्तन्त्र–** यह सामवेद का प्रातिशाख्य माना जाता है। इस के रचयिता को कोई शाकटायन कहते हैं, कोई औदव्रजि बताते हैं। कोई औदव्रजि शाकटायन कहते हैं। कोई पुष्पयशा औदव्रजि कहते हैं। इस में सामवेद की ऋचाओं से सम्बद्ध नियम हैं। इस के **प्रथम प्रपाठक** में वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया, वर्ण, आभ्यन्तर और बाह्यप्रयत्न, वर्णवर्गानुसार वर्णोपदेश, अक्षरसमाम्नाय की आचार्य-परम्परा, **द्वितीय प्रपाठक** में वर्णों के स्थान, घोष-सोष्म-आनुनासिक्य-व्यवस्था, संयुक्तव्यञ्जनस्वरव्यवस्था, मात्राविचार, अक्षरविभजनव्यवस्था, स्वरव्यवस्था, **तृतीय चतुर्थ और पञ्चम प्रपाठकों** में समस्त और असमस्त पदों में सन्धि के नियम, सकारागम, व्यञ्जनद्वित्व, षत्व, णत्व ये विषय हैं। वस्तुतः सामतन्त्रादि गानसम्बद्ध ग्रन्थों को भी सामप्रातिशाख्य के अन्तर्गत मानना चाहिए। अत एव **ऋक्तन्त्र, सामतन्त्र,** अक्षरतन्त्र, **फुल्लसूत्र (पुष्पसूत्र)** ये सब ग्रन्थ सामतन्त्र के ही भागों के रूप में लिए जाते हैं।

(५) **शौनकीयचतुरध्यायिका–** इस ग्रन्थ के **प्रथम अध्यय** में वर्ण, वर्ण-वर्ग, अक्षरविभाग, मात्रा, वर्णविकारविशेष, **द्वितीय अध्याय** में संहिता में पदान्त के स्पर्शों के विकार, विसर्गविकारादि, **तृतीय अध्याय** में संहिताजन्य दीर्घता, व्यञ्जनद्वित्व, स्वरसन्धि, स्वरितस्वरविशेष, नति (षत्व+णत्व), **चतुर्थ अध्याय** में पदपाठ में उपसर्ग की व्यवस्था, अवग्रहव्यवस्था, पदपाठ में और क्रमपाठ में प्रगृह्य की व्यवस्था, क्रमपाठ और उसके प्रयोजन, ये मुख्य विषय आए हैं। इस को कोई **कौत्स व्याकरण** भी कहते हैं। कोई **अथर्वप्रातिशाख्य** भी कहते हैं। किन्तु अथर्वप्रातिशाख्य नाम से दूसरा ही ग्रन्थ प्रसिद्ध है। अथर्वप्रातिशाख्य का लघुपाठ विश्वबन्धुशास्त्री से सम्पादित होकर लाहौर में मुद्रित हुआ था (१९२३ क्रै.)। वृद्धपाठ सूर्यकान्तशास्त्री से सम्पादित होकर लाहौर में ही मुद्रित हुआ था (१९३९ क्रै.)। इस में वर्णों की उत्पत्ति, स्थान, करण, प्रयत्न इत्यादि शिक्षा के विषय नहीं आए हैं। इस में विभिन्न प्रकार के पदों की गणना ही है।

प्रातिशाख्यों के अन्य विवरणों के लिए संस्कृत में **कौण्डिन्न्यायनशिक्षा** का उपबन्ध (पृ.१९–३०) देखिए।

व्याकरणों में भी शिक्षाशास्त्र के विषय आए हैं। शिक्षा के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी प्रणीत हुए हैं।

(ख) शिक्षा नाम से लोक में ज्ञायमान ग्रन्थ–

प्रातिशाख्य में बताए हुए विषयों को सङ्क्षेप में बताने की आवश्यकता से और कतिपय विषयों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता से तत्तत्प्रातिशाख्य के पीछे परिशिष्टरूप के अनेक ग्रन्थ मुनियों ने और विद्वानों ने रचे हैं। इन ग्रन्थों में से कुछ प्रधानग्रन्थ मुद्रित प्रकाशित भी हैं, किन्तु अनेक ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में हस्तलिखितग्रन्थागारों में पडे हुए हैं। इस से हमारे पूर्वजों ने वेद की शुद्धता की रक्षा के हेतु और विद्या के अनुशीलन के हेतु कितने मनोयोग से काम किया, यह मालूम होता है। इन ग्रन्थों का विवरण जिज्ञासु पाठक संस्कृत में कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षा के उपबन्ध में देख सकते हैं, और अङ्रेजी में लघुऋक्तन्त्रसङ्ग्रह के सूर्यकान्तशास्त्रि-लिखित इण्ट्रडक्शन् में पढ सकते हैं। छोटेमोटे ऐसे बहूत ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण अङ्रेजी में वेदलक्षणनामक ग्रन्थ में भी उपलब्ध है।

प्रातिशाख्यों के पीछे तत्तद्वेदशाखाओं से सम्बद्ध अनेक और विविध बडे और छोटे शिक्षाग्रन्थों का भी मुनियों और विद्वानों से प्रणयन होता रहा। यह क्रम आज भी चल रहा है। इन शिक्षाग्रन्थों का अत्यन्त सङ्क्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

वेद के शाखा से सम्बन्ध नहीं रखने वाले लौकिक संस्कृत के प्रयोक्ताओं के लिए लोकवेदसाधारण वा मुख्यतया लौकिक शिक्षाग्रन्थ भी रचे गए हैं। ऐसे ग्रन्थों में **आपिशलीयशिक्षासूत्र**, **चान्द्रवर्णसूत्र** इत्यादि ग्रन्थ हैं। इन का भी सङ्क्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(ग) भारतवर्षीय शिक्षाविद्या का पाश्चात्त्यों में प्रभाव–

इस प्रकार भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से इस शिक्षाविद्या की धारा वहती आ रही है। इस से पाश्चात्त्य लोगों ने भी भरपूर लाभ उठाया है। जर्मनी के संस्कृतज्ञ व़ेबेर से १८५८ क्रैस्ताब्द में (१९१५ वै.) वाजसनेयिप्रातिशाख्य

और फ्रान्सिसी संस्कृतज्ञ रेग्नियर से १८५९ क्रैस्ताब्द में (१९१६ वै.) ऋग्वेद-प्रातिशाख्य प्रस्तुत किये जाने से और अमेरिकी संस्कृतज्ञ ह्विट्नि से १८६२ क्रैस्ताब्द में (१९१९ वै.) शौनकीय-चतुरध्यायिका का (अथर्ववेदप्रातिशाख्य का) तथा १८६८ क्रैस्ताब्द में (१९२५ वै.) तैत्तिरीयप्रातिशाख्य का आङ्ल भाषा में अनुवाद और टिप्पणी प्रस्तुत किये जाने से पाश्चात्त्य लोगों का इस विद्या में ध्यान जाने लगा और उन लोगों से इस विद्या का विशेष अध्ययन किया जाने लगा। इस विषय में डब्ल्यू.एस्.यालन् ने *'फनेटिक्स् इन् एन्सण्द इण्डिया'* नाम के ग्रन्थ के *'दि इण्डियन् इन्फ्लुअन्स् अन् वेष्टर्न् फनेटिक्स्'* नाम के प्रकरण में चर्चा की है। पाश्चात्त्य लोगों ने इस प्राचीन भारतवर्षीय विद्या की भित्ति में अनेक नए खोज सामेल करके शिक्षाशास्त्र (Phonetics) में बडी प्रगति भी की है। अब वे भारतवर्षीय लोगों को इस विषय की शिक्षा देने में समर्थ हो गए हैं, और भारतवर्षीय लोग उन से शिक्षा लेने में तत्पर। यह विधि की विडम्बना ही कही जा सकती है। हम लोग अपनी विद्या की साधना में पीछे पड रहे हैं। इस विषय में हम लोगों को अधिक जागरूक होना चाहिए।

७. भारतवर्षीय शिक्षाग्रन्थों का सङ्क्षिप्त विवरण

शिक्षाशास्त्र के विकास के क्रम में भारतवर्ष में प्रातिशाख्यों के पश्चात् आवश्यकतानुसार वेदशाखाविशेष से सम्बद्ध रूप में अथवा सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण रूप में अन्य छोटे अथवा बडे अनेक शिक्षाग्रन्थ विरचित हुए हैं। उन शिक्षाग्रन्थों के परिशिष्ट रूप के ग्रन्थ भी अनेक रचे गए हैं। उनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थों का अतिसङ्क्षिप्त विवरण यहाँ नीचे उपस्थित किया जा रहा है। प्रातिशाख्य, प्रातिशाख्यपरिशिष्ट, शिक्षा, शिक्षापरिशिष्ट इत्यादि ग्रन्थों के विस्तृत विवरण के लिए जिज्ञासु पाठक कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा का उपबन्ध पढ़ें।

(अ) वेदशाखाविशेष-सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ–

उपलभ्यमान शिक्षाग्रन्थों में अधिकतर शिक्षाग्रन्थ वेद के किसी शाखा-विशेष से सम्बद्ध हैं। सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ अत्यल्प सङ्ख्या

में उपलब्ध हैं। यहाँ पहले प्रथम वर्ग के कुछ प्रमुख शिक्षाग्रन्थों का विवरण उपस्थापित किया जाता है।

(क) ऋग्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

ऋग्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ सङ्ख्या में ज्यादा नहीं हैं, केवल चार पाँच ही हैं। किन्तु वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनका अत्यन्त सङ्क्षिप्त विवरण अधोलिखित है–

(१) **शैशिरीयशिक्षा–** यह शिक्षा ऋग्वेद के शैशिरीयशाखा से सम्बन्ध रखती है। वर्तमान काल में मुद्रण में आया हुआ ऋग्वेदसंहिताग्रन्थ शैशिरीय-शाकलशाखा का ही ज्ञात होता है। उपलभ्यमान मुद्रित ऋग्वेदप्रातिशाख्य भी शैशिरीयशाखा का ही है। यह बात ऋग्वेदप्रातिशाख्य के प्रारम्भ में जुडे हुए वर्ग-द्वय से स्पष्ट हो जाती है। शैशिरीयशिक्षा के रचयिता शैशिर अथवा शैशिरीय-शाखाध्यायी कोई विद्वान् हो सकते हैं। शैशिरीयशिक्षा का अनुशीलन पाणिनीय शिक्षा को ठीक रूप से समझने के लिए परमावश्यक है। यह शिक्षा 'द जर्नल् अव् वेदिक् ष्टडिज्' नाम की पत्रिका में लाहौर में तारापद चौधरी से सम्पादित होकर सन् १९३५ में मुद्रित हुई थी। इस का पुनर्मुद्रण दिल्ली में सन् १९८१ में हुआ था। अब वह भी दुर्लभ हो गई है। सम्प्रति यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित मिलती है। इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के सभी विषय आए हैं और १७८ पद्य दिखाई देते हैं।

(२) **शौनकशिक्षा–** यह भी ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाली शिक्षा है। पाणिनीयशिक्षा को ठीक-ठीक समझने के लिए इस का अध्ययन भी आवश्यक है। एक शौनकीया शिक्षा काशिका में (४।३।१०६) भी उल्लिखित है। आजकल उपलभ्यमान शौनकशिक्षा दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। केरल के त्रिपुणित्तुर-संस्कृत-महाविद्यालय के अध्यापक नम्पूतिरि ब्राह्मण विद्वान् दिवाकर ने प्राचीन अपूर्ण रूप में उपलब्ध व्याख्या को पूर्ण करके व्याख्यासहित शौनकशिक्षा सन् १९६२ में प्रकाशित किया था। शौनकशिक्षा का हस्तलिखित प्रति दिल्ली महा-नगर में हौजखास मुहल्ले में अवस्थित सरस्वतीविहारपुस्तकालय में रघुवीर जी

के सङ्ग्रह में भी है। हम ने रघुवीर जी के पुत्र लोकेशचन्द्र जी के सौजन्य से वहीं इस ग्रन्थ को पहले पढ़ा था। उसमें प्राचीन व्याख्या पूर्ण रूप में ही उपलब्ध थी, हमारा ऐसा स्मरण है। अब मूल मात्र यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित मिलती है। इस शिक्षा में ६७ पद्य हैं।

(३) **पाणिनीयशिक्षा–** इस शिक्षा का परिचय विशेष रूप से नीचे पृथक् दिया जा रहा है। इस शिक्षा का ऋग्वेद से विशेषतया सम्बद्ध होना विचारणीय ही लगता है।

(४) **स्वराङ्कुशशिक्षा–** यह शिक्षा पण्डित युगलकिशोर पाठकद्वारा सम्पादित होकर शिक्षासङ्ग्रह में सन् १८८९-१८९३ में वाराणसी में मुद्रित हुई थी। पाठक जी ने इस शिक्षा को यजुर्वेदीय शिक्षा कहा है । वस्तुतः यह शिक्षा ऋग्वेद की ही शिक्षा है। स्वराङ्कुशशिक्षा के ही **"बह्वृचां स्वरसिद्धये"** इस कथन से उक्त तथ्य स्पष्ट हो जाता है। पण्डित युगलकिशोर पाठक का ही शिक्षासङ्ग्रह एक सौ वर्ष वाद नया रूप लेकर सन् १९८९ में सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय (वाराणसी) से पुनर्मुद्रित हुआ है। नीलकण्ठकृत-टीकासहित स्वराङ्कुशशिक्षा वेदविकृतिलक्षणसङ्ग्रह में (१९७८ क्रै.) भी पूना से प्रकाशित हुई है। इस शिक्षा के रचयिता का नाम जयन्त स्वामी है। स्वराङ्कुशशिक्षा में २५ पद्य हैं।

(५) **स्वरव्यञ्जनशिक्षा–** इस शिक्षा में ऋग्वेद में कैसे स्थल में रेफ-युक्त पद हैं और कैसे स्थल में ऋकारयुक्त पद हैं यह विवरण प्रस्तुत है। यह शिक्षा अमुद्रित है। यह भाण्डाकर ओरिएण्टल् रिसर्च् इन्स्टिच्युट् (पुणे) में अन्य-हस्तलेखों से जुडी हुई मिलती है। इस की हस्तलेखसङ्ख्या २१/१८७५–७६ है।

(ख) शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों की सङ्ख्या २७-२८ है। इन का मुद्रण शिक्षासङ्ग्रह में दो वार हो चुका है। इन सभी शिक्षाग्रन्थों का कुछ विस्तृत वर्णन कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के उपबन्ध में (पृ.४२–५३) उपलब्ध है। शुक्ल-यजुर्वेद के कुछ प्रमुख शिक्षाग्रन्थों का सङ्क्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है–

(१) **याज्ञवल्क्यशिक्षा–** शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों में यह शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सब से प्राचीन है। किन्तु इस के पाठों में कुछ विसंवाद है। शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित पाठ, शुक्लयजुर्वेदसंहिता के परिशिष्ट के रूप में मुद्रित पाठ, और अमरनाथ शास्त्री की शिक्षावल्ली टीका से युक्त पाठ स्थान-स्थान में भिन्न हैं। शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित पाठ में २३२ पद्य दिखाई देते हैं। अमरनाथ शास्त्री के संस्करण में पूर्वार्ध में ९२ पद्य और उत्तरार्ध में ११६ पद्य (कूल मिलाकर २०८ पद्य) दिखाई देते हैं। इस शिक्षा का उल्लेख उव्वट ने शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्य की व्याख्या में (४।१६५) किया है। पाराशरीयशिक्षा में (श्लो.७७), वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा में (श्लो.८५), मल्लशर्मशिक्षा में (श्लो.५) और प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा में अनेक स्थलों में याज्ञवल्क्यशिक्षा उल्लिखित है।

(२) **वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा–** यह शिक्षा अमरेश की बनाई हुई है। इस को अमरेशी शिक्षा भी कहते हैं। यह विस्तृत शिक्षा है और शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्य का अनुगमन करती है। इस में सन्धिविषय भी आया है। यह शिक्षा शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है। इस में २२७ पद्य हैं।

(३) **प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा–** इस शिक्षा में शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य, प्रतिज्ञासूत्र, याज्ञवल्क्यशिक्षा, वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा, केशवीयशिक्षा इत्यादि शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षाग्रन्थों से विषयों को लेकर विवेचनपूर्वक उनका प्रतिपादन किया गया है। इस के रचयिता महाराष्ट्री वैदिक बालकृष्ण गोडशे हैं। रचनाकाल १९३७ वैक्रमाब्द है। यह शिक्षा शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है।

(४) **सम्प्रदायप्रबोधिनी शिक्षा–** इस शिक्षा में शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य तथा याज्ञवल्क्यशिक्षाप्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में अनुपलभ्यमान गुरुपरम्परागत विषयों का विशिष्ट प्रतिपादन है। इस के रचयिता वाराणसीनिवासी राजस्तानी वैदिक पण्डित गोपालचन्द्र मिश्र हैं। यह अभी का ग्रन्थ है। इस में मुद्रणकाल अङ्कित नहीं है। १९६४ सन् में मुद्रित मालूम होती है। शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य की ज्योत्स्ना व्याख्या के परिशिष्ट में सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय से भी यह शिक्षा मुद्रित हुई है (१९८९ क्रै.)। चौखम्बा विद्याभवन से भी सन् १९९९ में इस का पुनर्मुद्रण हुआ है।

(ग) कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों की सङ्ख्या २०-२१ है। इन सभी शिक्षाग्रन्थों का कुछ विस्तृत वर्णन कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के उपबन्ध में (पृ.५३-६६) उपलब्ध है। इन शिक्षाओं में अधिकतर अमुद्रित हैं। मुद्रित शिक्षाओं का सङ्क्षिप्त विवरण अधोलिखित है—

(१) **चारायणीयशिक्षा—** यह शिक्षा कृष्णयजुर्वेद की सम्प्रति लुप्त चारायणीयशाखा से सम्बन्ध रखती है। इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के सभी विषय हैं। संहिता (=सन्धि) विषय भी तृतीय अध्याय में है। इस शिक्षा में वर्णस्थान आठ नहीं दश कहे गए हैं। इस शिक्षा को महाशिक्षा कहा गया है। इस शिक्षा में दश अध्याय और लगभग ३३७ श्लोक हैं। यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के अनुबन्ध के रूप में (पृ.८०२-८१९) प्रथम वार मुद्रित है।

(२) **भारद्वाजशिक्षा—** इस शिक्षा में तैत्तिरीयसंहिता के कतिपय सन्देहास्पद पदों के विषय में विवेचना है। यह शिक्षा व्याख्यासहित भाण्डारकर ओरिएण्टल् रिसर्च् इन्ष्टिच्युट् (पुणे) से मुद्रित रूप में प्रकाशित है (१९३८ क्रै.)। इस में १३० श्लोक हैं। इस शिक्षा का शिक्षाशास्त्रीय विषयों की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, तथापि तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में प्रथम स्थान में यह शिक्षा गिनी गई है, यथा—

भारद्वाज-व्यास-शम्भु-पाणिनि-कौहलीयकम्।
बोधायनो वसिष्ठश् च वाल्मीकिर् हारीतं नव॥
सर्वसम्मतमारण्यं तथा सिद्धान्तमेव च।
उपशिक्षा इमाः प्रोक्ता लक्षणज्ञानकोविदैः॥

—वेदलक्षणानुक्रमणिका, श्लो.५-६।

(३) **व्यासशिक्षा—** तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में यह सब से महत्त्वपूर्ण तथा सर्वविषयव्यापिनी शिक्षा है। यह शिक्षा जर्मनी में गोट्टिन्जेन् में पहले मुद्रित (१८९४ क्रै.) विदित होती है। दक्षिण भारत में भी दाक्षिणात्य लिपि में यह शिक्षा पहले मुद्रित ज्ञात होती है (१९०८ क्रै.)। इस को १९७६ सन् में

वाराणसी में पट्टाभिराम शास्त्री ने भी वेदतैजसव्याख्यासहित मुद्रित कराया है। इस में ५२५ सूत्र (अनुष्टुप् श्लोक के अर्धक) हैं।

(४) **कौहलीयशिक्षा—** यह भी महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। यह शिक्षा साधुरामद्वारा सम्पादित होकर 'द जर्नल् अव् वेदिक् ष्टडिज्' में सन् १९३५ में लाहौर में मुद्रित प्रकाशित हुई थी। इस का पुनर्मुद्रण सन् १९८१ में हुआ था। वह भी अब दुर्लभ हो गया है। अब यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित उपलब्ध है (पृ.८१९-८२३)। इस में ८१ श्लोक हैं।

(५) **सर्वसम्मतशिक्षा—** इस शिक्षा के संक्षिप्त पाठ को ओट्टोफ्र्याङ्क से मुद्रित-प्रकाशित (१८८६ क्रै.) बताया जाता है। उस पाठ में ४९ श्लोक ही रहने की बात भी की जाती है। अब इस शिक्षा को दिल्लीस्थ सरस्वती-विहार-पुस्तकालय से रघुवीर जी के पुत्र लोकेशचन्द्र जी के सौजन्य से पूर्ण रूप में प्राप्त करके कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित किया गया है (पृ.८२३-८३०)। तैत्तिरीयशाखा की यह महत्त्वपूर्ण उपशिक्षा है। इस में १२१ पद्यसूत्र हैं।

(६) **पारिशिक्षा—** यह भी तैत्तिरीयशाखा की शिक्षा है। इस में शिक्षाशास्त्र के प्रभूत विषय आए हैं। इस में १७३ पद्यसूत्र हैं। इस शिक्षा को भी दिल्लीस्थ सरस्वतीविहार-पुस्तकालय से ही प्राप्त करके कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में प्रथम वार मुद्रित किया गया है (पृ.८३०-८३८)। इस की व्याख्या भी अमुद्रित रूप में उपलब्ध है।

(७) **कौण्डिन्यशिक्षा—** तैत्तिरीयशाखा के सम्प्रदायविद् लोगों से स्वशाखीय शिक्षाग्रन्थों में अपरिगणित यह शिक्षाग्रन्थ वेदविकृतिलक्षणसङ्ग्रह में पुणे में १९७८ सन् में मुद्रित हुई है। इस में १०० पद्य हैं। इस में संहिता के भेद, पदलक्षण, क्रमपाठप्रयोजन, क्रमपाठरचना, जटा, घन, विकृतिपाठफल इत्यादि विषय प्रतिपादित हैं।

(घ) सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों की सङ्ख्या प्रभूत नहीं है। इस वर्ग के जो शिक्षा ग्रन्थ मिलते हैं उनका सङ्क्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) **नारदीयशिक्षा–** यह सामवेद की शिक्षा है। इस में दो प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक में आठ-आठ कण्डिकाएँ हैं। इस शिक्षा में कूल मिलाकर लगभग २३५ श्लोक हैं। प्रथम प्रपाठक में मुख्य रूप में गानस्वर के विषय में प्रतिपादन है। प्रथम प्रपाठक की अष्टम कण्डिका से आगे आर्चिकस्वरादि का (ऋचाओं में रहने वाले स्वर इत्यादि का) प्रतिपादन है। इस शिक्षा में अध्यापकधर्म-अध्येतृ-धर्मादि विषय भी प्रतिपादित हैं। इस के कतिपय श्लोक और याज्ञवल्क्यशिक्षा के कतिपय श्लोक समान हैं। यह शिक्षा उपलभ्यमान शिक्षाओं में सब से प्राचीन मानी जाती है। कुमारिलभट्ट ने तन्त्रवार्तिक में (१।३।२४, पृ.१९०–१९१) और अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में (२८।२१, पृ.११, ३०) भी इस शिक्षा का उद्धरण दिया है। हरदत्त ने सामवेद-सर्वानुक्रमणी में भट्टशोभाकरभाष्यसहित नारदीय-शिक्षा को कौथुमशाखासम्बद्ध माना है। यह शिक्षा शिक्षासङ्ग्रह में व्याख्यासहित मुद्रित है। भट्टशोभाकर की व्याख्या के विवेचनात्मक पाठ के साथ में पुणे से (१९८६ क्रै.) भी यह शिक्षा प्रकाशित है। शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन की शिक्षाविवेचनी नाम की विशिष्ट संस्कृत व्याख्या और नारायणी नाम की हिन्दी व्याख्या के और विविध परिशिष्टों के साथ में चौखम्बाविद्याभवन से भी यह शिक्षा प्रकाशित है (२००२ क्रै.)।

(२) **लोमशीयशिक्षा–** यह भी सामवेद की महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। यह शिक्षा गर्गाचार्य-चिन्तित बताई गई है। हरदत्त ने सामवेद-सर्वानुक्रमणी में इस शिक्षा को भी कौथुमशाखासम्बद्ध ग्रन्थ माना है। यह ग्रन्थ भी शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है। इस शिक्षा में आठ खण्डों में कूल ७३ श्लोक हैं।

(३) **गौतमीयशिक्षा–** इस शिक्षा में व्यञ्जनद्वित्व के नियम स्पष्ट रूप में दिए गए हैं। सात व्यञ्जनों का भी संयोग हो सकने की बात यहाँ पाई जाती है। इस शिक्षा में संयोगों का विशेष रूप से वर्णन होने से इस का दूसरा नाम 'संयोगशृङ्खला' भी व्यवहृत मालूम होता है। प्रपाठकों में और गद्य-कण्डिकाओं में विभक्त यह शिक्षा प्रातिशाख्यों से अर्वाचीन होने पर भी शिक्षाग्रन्थों में प्राचीन ही मानी जाती है। यह भी शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित-प्रकाशित है।

(ङ) अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ भी अधिक नहीं पाए जाते हैं। इस वर्ग के जो ग्रन्थ मिलते हैं उनका सङ्क्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

(१) **माण्डूकीयशिक्षा–** यह शिक्षा पाणिनीयशिक्षा, याज्ञवल्क्यशिक्षा, व्यासशिक्षा, नारदीयशिक्षा इत्यादि प्रधान शिक्षाओं की समकक्षता में आनेवाली शिक्षा है। इस में शिक्षाशास्त्र के प्रायः सभी विषय आए हैं। याज्ञवल्क्यशिक्षा, नारदीयशिक्षा और माण्डूकीयशिक्षा के अनेक पद्य समान रूप के हैं। इस शिक्षा का उल्लेख आथर्वण चरणव्यूह में और शिक्षासङ्ग्रह में सङ्गृहीत अथर्वपरिशिष्ट में छठे पद्य में भी है, यथा–

शिक्षा प्रकल्पिता सम्यङ् मण्डूकेन महर्षिणा।
शिष्याणामुपदेशार्थं सम्यगुच्चारणाय वै॥

यह शिक्षा शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है। इस को भगवद्दत्त ने भी सन् १९२१ में लाहौर में सम्पादित और मुद्रित किया था। इस का पुनर्मुद्रण दिल्ली में सन् १९८२ में हुआ है। इस में १६ खण्ड और १८२ पद्य हैं।

(२) **वर्णपटल–** यह अथर्ववेदपरिशिष्टों में सतचालीसवाँ परिशिष्ट है। इस में शिक्षासम्बन्धी प्रायः सभी विषय हैं। यह ग्रन्थ कौशिकप्रोक्त माना जाता है। इस बात का उल्लेख चरणव्यूह नाम के उनञ्चासवें परिशिष्ट में है। यह ग्रन्थ अथर्वपरिशिष्ट में अन्य परिशिष्टों के साथ मुद्रित है।

(३) **दन्त्योष्ठविधि–** इस ग्रन्थ में दन्तकरणक ओष्ठ्य वर्ण वकार के और ओष्ठ्य पवर्गीय बकार के विवेक के लिए अथर्ववेद में आए हुए आदि में और द्वितीयाक्षर में पवर्गीय-बकारयुक्त पदों का परिगणन किया गया है। इस से प्राचीन काल में भी वकार के और बकार के श्रवण में भेद सूक्ष्म होने का और उच्चारण में पार्थक्य साधारण जनों के लिए अस्पष्ट होने का सङ्केत मिलता है। इस का शुद्ध नाम 'दन्त्योष्ठ्यविधि' ऐसा होना चाहिए। इस का भी उल्लेख अथर्ववेदीय चरणव्यूह में है। यह ग्रन्थ संवत् १९७७ वैक्रमाब्द में लाहौर में मुद्रित हुआ था।

(आ) सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ–

सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ अधिकसङ्ख्या में नहीं मिलते हैं। जो मिलते हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है–

(१) **आपिशलीयशिक्षासूत्र–** यह शिक्षा गद्यसूत्र रूप में उपलब्ध है। आपिशलि का उल्लेख पाणिनि ने अष्टाध्यायी में **"वा सुप्यापिशलेः"** (६।१।९२) कहकर किया है। आपिशलि की शिक्षा का उल्लेख भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड की स्वोपज्ञवृत्ति में **"बहुधा शिक्षासूत्रकारभाष्यकारमतानि दृश्यन्ते"** इत्यादि कहकर **"नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितो वायुः"** इत्यादि रूप में (१।११२–११५) किया है। इस बात का स्पष्टीकरण उस वृत्ति की टीका में वृषभदेव ने **"तथा इत्यापिशलीयशिक्षादर्शनम् नाभिप्रदेशात् इति"** ऐसा कहकर किया है। कवि राज-शेखर ने भी काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में **"शिक्षा आपिशलीयादिका"** कह-कर आपिशलीयशिक्षा का उल्लेख किया है। हैमशब्दानुशासनवृत्ति में (१।१।१७) भी आपिशलीयशिक्षा के सूत्र उद्धृत हुए हैं। तैत्तिरीयप्रातिशाख्य की गार्ग्य गोपालयज्वा की वैदिकाभरण टीका में भी **"तदुक्तं महति वायौ महाप्राणा अल्पे वायावल्पप्राणा इति"** (२।११) ऐसा कहकर और **"करणानुक्तौ स्थानमेव करणं च वेदितव्यम्, शेषास् स्थानकरणा इत्यापिशलशिक्षावचनात्"** (२।४६) ऐसा कहकर आपिशलीयशिक्षा के वचन उद्धृत किए गए हैं। महास्वामी ने और अनन्तदेव ने भी कातीयभाषिकसूत्र की व्याख्या में **"यत् त्वापिशलिनोक्तम् लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति इति, तदिह न विद्यते अकारादिपञ्चग्रहणात्"** (३।१४) ऐसा कहकर आपि-शलि का वचन उद्धृत किया है। शौनकीयशिक्षा की प्राचीन व्याख्या के प्रारम्भ में भी **"बह्व्यः सन्ति शिक्षाः शौनकीय-पाणिनीय-शैशिरीया-ऽऽपिशलीयाद्याः"** कहकर आपिशलीयशिक्षा का उल्लेख किया गया है। इस से आपिशलीयशिक्षा की पुराकाल में बहुत बडी ख्याति झलकती है। किन्तु अर्वाचीन काल में आपि-शलीयशिक्षा लुप्त सी हो गई थी। डा. रघुवीर ने अड्यार-पुस्तकालय से आपि-शलीयशिक्षा के दो हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त करके १९३४ सन् में लाहौर में 'द जर्नल् अव् वेदिक् ष्टडिज्' में उसका प्रकाशन किया है। उसके वाद युधिष्ठिर मीमांसक ने भी २००५ वैक्रमाब्द में (१९४९ सन् में) आपिशलिशिक्षासूत्र मुद्रित

किया है। इस का **"शिक्षासूत्राणि आपिशलि-पाणिनि-चन्द्रगोमि-विरचितानि"** नाम के ग्रन्थ में संवत् २०२४ में पुनर्मुद्रण हुआ था। २०४० वैक्रमाब्द में भी पुनर्मुद्रण हुआ है। इस शिक्षा में उपक्रम, स्थान, करण, अन्तःप्रयत्न, बाह्यप्रयत्न, स्थानपीडन, वृत्तिकार, प्रक्रम, नाभितल (प्रयत्नस्पष्टीकरण), उपसंहार नाम के १० प्रकरण दिखाई देते हैं। सर्ववेद-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थों में यह ग्रन्थ उत्तम है।

(२) **पाणिनीयशिक्षासूत्र**— यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में संवत् १९३६ वैक्रमाब्द में दयानन्द सरस्वती से सम्पादित-मुद्रित-प्रकाशित हुआ था। सन् १९३९ में दि इण्डियन् रिसर्च् इन्ष्टिच्युट् (कोलकाता) से प्रकाशित तथा अध्यापक अमूल्यचरण विद्याभूषणद्वारा सम्पादित "आपिशलिशिक्षा"को पाणिनीयशिक्षासूत्र मानकर उसी के आधार पर संवत् २०२४ वैक्रमाब्द में उपर्युक्त अपूर्णग्रन्थ को पूर्ण रूप देकर युधिष्ठिर मीमांसक ने "पाणिनीयशिक्षासूत्र [वृद्धपाठ]" के नाम से मुद्रित-प्रकाशित किया है। इस की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए मीमांसक जी ने बहूत प्रयत्न किया है। इस का पाठ आपिशलीयशिक्षासूत्र की तरह सुव्यवस्थित नहीं दिखाई देता है। प्राचीन काल में आपिशलीयशिक्षासूत्र ही विशेष प्रसिद्ध अवगत होता है। पाणिनीयशिक्षासूत्र विशेष प्रसिद्ध अवगत नहीं होता है। तथापि यह ग्रन्थ भी मननीय है। श्लोकात्मिका पाणिनीय शिक्षा से तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए इच्छुक अध्येताओं की सुविधा की दृष्टि से इस ग्रन्थ को हम ने इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में हिन्दी अनुवाद भी मिलाकर प्रस्तुत किया है।

(३) **चान्द्रवर्णसूत्र**— यह ग्रन्थ अभिनवचान्द्रव्याकरण के कर्ता चन्द्रगोमी का बनाया हुआ है। इस ग्रन्थ में वैदिक संस्कृत से विशेषतया सम्बद्ध कुछ भी विषय नहीं आया है। यमवर्णों का भी इस में उल्लेख नहीं है। एक चन्द्राचार्य वाक्यपदीय में (२।४८९) भर्तृहरि से और [कश्मीर]राजतरङ्गिणी में (१।१७६) कल्हण से उल्लिखित है। यह चन्द्राचार्य चन्द्रगोमी ही ज्ञात होता है। कोई लोग चन्द्रगोमी को नैपाली मानते हैं।

(४) **षोडशश्लोकी-शिक्षा**— इस शिक्षा में शिक्षा के बहूत विषय आए हैं। इस में केवल १६ श्लोक हैं। यह शिक्षा रामकृष्ण की बनाई हुई है। इस को प. युगल किशोर पाठक ने यजुर्वेदीयशिक्षा में गिना है। किन्तु इस शिक्षा को

यजुर्वेदीयशिक्षा मानने में कोई उपपत्ति नहीं दिखाई देती है। यह सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ है। यह शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है।

(५) **कौण्डिन्न्यायनशिक्षा–** यह सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण महा-शिक्षा है। इस के उपबन्ध (भूमिका) में वेदाङ्गशिक्षाशास्त्रका सङ्क्षिप्त इतिहास दिया गया है। इसी भाग में उपलभ्यमान समस्त प्रातिशाख्यों का, प्रातिशाख्य-परिशिष्टरूप ग्रन्थों का, शिक्षाओं का और शिक्षापरिशिष्ट रूप ग्रंन्थों का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। मूल ग्रन्थ के प्रथम उपक्रमाध्याय में शिक्षा की परिभाषा और प्रयोजनादि, वेदादि के अध्ययन के अधिकारी, अध्ययनविधि, अध्यापनविधि इत्यादि विषय विस्तृत रूप से प्रतिपादित हैं। द्वितीयादि अध्यायों में क्रमशः **वर्ण, स्वर, मात्रा, बल** (स्थान-करण-प्रयत्न-अनुप्रदान), **साम, सन्तान** (=संहिता=सन्धि) निरूपित हैं। अष्टम तुलनाध्याय में भारतवर्षीय वैदिक शिक्षाशास्त्र की पाश्चात्त्य शिक्षाशास्त्र (फनेटिक्स्) से तुलना की गई है और नवम उपसंहाराध्याय में वैदिक शिक्षाशास्त्र की सार्वभौम उपयोगिता प्रकाशित की गई है। **यह ५००० वर्षों के संस्कृतवाङ्मय के इतिहास में शिक्षा के वर्ण, स्वर इत्यादि सभी विषयों से परिपूर्ण अद्वितीय ग्रन्थ है।** अनुबन्ध में **शौनकशिक्षा, शैशिरीयशिक्षा, व्याडिशिक्षा (विकृतिवल्ली), चारायणीयशिक्षा, कौहलीयशिक्षा, सर्वसम्मतशिक्षा, पारिशिक्षा और आपिशलीयशिक्षासूत्र** सङ्गृहीत हैं। यह वाराणसीस्थ सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय से वाचस्पति (डी.लिट्.) उपाधि के लिए स्वीकृत ग्रन्थ है (१९९२ क्रै.)। इस में मूलग्रन्थ में मुख्य विषय ११५८ कारिकाओं में और अन्य विवेचनीय विषय व्याख्यारूप गद्य में निरूपित हैं। व्याख्या में सम्बद्ध विषय के प्रमाणवचन मुद्रित अमुद्रित सम्पूर्ण उपलब्ध शिक्षाग्रन्थों से विस्तृतरूप में उद्धृत किए गए हैं। इस ग्रन्थ में प्रातिशाख्यादि सम्पूर्ण भारतवर्षीय शिक्षाशास्त्रीय ग्रन्थों का सार आवश्यक विवेचन के साथ सङ्गृहीत है। इस ग्रन्थ में संहिताकार्य के विषय में पाणिनि के, कात्यायन के और पतञ्जलि के कतिपय प्रतिपादनों में भी न्यूनताएँ और त्रुटियाँ दिखाई गई हैं। प्राच्य पाश्चात्त्य अनुसन्धाताओं की त्रुटियाँ भी निर्दिष्ट हैं। कूल ८९६ पृष्ठों में मुद्रित यह ग्रन्थ नेपाल से संवत् २०४९ वैक्रमाब्द में प्रकाशित हुआ है। इस के मुद्रण में ऋग्वेदप्रातिशाख्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य इत्यादि में प्राप्त संस्कृतभाषा के अक्षरविभजनसिद्धान्त

के अनुकूल रूप में अक्षरविभजन को सूचित करने वाली पद्धति अपनाई गई है। जैसे "कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा" इस पद में स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जनों में जो व्यञ्जन स्वपूर्ववर्ती स्वर का अङ्ग होकर उच्चरित होता है उसको हलन्तचिह्नयुक्त रूप में (ण् न् क्) मुद्रित किया गया है। जो व्यञ्जन स्वपरवर्ती स्वर का अङ्ग होकर उच्चरित होता है उसको स्वपरवर्ती स्वर में मिलाकर (कौ डि या य न शि षा) मुद्रित किया गया है। स्वर में नहीं मिले हुए भी परवर्ती स्वर के अङ्ग के रूप में उच्चरित होने वाले व्यञ्जनों को अर्धरूप में (न्‍ क) मुद्रित किया गया है। कतिपय विशिष्ट लिपिवाले व्यञ्जन (ङ् [छ्] ट् [ठ्] ड् [ढ्] द् र् ह्) उक्त मुद्रणपद्धति के अपवाद हैं। इस का और निदर्शन इसी ग्रन्थ में व्याख्याकारपरिचय के अन्त में (पृ.१९३) प्रस्तुत है। यह शिक्षा शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन से विरचित है।

यह कौण्डिन्न्यायनशिक्षाग्रन्थ दिल्ली में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (५६-५७, इन्स्टीट्यूशन एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली ११००५८) के पुस्तकालय में और लालबहादुरशास्त्री संस्कृत विद्यापीठ (शहीद जीतसिंह मार्ग, कटवारिया सराय, नई दिल्ली ११००५८) के पुस्तकालय में, प्रयाग (इलाहावाद) में गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ (चन्द्रशेखर आजाद पार्क, प्रयाग-२) के पुस्तकालय में, वाराणसी में काशी-हिन्दु-विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय में, काशीविश्वनाथपुस्तकालय (गोयनकापुस्तकालय, ललिताघाट) में, काशीविद्यापीठपुस्तकालय में और सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में तथा कोलकाता में भारतीय भाषा परिषद् (३६ ए, शेक्सपीयर-सरणी, कोलकाता ७०००१७) के पुस्तकालय में भी प्राप्य है। वाराणसी में चौखम्बा विद्याभवन में यह ग्रन्थ विक्रयार्थ भी उपलब्ध है।

(६) **बकारविवेक–** इस ग्रन्थ में पवर्गीय बकार और अन्तस्था वकार का स्थान-प्रयत्नादि से भेद समझाया गया है। इस ग्रन्थ में संस्कृत के किनकिन धातुओं में और किनकिन प्रातिपदिकों में पवर्गीय बकार है यह बात भी वर्णित हुई है। इस के कर्ता शिवकुमारशास्त्री जी के शिष्य दीनबन्धुशर्मा मैथिल हैं। प्रकाशनकाल १९९६ वैक्रमाब्द है। इस से दन्त्योष्ठविधि के काल से बकारविवेक के काल तक ब-व के उच्चारण की समस्या बनी हुई विदित होती है।

८. पाणिनीयशिक्षा का विशेष परिचय

पाणिनीयशिक्षा का वर्तमान काल में उपलभ्यमान कथित षष्टिपद्यात्मक (६० पद्यों से युक्त) पाठ सब को विदित है। इस को सन् १८५० में सज्जनलाल ने वाराणसी में मुद्रित किया था। सन् १८५८ में व्रेबेर ने इस को सानुवाद सम्पादित करके रोमन लिपि में मुद्रित किया था, तथा इस को ऋग्वेद से सम्बद्ध बताया था। पञ्जिकाख्यव्याख्यासहित पाणिनीयशिक्षा काशीस्थ राजकीय संस्कृतपाठशाला के साङ्ख्याध्यापक बेचनराम त्रिपाठी के सम्पादकत्व में वाराणसी में सन् १८८७ में मुद्रित हुई थी। मुम्बईस्थ तत्त्वविवेक प्रेस् से १८९२ सन् में वेदषडङ्ग में भी यह शिक्षा मुद्रित हुई थी। पण्डित कनकलालशर्मा मैथिल से संशोधित पाणिनीयशिक्षादिसङ्ग्रह में भी पञ्जिकाख्यव्याख्यासहित पाणिनीयशिक्षा वाराणसी में सन् १९२३ में मुद्रित हुई थी। षष्टि-पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा सस्वर रूप में पण्डित युगलकिशोर पाठक के सम्पादकत्व में शिक्षासङ्ग्रह में वाराणसी में सन्१८८९-१८९३ में मुद्रित हुई थी। वेङ्कटेश्वरष्टीम् प्रेस से भी १९२६ सन् में सिद्धान्तकौमुदी के परिशिष्ट के रूप में यह पाठ मुद्रित हुआ था। निर्णयसागरप्रेस् से सन् १९०९ में और सन् १९३४ में (ऋग्वेदीय) शिक्षादिवेदषडङ्ग में भी यह पाठ मुद्रित हुआ था। आजकल यही षष्टिपद्यात्मक पाठ सर्वत्र मुद्रित और सुविदित है।

आजकल पाणिनीयशिक्षा में ११ खण्ड बताए जाते हैं। ११ खण्ड दिखाने वाली खण्डनिर्देशफक्किका इस शिक्षा के अन्त में मुद्रित भी पाई जाती है। उपर्युक्त शिक्षादिवेदषडङ्ग में खण्डाङ्क ही मुद्रित हैं श्लोकाङ्क नहीं। शिक्षा-पञ्जिका में और शिक्षाप्रकाशव्याख्या में खण्डनिर्देशफक्किका का कोई उल्लेख नहीं है। वीरमित्रोदय के परिभाषाप्रकाश में (वाराणसीसंस्करण, पृ.२०) यह शिक्षा पञ्चखण्डात्मिका बताई गई है। मधुसूदन सरस्वती ने शिवमहिम्नस्तोत्र-टीका में (श्लो.७) इस शिक्षा को नवखण्डात्मिका बताया है।

पाणिनीयशिक्षा को आजकल ऋग्वेद से सम्बद्ध माना जाता है। व्रेबेर ने भी ऐसा ही माना था। पण्डित युगलकिशोर पाठक ने शिक्षासङ्ग्रह के विज्ञापन में इस शिक्षा को ऋग्वेदीयशिक्षा कहा था। ऋग्वेदाध्यायी लोगों के शिक्षादिवेद-

षडङ्ग में पाणिनीयशिक्षा का एकादशखण्डात्मक पाठ सङ्गृहीत है। वाराणसीस्थ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने भी पाणिनीयशिक्षा को ऋग्वेद के पाठ्य-क्रम में निर्धारित किया है।

पाणिनीयशिक्षा के पञ्चत्रिंशत्पद्यात्मक (३५ पद्यों से युक्त) पाठ को व्रेबेर ने याजुष पाठ माना था। तैत्तिरीयशाखा वालों की वेदलक्षणानुक्रमणिका के उपर्युद्धृत वचन में तैत्तिरीयशाखासम्बद्ध शिक्षाओं में पाणिनीयशिक्षा की भी गणना दिखाई देती है। इस से पाणिनीयशिक्षा का तैत्तिरीयशाखा से भी विशेष सम्बन्ध प्रतीत होता है।

सामवेदसर्वानुक्रमणी में हरदत्त ने पाणिनीयशिक्षा को भी सामवेदीय-शिक्षा कहा है। पाणिनीयशिक्षा के "उदात्तमाख्याति" इत्यादि पद्य को प. रुद्रप्रताप अवस्थी ने सामवेदीय-स्वर-निर्देशपरक बताया है। यह बात भी विचारणीय है।

सन् १९३८ में कलकत्ताविश्वविद्यालय से मनोमोहन घोषद्वारा सम्पादित पाणिनीयशिक्षा प्रकाशित हुई है। उसमें पाणिनीयशिक्षा का स्वकल्पित १८ पद्य वाला कथित मूल पाठ, अग्निपुराणान्तर्गत (३३६।१-२२) २१$\frac{१}{२}$ पद्य वाला पाठ, शिक्षापञ्जिकाऽनुसारी २३ पद्य वाला पाठ, शिक्षाप्रकाशव्याख्यानुसारी ३२ पद्य वाला पाठ, ३५ पद्य वाला याजुषपाठ, और कथित ६० पद्य वाला आर्च पाठ माने गए हैं। इस से पाणिनीयशिक्षा की सुसम्प्रदायागतत्व उतना स्पष्ट नहीं हो पाता है। इस में बहूत विगान सामने आते हैं। तथापि इस सम्बन्ध में ये बातें कही जा सकतीं हैं— १८ पद्य वाला पाठ तो कल्पित है ही। अग्निपुराणान्तर्गत पाठ कों भी उस पुराण में आए हुए कोषव्याकरणादिवत् सङ्क्षिप्तीकृत पाठ माना जा सकता है, मौलिक पाठ नहीं। शिक्षापञ्जिकाकार ने भी स्पष्ट श्लोक अव्याख्यात छोड दिए होंगे। पाणिनीयशिक्षा के जिन पद्यों में उनकी व्याख्या उपलब्ध है उतने ही श्लोकों का सम्प्रदायप्राप्त पाठ उनके सामने था यह मानना आवश्यक नहीं लगता। यही बात शिक्षाप्रकाशव्याख्या के विषय में भी कही जा सकती है। इन दोनों व्याख्याओं में पाणिनीयशिक्षा की खण्डविभजनफक्किका का कोई सङ्केत नहीं मिलता है। पाणिनीयशिक्षा के याजुषपाठ, छन्दोगपाठ और आर्चपाठ के विषय में तत्तत् सम्प्रदाय की विशेष परीक्षा करने पर निर्णय हो सकता है। पाणिनीय-

शिक्षा में शैशिरीयशिक्षा और शौनकीयशिक्षा का जो प्रतिध्वनि मिल रहा है उस से इस का ऋग्वेद से सम्बद्ध होना विशेष विचारकोटि में आ सकता है।

सायण ने ऋग्वेदव्याख्याभूमिका में पाणिनीयशिक्षा को वेदाङ्गशिक्षा कहा है, किन्तु किस वेद से सम्बद्ध शिक्षा है यह स्पष्ट नहीं किया है। सामान्य रूप से वेदाङ्ग कहने से तो सर्ववेदशाखा-साधारणत्व ही अभिप्रेत माना जा सकता है। शुक्लयजुर्वेदसम्बद्ध पाराशरीयशिक्षा में **"पाणिन्याः सर्ववेदेषु सर्वशास्त्रेषु गीयते"** (श्लो.७८) कहा गया है। वीरमित्रोदय के परिभाषाप्रकाश में (वाराणसीसंस्करण, पृ.२०) **"तत्र शिक्षा अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामीत्यादिपञ्चखण्डात्मिका पाणिनिप्रोक्ता, प्रतिशाखं चाऽन्याऽन्या तत्तन्मुनिप्रणीता प्रातिशाख्याभिधा च"** कहा गया है। इस से मित्रमिश्र की दृष्टि में पाणिनीयशिक्षा का सर्ववेदशाखासाधारणत्व ही अवगत होता है। मधुसूदन सरस्वती ने शिवमहिम्नस्तोत्रटीका में (श्लो.७) **"सर्ववेदसाधारणी शिक्षा अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामीत्यादिनवखण्डात्मिका पाणिनिना प्रकाशिता"** कहा है। इस से मधुसूदन सरस्वती की दृष्टि में पाणिनीयशिक्षा का सर्ववेदशाखा-साधारणत्व स्पष्ट रूप में अवगत हो जाता है। पाणिनीयशिक्षा का **"ऋग्यजुःसामभिः"** यह उल्लेख (श्लो.५३, ५४) भी इस का सर्ववेदशाखासाधारणत्व सूचित करता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु ऐसी बात याज्ञवल्क्यशिक्षा में भी पाई जाती है (श्लो. ४०, ४४)। वेदाङ्ग शिक्षा का **"अथ शिक्षाम्"** यह प्रतीक शिवपुराण में भी उल्लिखित है (६।१२।९१)। ऐसी ही बात देवीभागवत में भी (११।२०।८) पाई जाती है।

पाणिनीयशिक्षा का गद्यसूत्ररूप अपूर्ण पाठ दयानन्द सरस्वती ने १९३६ वैक्रमाब्द में छपवाया था। संवत् २००५ में पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने कथित पाणिनीयशिक्षासूत्र का पूर्ण वृद्ध पाठ प्रकाशित किया था। उसका द्वितीय संस्करण २०२४ संवत् में हुआ। दयानन्द सरस्वतीद्वारा प्रकाशित पाणिनीय-शिक्षासूत्र को लोग जाली ग्रन्थ मानते रहे। मनोमोहन घोष ने अपनी पाणिनीय-शिक्षा की भूमिका में गद्यसूत्ररूप कथित पाणिनीयशिक्षा को अपाणिनीय और पद्यरूप पाणिनीयशिक्षा को ही पाणिनीय सिद्ध करने के लिए तर्क प्रस्तुत किए। इन तर्कों का खण्डन पटना की "साहित्य" नामक पत्रिका के १९५९ सन् के प्रथम अङ्क में "मूल पाणिनीय शिक्षा" शीर्षक के लेख में पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक

ने किया। दयानन्द सरस्वतीद्वारा और युधिष्ठिर मीमांसकद्वारा प्रस्तुत पाणिनीय-शिक्षासूत्र पाणिनीय हो या न हो, फिर भी उनका विविध दृष्टि से अनुशीलन प्राचीन आपिशलीयादि आर्ष शिक्षासूत्र के ज्ञान की दृष्टि से उपयोगी ही होगा।

पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा के रचयिता कुछ विद्वानों के मत में पाणिनि ही हैं। मित्रमिश्र ने वीरमित्रोदय के परिभाषाप्रकाश में (पृ.२०) पाणिनीयशिक्षा को **"पाणिनिप्रोक्ता"** कहा है। शिवमहिम्नस्तोत्र के सप्तम पद्य की व्याख्या में मधुसूदन सरस्वती ने पाणिनीयशिक्षा को **"पाणिनिना प्रकाशिता"** कहा है। प्रकाश-व्याख्याकार पण्डित नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी ने और प्रदीपव्याख्या के प्रारम्भ में पण्डित रुद्रप्रताप अवस्थी ने भी इस शिक्षा को पाणिनिप्रोक्त ही माना है। भर्तृहरि भी पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षाको आचार्य-(पाणिनि)कर्तृक ही मानते हुए प्रतीत होते हैं (वाक्यपदीय-ब्रह्मकाण्ड-स्वोपज्ञवृत्ति, श्लो.११५)। शिक्षाप्रकाशकार ने पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा का कर्ता पाणिनि के अनुज पिङ्गलाचार्य को माना है। पण्डित कालीप्रसाद मिश्र ने भी ऐसा ही माना है। मधुकर फाटक **"पाणिनीयशिक्षायाः शिक्षान्तरैः सह समीक्षा"** नाम के अपने विद्यावारिधिशोधप्रबन्ध में कहते हैं कि यह पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा पाणिनीयव्याकरणभाष्यकार पतञ्जलि के पश्चाद्वर्ती और भर्तृहरि के पूर्ववर्ती पाणिनीयव्याकरणपरम्परा के किसी मान्य आचार्य की कृति है। वे कहते हैं कि अच् और हल् के सवर्णसंज्ञा के निषेध के लिए **"नाऽज्-झलौ"** सूत्र बनाने वाले पाणिनि को **"अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन् नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः"** कहकर अच् और ऊष्म के प्रयत्नभेद का सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाला नहीं माना जा सकता है। हमारे विचार में भी वर्तमान पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा पाणिन्यादिमुनित्रय के अनुयायी किसी आदरणीय प्राचीन विद्वान् ने बनाई है।

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड की स्वोपज्ञवृत्ति में (श्लो.११५) आचार्यवचन के रूप में पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा से **"आत्मा बुद्ध्या समर्थ्याऽर्थान्"** इत्यादि उद्धरण दिया है, भर्तृहरि ने महाभाष्यटीका में भी **"एवं ह्युक्तम् आत्मा बुद्ध्या समर्थ्याऽर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया"** कहा है (पृ.३५); अतः पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा भर्तृहरि से भी प्राचीन है, ऐसा माना जाता है। किन्तु

"मनः कायाऽग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। मारुतस् तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्" यह श्लोक तो मैत्रायणीयोपनिषद् में (७।११) भी मिलता है। और "मनः कायाऽग्निमाहन्ति" इत्यादि पद्य को पारिशिक्षाटीका याजुषभूषण में रामसुत चक्र ने हारीतशिक्षा का वचन माना है, यह बात ध्यान में रखने के लिए योग्य है। इसी प्रकार पाणिनीयशिक्षा के माने गए श्लोक किसी अन्य प्राचीनतर ग्रन्थ के भी हो सकते हैं। "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" सूत्र के भाष्य की व्याख्या में भर्तृहरि ने "संवारविवाराविति। यथा चैते बाह्यास् तथा शिक्षायां विस्तरेणोपपादितम्" कहा है (महाभाष्यटीका [दीपिका], पृ.१६६)। संवारविवारादि के बाह्यप्रयत्नत्व का उपपादन पद्यात्मिका पाणिनीयशिक्षा में नहीं मिलता है। आपिशलीयशिक्षासूत्र में और पाणिनीयशिक्षासूत्र (वृद्धपाठ) में मिलता है। अतः यहाँ भर्तृहरि "शिक्षा" से आपिशलीयशिक्षासूत्रादि को लेते हुए प्रतीत होते हैं। सिद्धेश्वर वर्मा ने पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा को भारतवर्ष में मुसलमानों के आक्रमण से पीछे का ग्रन्थ बताया है। पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा को पन्द्रहवीं शताब्दी के सायण से पीछे तो नहीं ही लाया जा सकता है। शिवपुराण में भी स्वाध्यायाध्ययन के प्रतिपादन के प्रसङ्ग में वेदाङ्गों के आद्य शब्दों को सङ्गृहीत करते हुए "अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि" वाक्य का भी सङ्ग्रह किया गया है (६।१२।८८-९२)। देवीभागवत में भी ऐसा ही किया गया है (११।२०।८)। अग्निपुराण में तो पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा का सार ही दिया गया माना जाता है। इन सब बातों से पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा प्राचीन ही ग्रन्थ विदित होता है।

पाणिनीयशिक्षा के बाह्यपरिचय के लिए इतना ही लिखकर आभ्यन्तर परिचय के लिए भी कुछ लिखा जाता है।

प्रस्तुत कथित षष्टिपद्यात्मक (साठ पद्य वाली) पाणिनीयशिक्षा सर्ववेद-लोकसाधारण शिक्षा भी मानी जाती आ रही है। इस में "यथोक्तं लोकवेदयोः" (पद्य.१), "प्राकृते संस्कृते चैव" (पद्य.२) ये पाणिनीयशिक्षा के वचन भी उपोद्-बलक हैं। वैदिक विषय भी इस शिक्षा में बहूत आए हैं, जैसे- दुस्स्पृष्ट (पद्य ५), विवृत्ति (पद्य १४, २४) रङ्ग (पद्य २६-२९), कम्प (पद्य ३०), शस्त्रादिपाठ-नियम (पद्य ३६, ३७), साङ्गवेदाध्ययनविधान (पद्य ४१-४२), हस्तस्वरप्रदर्शनविधान

(पद्य ४३, ४४; ५४, ५५), वेदोच्चारण-माहात्म्यवर्णन (पद्य ५१)। अतः पाणिनीयशिक्षा को सामान्य लौकिक संस्कृत का शिक्षाग्रन्थ नहीं माना जा सकता है।

शिक्षाशास्त्र के तैत्तिरीयोपनिषद् में परिगणित विषयों में प्रस्तुत पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा में **वर्ण, स्वर, मात्रा, बल** (स्थान-प्रयत्न-अनुप्रदान), **साम** ये पाँच विषय आए हैं। उनमें बलप्रकरणान्तर्गत करण का निरूपण छोड दिया गया है। इस से अर्वाचीन लोगों में करण और आभ्यन्तरप्रयत्न का भेद का ज्ञान दुर्लभ हो गया है और आभ्यन्तर प्रयत्न ही करण है ऐसा भ्रम उत्पन्न हुआ है। वास्तव में करण क्या है और करण शब्द आभ्यन्तर प्रयत्न का भी वाचक कैसे हो गया यह विषय प्रातिशाख्यों के अध्ययन से स्पष्ट रूप में जाना जा सकता है। आभ्यन्तरप्रयत्न मुख्यतया करण से भी सम्बद्ध होने से आभ्यन्तरप्रयत्न को करणशब्द से भी व्यवहार किया जाने लगा। जिज्ञासु पाठक इस विषय में कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के बलाध्यायनामक पञ्चम अध्याय में करणाधिकार (पृ.५०६–५१६) पढ सकते हैं। शिक्षाशास्त्र के प्रमुख छह विषयों में छठा विषय **सन्तान** (=संहिता=सन्धि) पद्यात्मक पाणिनीय शिक्षा में प्रमुख रूप में नहीं आया है। केवल विसर्ग की अष्टविध गति को (पद्य १४–१५), अनुस्वार की स्थिति को (पद्य २३) और संहिताप्रकरणोपयोगि पदशय्या को (पद्य ४५–४७) दिखाकर इस विषय का थोडा सा स्पर्श किया गया है। अतः यह शिक्षा वैदिक शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से अपूर्ण ही है। इस पक्ष में ऋग्वेदव्याख्याभूमिका में सायण ने भी **"सन्तानः संहिता, वायवायाहीत्यत्र अवादेशः, इन्द्राग्नी आगतमित्यत्र प्रकृतिभावः। एतच् च व्याकरणेऽभिहितत्वात् शिक्षायामुपेक्षितम्"** ऐसा कहकर ध्यान आकृष्ट किया है। इस विषय से परिपूर्ण शिक्षाग्रन्थ तो ऋग्वेदप्रातिशाख्यादि प्रातिशाख्य ग्रन्थ ही हैं। शिक्षा नाम से प्रसिद्ध अर्वाचीन ग्रन्थों में यह विषय प्रायः छोड दिया गया है। शैशिरीयशिक्षा, शौनकीयशिक्षा इत्यादि कुछ शिक्षाओं में सन्धि के कुछ नियम दिए गए भी हैं। चारायणीयशिक्षा में तीसरे अध्याय में यह विषय है। व्यासशिक्षा में भी यह विषय आया है। पूर्णतया स्वशाखाप्रातिशाख्य के अनुसरण करने वाली वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा में और प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा में भी यह विषय है। **शिक्षाशास्त्र के सभी विषयों को सविस्तर प्रतिपादित करने वाली महाशिक्षारूप कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के सन्तानाध्यायनामक सप्तम अध्याय में** (पृ.५९१–७८२) **भी इस विषय का**

विस्तृत निरूपण किया गया है। साधारणतया अर्वाचीन शिक्षाग्रन्थों में सन्तान (=संहिता=सन्धि) विषय को व्याकरण से गतार्थ मान कर छोड दिया गया है। वस्तुतः संहिता (=सन्धि) मुख्यतया दो प्रकार की है। प्रथम, पदान्त के पदादि से संहिता, जो शिक्षाशास्त्र का विषय है; द्वितीय, समस्त पद के मध्य की और प्रकृति-प्रत्यय के मध्य की संहिता, जो व्याकरण का विषय है। अर्वाचीन काल में शास्त्रों के सङ्क्षिप्तीकरण के जमाने में दोनों प्रकार की संहिताओं के नियम व्याकरण में ही सङ्गृहीत कर दिए गए और प्रातिशाख्यों से पीछे की शिक्षाओं में संहिताप्रकरण प्रायः छोड दिया गया। इस विषय में जिज्ञासु पाठक अधिक विवरण कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के सम्बद्ध प्रकरण में देखें।

अक्षरविभजनसिद्धान्त का भी इस शिक्षा में अभाव ही है। अक्षर-विभजनसिद्धान्त प्रातिशाख्यों में और वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा, व्यासशिक्षा, सर्व-सम्मतशिक्षा, नारदीयशिक्षा इत्यादि शिक्षाओं में भी पाया जाता है। इस विषय का विस्तृत प्रतिपादन कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में वर्णनिरूपणाध्याय में अक्षरलक्षण-अक्षरविभजनाधिकार में (पृ.२९४-३०३) प्राप्त है।

पाणिनीयशिक्षा तो शैशिरीयशिक्षा का संक्षिप्त और परिष्कृत रूप प्रतीत होता है। इस में शौनकीयशिक्षा का भी प्रभाव दिखाई देता है।

९. पाणिनीयशिक्षा की पूर्व व्याख्याएँ

पाणिनीयशिक्षा की प्राचीन व्याख्याएँ नहीं मिलती हैं। हरदत्त ने साम-वेदसर्वानुक्रमणी में 'षष्टिश्लोकात्मक पाणिनीयशिक्षा नामलिङ्ग से पाणिनिकृत अवगत होती है और इस का पिङ्गलाचार्यचिन्तित भाष्य है' ऐसा कहा है। किन्तु सम्प्रति पाणिनीयशिक्षा का पिङ्गलाचार्यकृत भाष्य अविदित है। सम्भव है "पञ्जिकाभाष्य" ही पिङ्गलाचार्यकृत समझा गया हो। "पञ्जिकाभाष्य" का रचयिता परम्परागत रूप में अविदित ही है। आजकल जो व्याख्याएँ मिलती हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे उपस्थापित है—

(१) **शिक्षापञ्जिका—** यह व्याख्या उपलब्ध है और मुद्रित भी है। काशिस्थ राजकीय संस्कृत पाठशाला के साङ्ख्याध्यापक बेचनराम त्रिपाठीद्वारा

संशोधित तथा सन् १८८७ में व्रजभूषणदास और कम्पनी (वाराणसी) द्वारा मुद्रित पाणिनीयशिक्षा में और प. कनकलालशर्मा मैथिल से संशोधित और सन् १९२३ में वाराणसी में मुद्रित पाणिनीयशिक्षादिसङ्ग्रह में भी यह व्याख्या मुद्रित है। प. गोपालशास्त्री नेनेद्वारा संशोधित १९२९ सन् में मुद्रित संस्करण में और गुरुप्रसाद शास्त्री के संस्करण में भी पञ्जिकाव्याख्या मुद्रित है। इस व्याख्या में केवल २३ पद्यों का व्याख्यान है। इस व्याख्या में पाणिनीयशिक्षा को अन्य व्यक्तियों से अव्याख्यात बताया गया है। इस व्याख्या को प. गुरुप्रसादशास्त्री ज्यादा प्राचीन नहीं मानते हैं। फिर भी यह व्याख्या कुछ प्राचीन ही प्रतीत होती है। इस में औदव्रजि के अर्वाचीन काल में अविदित ग्रन्थ से अनेक उद्धरण दिए गए हैं। इस व्याख्या का कर्ता भी अज्ञात ही है। परमेश्वर ऐताल ने वेदलक्षण-नामक ग्रन्थविवरण में इस व्याख्या के कर्ता को महादेवशिष्य नागर धरणीधर कहा है। रचनाकाल उदयसिंहराज्यकाल (१४५४ वैक्रमाब्द) कहा है।

(२) **शिक्षाप्रकाशव्याख्या**— यह व्याख्या भी ज्यादा प्राचीन नहीं प्रतीत होती है। यह व्याख्या विशद नहीं है, सङ्क्षिप्त है और ३२ पद्यों पर ही मिलती है। तथापि यह व्याख्या कुछ विषयों पर अपनी प्रौढता दिखाती है और कुछ विषयों पर अपनी विवेकशिथिलता सूचित करती है। यह व्याख्या शिक्षासङ्ग्रह में पृथक् मुद्रित है। इस व्याख्या में पाणिनीयशिक्षा के कथित षष्टिपद्यात्मक पाठ में अनुपस्थित तीन पद्यों के भी सङ्केत हैं। ये हैं "सुतीर्थादागतम्" इत्यादि पद्य के वाद **"न कराल इति"**; "एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः" इत्यादि पद्य के वाद **"अभ्यासार्थ इति"**; और "त्रिनयन-(मभि)मुखनिःसृतामिमाम्" इत्यादि पद्य से पहले **"रत्नभूत-मिति स्पष्टम्"**। इस से शिक्षाप्रकाश के पाठ में पद्यों का क्रम भी भिन्न दिखाई देता है। इन पद्यो में **"न करालः"** इत्यादि पद्य अग्निपुराण के सङ्क्षिप्तशिक्षा के पाठ में भी है (३३६।१२)। याजुष पाठ में भी यह उन्नीसवाँ पद्य है। यह पद्य याज्ञ-वल्क्यशिक्षा में (श्लो.२४–२५), और नारदीयशिक्षा में (२।८।१२) भी मिलता है। माण्डूकीयशिक्षा में भी (श्लो.१५७) यह पद्य है। **"अभ्यासार्थे"** इत्यादि पद्य याजुष पाठ में बाईसवाँ पद्य है। यह पद्य याज्ञवल्क्यशिक्षा में (श्लो.५४), नारदीय शिक्षा में (१।६।२१) और ऋग्वेदप्रातिशाख्य में (१३।४९) भी पाया जाता है।

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में यह पद्य उव्वट से अव्याख्यात होने से प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। **"रत्नभूतम्"** इत्यादि पद्य का पूर्ण रूप क्या है यह अविदित है। "रत्नभूतम्" इत्यादि श्लोकोत्तरार्ध याजुष पाठ में है। उसमें **"दाक्षीपुत्त्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि। रत्नभूतमिदं शास्त्रं पृथिव्यां सम्प्रकाशितम्"** यह पद्य तेत्तीसवाँ पद्य है। पाणिनीयशिक्षा के पद्य के रूप में **"ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वेन त्रैस्वर्योपनयेन च। साऽनुनासिकभेदाच्चाऽवर्णोऽष्टादशधा स्मृतः"** यह पद्य भी शौनकीयशिक्षा की प्राचीनव्याख्या में (श्लो.४) दिखाई देता है।

(३) **भारद्वाजराघवीयशिक्षाभाष्य–** कडत्तुरि राघवाचार्य की यह व्याख्या तेलगु लिपी में १८९३ सन् में मद्रास में प्रकाशित होने की बात परमेश्वर ऐताल ने वेदलक्षणनामक ग्रन्थविवरण में बताई है।

(४) **प्रकाशव्याख्या–** यह व्याख्या नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी की है। यह व्याख्या १९९० वैक्रमाब्द में काशी में प्रकाशित हुई थी।

(५) **प्रकाशिका–** यह व्याख्या प. कालीप्रसाद मिश्र की सङ्गृहीत कही गई है और यमादि कुछ विषयों को प्रौढतापूर्वक प्रतिपादित करती है। यह व्याख्या पिङ्गलाचार्य को पाणिनीयशिक्षा का कर्ता मानती है। यह व्याख्या १९९० वैक्रमाब्द में काशीहिन्दू-विश्वविद्यालय-संस्कृतच्छात्रावास के संरक्षक से प्रचारित हुई थी।

(६) **प्रदीपव्याख्या–** प. रुद्रप्रताप अवस्थी की यह व्याख्या सन् (१९३७?) १९४७ में विद्याविलास प्रेस् (वाराणसी) में मुद्रित हुई थी। पुनर्मुद्रित यह व्याख्या आज भी बाजार में उपलभ्य् है। रुद्रप्रताप जी पद्यात्मक पाणिनीय-शिक्षा को पाणिनि की ही कृति मानते हैं। ये इस शिक्षा में ५५ पद्यों को ही पाणिनिकृत और ५ पद्यों को प्रक्षिप्त कहते हैं। इन के मत में २८, ३३, ४४, ५३, ५४ सङ्ख्या के पद्य प्रक्षिप्त हैं।

(७) **अभिनवराजलक्ष्मीटीका–** प. गुरुप्रसादशास्त्रिविरचित यह टीका पञ्जिकाव्याख्या और हिन्दी व्याख्या के साथ संवत् २००५ वैक्रमाब्द में वाराणसी में मुद्रित-प्रकाशित हुई थी। यह टीका कुछ विस्तृत है। शास्त्री जी पाणिनि को

ही इस पद्यात्मक पाणिनीय शिक्षा का प्रवक्ता मानते हैं। इस शिक्षा के ११ खण्डों के विषय में इन का कथन स्यात् मुद्रणाशुद्धि से अस्पष्ट हो गया है।

उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त छोटी मोटी परीक्षोपयोगी और भी आधुनिक टीकाएँ देखने में आई हैं।

इस शिक्षा के विषय में **"पाणिनीयशिक्षायाः शिक्षान्तरैः सह समीक्षा"** नाम का मधुकर फाटक जी का विद्यावारिधिशोधनिबन्ध भी संवत् २०२९ वैक्रमाब्द में वाराणसी में प्रकाशित हुआ है। इस में पाणिनीयशिक्षा के विभिन्न पक्षों में विस्तृत विचार प्रस्तुत हुए हैं। किन्तु पाणिनीयशिक्षा के सभी पद्यों की, सभी दुरूह पदों की और सभी समस्यापूर्ण विषयों की व्याख्या इस ग्रन्थ से भी नहीं होती है। पाणिनीयशिक्षा के पद्यों में उपलब्ध पाठान्तरों की चर्चा भी इस में नहीं की गई है। पाणिनीयशिक्षा के पूर्वसंस्करणों का विवरण भी इस में नहीं दिया गया है। **पाणिनीयशिक्षा के मुद्रित प्रायः सभी संस्करणों का विवरण परमेश्वर ऐताल के वेदलक्षण-नामक ग्रन्थविवरण में उपलब्ध है। नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी का संस्करण उसमें छूटा है।**

१०. पाणिनि मुनि का सङ्क्षिप्त परिचय

पाणिनि के नाम कलियुग की बयालिसवीं शताब्दी के (वैक्रमाब्द की बारहवीं शताब्दी के) पुरुषोत्तम देव ने त्रिकाण्डशेषकोष में **"पाणिनिस् त्वाहिको दाक्षीपुत्रः शालङ्कि-पाणिनौ। शालोत्तुरीयः"** (ब्रह्मवर्ग, श्लो.२४) ऐसी रचना से सङ्गृहीत किए हैं। हम ने भी **वेदभाषानिघण्टु** के (कौण्डिन्न्यायनकोष के) भूलोककाण्ड के ब्रह्मवर्ग में पाणिनि के नाम **"शालातुरीयो दाक्षेयः कविः पाणिनि-राहिकः"** (श्लो.२४) ऐसा उल्लिखित करके सङ्गृहीत किए हैं। पाणिनीयशिक्षा के शिक्षाप्रकाशव्याख्या में **"दाक्षीपुत्रः पाणिनेयः"** इत्यादि श्लोक में पाणिनेय पद भी प्रयुक्त है। किन्तु इन नामों में एक भी नाम व्यक्तिनाम नहीं मालूम होता है। प्रसिद्धतम नाम **पाणिनि** गोत्रनाम विदित होता है। पाणिनि गोत्र विश्वामित्रगण का है। यह बात बौधायन-प्रवराध्याय से विदित होती है। पाणिनि के पिता का नाम कय्यट, हरदत्त और वर्धमान ने **शलङ्कु** माना है। पाणिनि की माता का नाम

भाष्यकार पतञ्जलि ने दाक्षी माना है (१।१।२०)। श्लोकात्मक पाणिनीयशिक्षा में भी **दाक्षीपुत्र** शब्द पाणिनि के लिए प्रयुक्त है (श्लो.५६)। छन्दस्सूत्रकार **पिङ्गल** को षड्गुरुशिष्यादि ने पाणिनि का अनुज बताया है। साधुशब्द-सङ्ग्रहकार **दाक्षायण व्याडि** को इतिहासविचारक लोग पाणिनि के मामा का पुत्र अथवा पाणिनि का मामा मानते हैं। पाणिनि का शिष्य **कौत्स** पाणिनीयव्याकरणभाष्य (महाभाष्य) में उल्लिखित है (३।२।१०८)। पाणिनि के गुरु का नाम **वर्ष** था। वर्ष के बडे भाई **उपवर्ष** थे। ये उपवर्ष धर्ममीमांसासूत्र के और ब्रह्ममीमांसासूत्र के वृत्तिकार माने जाते हैं। धर्ममीमांसासूत्र के और ब्रह्ममीमांसासूत्र के वृत्तिकार उपवर्ष का उल्लेख जैमिनिकृत धर्ममीमांसासूत्र के कलियुगाब्द की तेत्तीसवीं-चौतीसवीं शताब्दी के (वैक्रमाब्द की तीसरीचौथी शताब्दी के) माने गए भाष्य-कार **शबरस्वामी** ने भी **"अथ गौरित्यत्र कः शब्दः। गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्षः"** ऐसा कहकर किया है (१।१।५)। **शङ्कर** ने भी **"वर्णा एव तु शब्द इति भगवानुपवर्षः"** ऐसा कहकर ब्रह्ममीमांसासूत्रभाष्य में (१।३।२८) उप-वर्ष का उल्लेख किया है। शङ्कर ने **"अत एव भगवतोपवर्षेण प्रथमतन्त्र आत्मा-ऽस्तित्वाऽभिधानप्रसक्तौ शारीरके वक्ष्याम इत्युद्धारः कृतः"** ऐसा कहकर दूसरे स्थल में भी (३।३।५३) उपवर्ष का बडे सम्मान के साथ भगवान् पद जोडकर उल्लेख किया है। वर्ष और उपवर्ष का उल्लेख कलियुग की चालीसवीं शताब्दी के (वैक्रमाब्द की दशवीं शताब्दी के) माने गए **कवि राजशेखर** ने भी काव्य-मीमांसा के दशम अध्याय के अन्त में **"अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः। वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः"** इस पद्य में किया है।

उपाध्याय वर्ष से अध्ययन करते समय छात्रों में पाणिनि को मन्दमति कहकर अन्य छात्र अपहेलन करने लगे और **उपाध्यायी** से उपदिष्ट होकर पाणिनि ने हिमालय में जाकर तपस्या करके महेश्वर को प्रसन्न कराकर उनके डमरु के शब्द से **"अ इ उण्"** इत्यादि चौदह सूत्रों को पाकर उनके ही आधार में व्याकरण की अष्टाध्यायी बनाई। ऐसी कथा पाणिनीय व्याकरण के अध्येताओं में प्रचलित है। व्याकरणशास्त्रग्रन्थ बनाकर अनेक योग्य शिष्यों को पढाकर पाणिनि अत्यन्त प्रसिद्ध हुए थे। भाष्य में **"आकुमारं यशः पाणिनेः"** ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करके

(१।४।८९) पाणिनि की प्रसिद्धि सूचित की गई है। पाणिनि के ग्रन्थ की महनीयता को और संरक्षणीयता तथा प्रचारणीयता को समझकर उनके समय के किसी धनवान् पुरुष ने पाणिनीय व्याकरण पढ़ने वाले छात्रों को भोजन देने के लिए व्यवस्था कर दी थी और व्याकरणाध्ययन में वास्तविक रुचि न रहने पर भी कतिपय लोग भोजन के लिए पाणिनीय व्याकरण पढ़ा करते थे। यह बात भाष्य में (१।१।७३) आए हुए **"ओदनपाणिनीयाः"** इस उदाहरण से अवगत होती है। **पाणिनि का काल निश्चित नहीं हो सका है।** युधिष्ठिर मीमांसक 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' नाम के ग्रन्थ में पाणिनि का समय कलिसंवत् की द्वितीय शताब्दी (विक्रमपूर्व २९०० वर्ष) बताते हैं। अन्य लोग कुछ दूसरा ही काल बताते हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' नाम के ग्रन्थ में पाणिनि के समय पर विचार नाम के अष्टम अध्याय में पाणिनि को क्रैस्तपूर्व पञ्चम शताब्दी में शाक्यसिंह बुद्ध के बाद में रक्खा है। अष्टाध्यायी जैसे वैदिक मूल परम्परा से आबद्ध वेदाङ्ग व्याकरणग्रन्थ की रचना वर्धमान महावीर के और शाक्यसिंह बुद्ध के नास्तिक वेदविरोधी मत के प्रचार से पहले ही अवश्य हुई होगी, हमारा ऐसा विचार है। पाणिनि का अभिजन **शलातुर** ग्राम (आधुनिक लाहौर) माना जाता है। शलातुर का उल्लेख अष्टाध्यायी में भी है (४।३।९४)। मान और अपमान को तथा जीवन और मरण को तुल्य मानने वाले कृतकृत्य और जीवन्मुक्त भगवान् पाणिनि किसी दुर्गम वन्य मार्ग से अकेले जा रहे थे, वहाँ सिंह से आक्रान्त होकर उनका देह छूट गया ऐसी कथा है। यह बात पञ्चतन्त्रक के मित्रसम्प्राप्तिक तन्त्र में उल्लिखित **"सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः, मीमांसाकृतमुन्ममाथ विपिने हस्ती मुनिं जैमिनिम्। छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्, अज्ञानाऽऽवृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस् तिरश्चां गुणैः"** इस पद्य से ज्ञात होती है (श्लो.३४)। व्याकरणकार पाणिनि मुनि का देह त्रयोदशी तिथि में छूटा था, वैयाकरणनिकाय में ऐसी प्रसिद्धि है। इस लिए श्रद्धालु लोग त्रयोदशी तिथि में पाणिनीय व्याकरण नहीं पढते हैं। पाणिनिविरचित ग्रन्थों में **धातुपाठ, गणपाठ** और **लिङ्गानुशासन** नाम के परिशिष्टों से युक्त **अष्टाध्यायी, जाम्बवतीविजय** महाकाव्य और **द्विरूपकोश** ये तीन ग्रन्थ गिने जाते हैं। कोई **पाणिनीयशिक्षासूत्र** का भी अस्तित्व मानते हैं। जाम्बवतीविजय

महाकाव्य तो मूल रूप में प्राप्त नहीं होता है। सुभाषितसङ्ग्रहों में सङ्गृहीत कुछ श्लोक ही उसके मिलते हैं। उनका पण्डित युधिष्ठिरमीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' नाम के ग्रन्थ के तीसरे भाग में सङ्ग्रह किया है। उसमें जाम्बवतीविजय के अठारहवें सर्ग का भी पद्य उल्लिखित है। पाणिनि के द्विरूपकोष के विषय में यथार्थ बात अज्ञात है। इस का ६ पत्रों का हस्तलिखित पुस्तक लन्दन के इण्डिया अफिस लाइब्रेरी में उपलब्ध होने की बात युधिष्ठिर मीमांसक ने बताई है। पाणिनीयशिक्षासूत्र के विषय में 'पाणिनीयशिक्षा का विशेष परिचय' नाम के प्रकरण में लिखा जा चुका है। पाणिनीय व्याकरण की अष्टाध्यायी में ८ अध्याय और प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं। उसमें लगभग चार हजार सूत्र हैं, ग्रन्थपरिमाण लगभग एक हजार अनुष्टुप् श्लोकों का बराबर है। उसमें एक वर्ण भी निरर्थक न रहने की बात पतञ्जलि मुनि ने **"प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता यत्नेन सूत्रम् प्रणयति स्म, तत्राऽशक्यं वर्णेनाऽप्यनर्थकेन भवितुम्"** (१।१।१) ऐसा कहकर बताई है। अष्टाध्यायी का बडे प्रयत्न से समीक्षण, व्याख्यान और पूरण करके कात्यायनमुनि ने वार्तिकग्रन्थ बनाया है। सूत्र और वार्तिक का समीक्षण तथा व्याख्यान पतञ्जलिमुनि ने किया है। वार्तिककार से और भाष्यकार से व्याख्यात और परिष्कृत पाणिनीयव्याकरणाष्टाध्यायी वेदाङ्ग व्याकरण के रूप में वैदिक ब्राह्मणों से स्वीकृत, पठित और सुरक्षित भी होती आ रही है।

पाणिनीय व्याकरण की प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण करते हुए पस्पशाह्निक में भाष्य में और वार्तिक में **"कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्?"** इस प्रश्न के उत्तर में **"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"** कहा गया है। यहाँ पर भाष्यकार पतञ्जलिमुनि ने पाणिनि के लिए आदरातिशय का द्योतक भगवान् शब्द का प्रयोग किया है। **"प्रातिपदिकविज्ञानाच् च भगवतः पाणिनेराचार्यस्य सिद्धम्"** (७।१।२, वा.५) यहाँ पर भी पतञ्जलि मुनि ने वैसा ही किया है। वार्तिककार कात्यायनमुनि ने भी **"एकशेषविज्ञानाद् वा स्वरभिन्नानां भगवतः पाणिनेः सिद्धम्"** (८।४।६८) यहाँ पर पाणिनि के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग किया है। इस से पाणिनिमुनि का गौरव अत्यन्त स्पष्ट होता है।

११. पाणिनीय व्याकरण की विशेषताएँ

वैदिक-लौकिक संस्कृत भाषा का पाणिनीय व्याकरण भूमण्डल की भाषाओं के व्याकरणों में अत्यन्त उत्कृष्ट व्याकरण माना जाता है। यह भाषा-व्याकरण के शाश्वत सिद्धान्तों में आधृत व्याकरण है। इस को लोग पूर्ण व्याकरण भी कहा करते हैं। तथापि कोई भी जीवित भाषा का व्याकरण पूर्ण नहीं हो सकता है। अतः पाणिनीय व्याकरण भी सर्वथा पूर्ण तो नहीं ही है। तथापि इस को पूर्णकल्प (करीब-करीब पूर्ण) कह सकते हैं। यह व्याकरण वैदिक-लौकिक संस्कृत भाषा को अत्यन्त विस्तृत रूप में और सूक्ष्मता से (बारीकी से) वर्णित करता है।

पाणिनीय व्याकरण वर्णनात्मक व्याकरण है

पाणिनीयव्याकरण को लोग विध्यात्मक व्याकरण समझते हैं। यद्यपि काशिकाकार और रूपावतारकार भी सूत्रार्थप्रतिपादन में **"हलन्त्यम्"** (१।३।३) इत्यादि सूत्रों में **"उपदेशे यदन्त्यं हल् तदित्संज्ञं भवति"** इत्यादि रूप में विध्यर्थक प्रत्ययरहित रूप से सूत्रार्थ प्रतिपादित करते हैं, तथापि भाषावृत्तिकार पुरुषोत्तम-देव, रूपमालाकार विमलसूरि, प्रक्रियाकौमुदीकार रामचन्द्र, सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित, प्रक्रियासर्वस्वकार नारायण भट्ट इत्यादि ***"उपदेशेऽन्त्यं हलित्संज्ञं स्यात्"*** इत्यादि रूप में विध्यर्थक प्रत्यययुक्त रूप से सूत्रार्थ प्रतिपादित करते हैं। इस से अर्वाचीन वैयाकरणों में पाणिनीय व्याकरण विध्यात्मक व्याकरण होने का भ्रम सा फैल गया प्रतीत होता है। वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण उत्तम वर्णनात्मक व्याकरण ही है। यह बात वार्तिककार के **"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"** इस प्रथम वार्तिक से और भाष्यकार के उसके व्याख्यान से भी स्पष्ट होती है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के **"पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्"** (६।३।१०९) इस सूत्र से भी पाणिनीय व्याकरण की वर्णनात्मक-व्याकरणता स्पष्ट होती है। वार्तिककार के **"सदन्वाख्यानाच् छास्त्रस्य"** (पा.व्या.भा.१।१।३२) इत्यादि अनेक वचनों से भी पाणिनीय व्याकरण की वर्णनात्मकता स्पष्ट होती है।

पाणिनीय व्याकरण देशिक रूप से भी व्यापक भाषा का वर्णन (अन्वाख्यान) करता है

इस विषय को भाष्यकार पतञ्जलि ने निरुक्तकार का अनुगमन करते हुए (निरुक्त २।१।२) **"शवतिर् गतिकर्मा काम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहतिः प्राच्यमध्येषु, गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते"** (प्रथम आह्निक) इत्यादि कहकर पाणिनीय व्याकरण से विस्तृत भूभाग में बोली जाने वाली भिन्न-भिन्न विशेषता वाली भाषा का अन्वाख्यान (वर्णन) किए जाने की बात स्पष्ट की है। इसी लिए पाणिनीय व्याकरण शब्दों की एकरूपता में आग्रह न करके अनेकरूपता को स्वीकार करता है, और अनेक वैकल्पिक रूपों का अन्वाख्यान करता है। 'संस्कर्ता' इस एक पद के ही सँस्स्कर्ता, सँस्कर्ता, संस्कर्ता, सँस्क्कर्ता संस्क्कर्ता, सँस्कर्त्ता, संस्कर्त्ता इत्यादि १०८ तक विभिन्न रूपों का अन्वाख्यान पाणिनीयव्याकरण में किया गया है। यह विषय सिद्धान्तकौमुदी के हल्सन्धिप्रकरण में **"विसर्जनीयस्य सः"** (सू.१३८) इस सूत्र के अन्तर्गत वृत्ति में द्रष्टव्य है। इस प्रकार के अन्वाख्यान से ही संस्कृत भाषा का प्रायसम्प्रतीतीकरण (Standardization) हुआ है।

पाणिनीय व्याकरण शिष्टप्रयुज्यमान अनादि अनपभ्रष्ट यज्ञिय भाषा का वर्णन (अन्वाख्यान) करता है

पाणिनीय व्याकरण लोक में प्रयुज्यमान अपभ्रष्ट भाषा को न लेकर शिष्टप्रयुज्यमान अनादि अनपभ्रष्ट यज्ञिय भाषा को लेकर उसका अन्वाख्यान करता है। इस भाषा को देववाणी अर्थात् देवताओं के लिए भी प्रयोग करने में योग्य वाणी माना जाता है। निरुक्तकार कहते हैं कि **"तेषां मनुष्यवद् देवताऽभिधानम्"** (१।१।२)। इस बात को वार्तिककार ने **"लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः"** ऐसा और **"आचारे नियमः"** ऐसा कहकर तथा भाष्यकार ने **"याज्ञे कर्मणि स नियमः। एवं हि श्रूयते। यर्वाणस्तर्वाणो नामर्षयो बभूवुः प्रत्यक्षधर्माणः पराऽपरज्ञा विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्याः। ते तत्र भवन्तो यद् वा नस् तद् वा न इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस् तर्वाण इति प्रयुञ्जते। *याज्ञे कर्मणि* पुनर् नाऽपभाषन्ते। तैः पुनरसुरैर् याज्ञे कर्मण्यपभाषितं ततस् ते पराभूताः"**

(पाणिनीय-व्याकरणभाष्य, प्रथम आह्निक) ऐसी व्याख्या करके स्पष्ट किया है। ऐसी वस्तुस्थिति होने पर भी व्याकरण से लोकप्रसिद्ध प्रयोग का ही अनुगमन किए जाने की बात भाष्यकार ने अनेक स्थलों में स्पष्ट किया है। उनके वचन—

(क) घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाऽऽह कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामीति। न तद्वच् छब्दान् प्रयोक्ष्यमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाऽऽह कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्य इति। तावत्येवाऽर्थमर्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते। (प्रथम आह्निक),

(ख) रूपनिर्ग्रहश् च शब्दस्य नाऽन्तरेण लौकिकं प्रयोगम्। (१।२।६४, वा.१९; ६।४।१४),

(ग) तेनाऽनेकार्थाभिधाने यत्नं कुर्वताऽवश्यं लोकः पृष्ठतोऽनुगन्तव्यः, केष्वर्थेषु लौकिकाः कान् शब्दान् प्रयुञ्जत इति। (१।२।६४, वा.२९),

(घ) अभिधानलक्षणाः कृत्-तद्धित-समासाः। (३।३।१९),

(ङ) लौकिकी विवक्षा यत्र प्रायस्य सम्प्रत्ययः। (५।१।१६)

इत्यादि हैं।

पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसनीयता

पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसनीयता दिखाने वाले अधोलिखित प्राचीन वचन विशेष स्मरणीय हैं—

१. प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता यत्नेन सूत्रम् प्रणयति स्म, तत्राऽशक्यं वर्णेनाऽप्यनर्थकेन भवितुम्।
—पाणिनीयव्याकरणभाष्य १।१।१।

२. शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः।—पाणिनीयव्याकरणभाष्य २।३।६६।

३. शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद् दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः॥
येनाऽक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश् चाऽज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः॥

—पाणिनीयशिक्षा, श्लो.५६–५८।

४. पाणिनीयं महाशास्त्रं पदसाधुत्वलक्षणम्।
सर्वोपकारकं ग्राह्यं कृत्स्नं त्याज्यं न किञ्चन॥

—पराशरोपपुराण ८।२९।

पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसा में आए हुए **पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञों** के वचन युधिष्ठिर मीमांसक जी के संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास नाम के ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'पाणिनीय व्याकरण और पाश्चात्त्य विद्वान्' इस शीर्षक के अन्तर्गत दिए गए हैं। उसको हम सङ्क्षेप से यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

१. संस्कृत व्याकरण उस मानवमस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है, जिसे किसी देश ने आजतक सामने नहीं रक्खा।

—मोनियर विलियम्स।

२. हिन्दुओं के व्याकरण अन्वय की योग्यता संसार की किसी जाति के व्याकरण साहित्य से बढचढकर है।

—म्याक्स मूलर।

३. व्याकरण के नियम अत्यन्त सतर्कता से बनाये गये थे, और उनकी शैली अत्यन्त प्रतिभापूर्ण थी।

—कोलब्रूक।

४. संसार के व्याकरणों में पाणिनि का व्याकरण चोटी का है। उसकी वर्ण-शुद्धता, भाषा का धात्वन्वयसिद्धान्त और प्रयोगविधियाँ अद्वितीय एवम् अपूर्व हैं। .... यह मानवमस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार है।

—हण्टर।

५. पाणिनीय व्याकरण 'इन्सानी दिमाग की सब से बडी रचनाओं में से एक है'।

—शेरबात्स्की।

पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसा में **ब्लूम फिल्ड** की अङ्रेजी भाषा की उक्ति को विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से प्रकाशित (१९७७ क्रै.) "भाषाविज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि" नाम के ग्रन्थ में रामदेव त्रिपाठी ने उद्धृत किया है (पृ.६, टि.१[७])। उसका हिन्दी अनुवाद ऐसा होगा–

'भूतकाल की किसी भी भाषा का वैसा विवरण जिस की तुलना पाणिनि से दिए गए उनकी मातृभाषा के विवरण से किया जा सके, हमारे पास में नहीं है। आजकल बोली जा रही किसी भी भाषा का वैसा पूर्ण विवरण दिया जा सकेगा, यह बात भी सम्भावित नहीं है।'

परम्परा में पाणिनीय व्याकरण की मान्यता

कात्यायन से और पतञ्जलि से पाणिनीय व्याकरण की महनीयता का अङ्गीकार और सेवा की गई है। पाणिनि से पूर्ववर्ती व्याकरण अनेक थे। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में शाकटायन, शाकल्य, गार्ग्य, गालव, काश्यप इत्यादि दश वैयाकरणों का उल्लेख किया है। उनमें शाकटायन सर्वश्रेष्ठ थे। **"अनुशाकटायनं वैयाकरणाः"** (सभी वैयाकरण शाकटायन से पीछे ही हैं) यह उक्ति प्रसिद्ध है। किन्तु पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों के ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत थे। पाणिनि ने उन से सारसङ्ग्रह करके व्यापक विषय वाले उत्सर्गरूप नियमों को यथावत् रखकर अल्पविषय वाले अपवादरूप नियमों को सङ्क्षिप्त करके ग्रन्थ को सङ्क्षिप्त, लघुकाय और घनीकृत किया है। इस से व्याकरणाध्येताओं को पूर्वव्याकरणों की तुलना में पाणिनीय व्याकरण से अधिक सुविधा प्राप्त हुई। पाणिनीय व्याकरण के इस वैशिष्ट्य की प्रशंसनीयता का आकलन करके वार्तिककार वररुचि कात्यायन ने पाणिनीय सूत्रों का स्पष्टीकरण बडे मनोयोग से किया है। और न्यूनता का पूरण भी किया है। केवल सिद्धान्तकौमुदी का ही अध्ययन करने वाले लोग वार्तिककार से केवल न्यूनता का पूरण ही किए जाने की बात समझते हैं। किन्तु बात वैसी नहीं है। वार्तिककार ने **"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"** इत्यादि बहुतर वार्तिकों से सूत्रग्रन्थ का स्पष्टीकरण ही ज्यादा किया है। यह बात सभी वार्तिकों के और भाष्य के अध्ययन से स्पष्ट रूप में समझी जा सकती है।

भाष्यकार ने सूत्रों की और वार्तिकों की व्याख्या और उनमें ऊहापोह भी किया है। कहीं-कहीं भाष्यकार ने वार्तिककार की समीक्षा में असम्मति भी दिखाई है, और कहीं-कहीं सूत्रकार के अभिप्राय को यथार्थ रूप में समझे विना ही सूत्र-सूत्रांशों की आलोचना भी की है। ऐसे कुछ विषयों को हमने कौण्डिन्न्यायनशिक्षा की प्रस्ताविका में और व्याख्या में दिखाया है। वस्तुस्थिति वैसी होने पर भी वार्तिककार और भाष्यकार से दूसरे व्याकरणग्रन्थ की रचना न करके पाणिनीय व्याकरण की ही व्याख्या करके पाणिनि की कृति की बडी पूजा की है। इस से पाणिनीय व्याकरण की अष्टाध्यायी की महनीयता अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है।

कात्यायन से और पतञ्जलि से स्पष्टीकृत, परिपूरित और व्याख्यात पाणिनीय व्याकरण की प्रभा से पाणिनि से प्राचीन सभी व्याकरण तिरोहित हो गए और लुप्त होते गए। पाणिनीय व्याकरण को वेदाङ्गता का सम्मान प्राप्त हुआ।

इस प्रकार के पाणिनीय व्याकरण के उत्तराधिकारी और वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश के अध्येता होने पर भी भारतवर्ष के पण्डित लोग अपनी मातृभाषा का व्याकरण बनाने में ध्यान नहीं दे सके, और पाणिनीय व्याकरण के सम्यक् अध्ययन से और यास्क-पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि-वररुचि-भर्तृहरिप्रभृति के भाषा-व्याकरणचिन्तन के सम्यक् परिचय से रहित तथा पाश्चात्त्य शिक्षा में दीक्षित लोगों ने बङ्गाली, मराठी, गुजराती, हिन्दी इत्यादि भाषाओं के व्याकरण बनाए। इस से भारतवर्ष की भाषाव्याकरणचिन्तन की मूल परम्परा के प्रतिकूल रूप में पाश्चात्त्यों की भाषाओं के व्याकरणों के अनुकरण में आधुनिक भारत-वर्षीय भाषाओं के व्याकरण बनने लगे और उसी के अनुसार भाषाएँ लिखी जाने लगीं। इस विषय में भारतवर्ष की मूल परम्परा के पण्डितों का ध्यान नहीं जा सका, यह चिन्त्य विषय है। नेपाली भाषा का व्याकरण भी बङ्गाली, मराठी इत्यादि भाषाओं के व्याकरण के अनुकरण में बनाया गया है। अतः उसका अनौचित्य और यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, वररुचि, भर्तृहरि इत्यादि से परिष्कृत और व्याख्यात भाषाव्याकरणसिद्धान्त को यथार्थ रूप में समझकर उसी के अनुकूल रूप में आधुनिक नेपाली भाषा का व्याकरण बनाने की आवश्यकता के विषय में हम विगत ४० वर्षों से लिखते आ रहे हैं, और

यथाशक्ति अपने लेखों का और ग्रन्थों का प्रचार भी कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में लिखे गए ग्रन्थों का उल्लेख इसी भूमिका में (पृ.१०,११) भी हुआ है। अन्य आधुनिक भारतवर्षीय भाषाओं के पण्डितों को भी इस विषय में ध्यान देना चाहिए और जागरूक तथा प्रयत्नशील होना चाहिए।

१२. प्रस्तुत व्याख्या की विशेषताएँ

पाणिनीयशिक्षा के इस व्याख्या को हम ने परीक्षार्थियों अनुसन्धानार्थियों तथा भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों की उपयोगिता की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। अर्वाचीन काल में परम्परागत पद्धति के संस्कृत के अध्येताओं में वेदाङ्ग शिक्षा के विषय में जो उदासीनता पाई जाती है उसको हटाकर इस विद्या के अध्ययन में अभिरुचि जगाना भी हमारे उद्देश्यों में एक है। इसी दृष्टि से इस बहुप्रचारित ग्रन्थ में व्याख्या लिखकर और इस की भूमिका में भारतवर्षीय वेदाङ्गशिक्षाशास्त्र का थोडा सा परिचय प्रस्तुत कर इस दिशा में आगे अध्ययन बढाने की इच्छा अध्येताओं में जागरित करने का प्रयास किया गया है। पाणिनीयशिक्षा की प्रस्तुत व्याख्या में हमने सम्पूर्ण उपलब्ध प्रातिशाख्याग्रन्थ, सम्पूर्ण उपलब्ध मुद्रित तथा हस्तलिखित शिक्षाग्रन्थ तथा सम्पूर्ण पाणिनीयव्याकरणभाष्यग्रन्थ इत्यादि ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन-मनन से और **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा** के प्रणयन से प्राप्त और परिष्कृत हमारे ज्ञान का उपयोग किया है। सम्बद्ध विषय में कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षा में जहाँजहाँ पर विशेष सामग्री प्रस्तुत है उसका निर्देश भी अनुसन्धानेच्छु पाठकों की सुविधा के लिए वारवार किया गया है। **शैशिरीयशिक्षा** के, **शौनकीय-शिक्षा** के और अन्य शिक्षाओं के आलोक से भी पाणिनीयशिक्षा के वचनों को आलोकित किया गया है। पूर्वव्याख्याओं में जो त्रुटियाँ और अपूर्णताएँ हमारी दृष्टि में आईं उनको हम ने यथाशक्ति हटाया है। पाणिनीय-शिक्षा के किस पाठ में कौन पद्य है और कौन पद्य नहीं है, पाणिनीयशिक्षा के पद्यों में कहाँकहाँ पर महत्त्वपूर्ण पाठान्तर है, पाणिनीयशिक्षा के कौनकौन वचन पाणिनीय व्याकरण के सूत्रभाष्य से मेल खाते हैं और कौनकौन नहीं इत्यादि विषय भी इस व्याख्या में प्रतिपादित हैं। वर्णसङ्ख्या के विषय में भी विशेष विचार इस व्याख्या में

प्रस्तुत है। **"अनुस्वारे विवृत्यां तु"** (श्लो.२४) इत्यादि पद्य का **शैशिरीयशिक्षादि** के वचन के प्रमाण से ठीक अर्थ बताया गया है। धृत-शब्द का अर्थ सप्रमाण निश्चित किया गया है, **"अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य"** (श्लो.१९) इत्यादि पद्य का समीचीन पाठ निश्चित किया गया है, इत्यादि।

१३. उपसंहार

हमारे प्रस्तुत प्रयास से भारतवर्षीय वेदाङ्ग शिक्षाशास्त्र के अध्ययन-अनुशीलन को आगे बढाने में कुछ काम हो सकेगा यह हमारी आशा है। परीक्षार्थी, अनुसन्धानार्थी, भाषाशास्त्री तथा भारतवर्षीय विद्याओं के प्रेमी पाठक हमारे इस प्रयास को सफल वनावें और भारतवर्ष की विद्यापरम्परा को सुरक्षित करके अपना और भारतवर्ष का गौरव रक्षित करें, यही हमारी प्रार्थना है। जब परचक्री लोग भूमण्डल में अपनी आर्थिक और सैनिक सर्वश्रेष्ठता के साथ साथ शैक्षिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक सर्वश्रेष्ठता को भी स्थापित करने के लिए विविध प्रकार से सतत प्रयत्नशील हैं उस समय में भारतवर्ष के लोगों को हरक्षेत्र में अपने गौरव और स्वाधीनता को सुरक्षित करके अपने ऋषि-मुनियों से प्रदर्शित कल्याणकारी मार्ग में चलने के लिए जागरूक होना है। परमात्मा हम लोगों की बुद्धि को इस दिशा में प्रेरित करें।

वेदवेदाङ्गोपाङ्गस्मृतिपुराणादिशास्त्रवशवँवदः

शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

उदगयनमुखशुक्लप्रतिपत्,
पञ्चाब्दक वैदिक पञ्चम त्वाष्ट्र युग का
संवत्सराख्य प्रथम वर्ष,
वैदिकयुगानुसारी चान्द्र एकविंश सर्वजित् संवत्सर,
कलियुगसंवत् ५०६१,
२०५२।९।७ वै.=१९९५-१२-२२ क्रै.।

इस संस्करण में विशेष वक्तव्य

हमारी वेदाङ्गशिक्षाविमर्श नाम की संस्कृत व्याख्या और नारायणी नाम की हिन्दी व्याख्या से युक्त पाणिनीयशिक्षा का प्रथमसंस्करण १९९८ क्रैस्ताब्द में मुद्रित हुआ था। वह संस्करण समाप्त होने पर २००४ क्रैस्ताब्द में पुनर्मुद्रण हुआ था। उसकी भी शीघ्र ही समाप्ति होने से यह संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस संस्करण में हम ने भूमिकासहित ग्रन्थ को आदि से अन्त तक अच्छी तरह परिष्कृत कर दिया है और ग्रन्थ का आकार भी उन्नत कर दिया है। इस से परीक्षार्थी, अनुसन्धानार्थी और भारतवर्षीय विद्याओं के प्रेमी अन्य पाठक को भी और सुविधा होगी और पूर्व भूमिका के उपसंहार में प्रतिपादित हमारे उद्देश्य की प्राप्ति में प्रगति भी होगी, ऐसी हमारी आशा है। परमात्मा हम लोगों की बुद्धि को हमारे उक्त उद्देश्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहने के लिए प्रेरित करें।

वेदवेदाङ्गोपाङ्गस्मृतिपुराणादिशास्त्रवशवँवदः

शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

स्वाद्ध्यायशाला,
१६८, शिवभक्तमार्ग, (नीलसरस्वतीमार्गसंलग्न)
लाजिम्पाट्, काठमाण्डु–२, नेपाल।
☎ (००-९७७-१-) ४४३३३२७ मो. ९८४१०९१४६७
email : svadhyaya@hotmail.com

वैदिक-नभश्शुक्लपूर्णिमा (उपाकर्मदिन),
वैदिक वैष्णवादि पञ्चाब्दक द्वादश युगों के सङ्घ में
सप्तम पित्र्य युग का परिवत्सराख्य द्वितीय वर्ष,
वैदिक पञ्चाब्दकयुगानुसारी चान्द्र षष्टि संवत्सरों में
द्वात्रिंश विलम्बनामक संवत्सर, कलिसंवत् ५०७२,
२०६४।३।१५ वै.=२००७–६–२९ क्रै.।

अथ पाणिनीयशिक्षामूलपाठः

[प्रतिज्ञा]

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।
शास्त्रानुपूर्वं तद् विद्याद् यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।
पुनर् व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥२॥

[वर्णसङ्ख्या]

त्रिषष्टिश् चतुष्षष्टिर् वा वर्णाः सम्भवतो मताः।
प्राकृते संस्कृते चाऽपि स्वयम् प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥३॥

[वर्णगणना]

स्वरा विंशतिरेकश् च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश् च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश् च यमाः स्मृताः ॥४॥

अनुस्वारो विसर्गश् च ᳵकᳶपौ चाऽपि पराऽऽश्रितौ।
दुस्स्पृष्टश् चेति विज्ञेय ॡकारः प्लुत एव च ॥५॥

[वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया, वर्णभेदकारणगणना च]

आत्मा बुद्ध्या समर्थ्याऽर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाऽग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥६॥

मारुतस् तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातस्सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥७॥

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभाऽनुगम्।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागताऽनुगम् ॥८॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णाञ् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥९॥

स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नाऽनुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर् निपुणं तन् निबोधत ॥१०॥

[स्वरकृतवर्णभेदाः, कालकृतवर्णभेदाश् च]

उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च स्वरितश् च स्वरास् त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥११॥

[पाठस्वर-गानस्वर-संवादः]

उदात्ते निषाद-गान्धारावनुदात्त ऋषभ-धैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः ॥१२॥

[वर्णस्थानगणना]

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस् तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश् च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥१३॥

[ऊष्मगतिभेदाः]

ओभावश् च विवृत्तिश् च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१४॥

[ऊष्मगतिविशेषविवेकः]

यद्योकारप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः ॥१५॥

[वर्णविशेषस्थाननिरूपणम्]

हकारं पञ्चमैर् युक्तमन्तस्थाभिश् च संयुतम्।
उरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥१६॥

कण्ठ्यावहाविचुयशास् तालव्या ओष्ठजावुपू।
स्युर् मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ॥१७॥

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्तोष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः।
एऐ तु कण्ठ्यतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥१८॥

[ए-ओ-ऐ-औ-वर्णविचारः]

अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य ऐकारौकारयोर् भवेत्।
एकारौकारयोर् मात्रा तयोर् विवृतसंवृतम् ॥१९॥

(अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारैकारयोर् भवेत्।
ओकारौकारयोर् मात्रा तयोर् विवृतसंवृतम् ॥)

[संवृत-विवृतवर्णविशेषविचारः]

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥२०॥

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥२१॥

[अनुस्वार-यमा-ऽयोगवाहस्थानविशेषाः]

अनुस्वार-यमानां च नासिका स्थानमुच्यते।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥२२॥

(उपध्मानीय ऊष्मा च जिह्वामूलीय-नासिके।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥)

[अनुस्वारस्वरूपादिकम्]

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यः स्वरानुगः।
अनुस्वारस् तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥२३॥

अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाऽक्षरद्वये।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् यथौकार-वकारयोः ॥२४॥

[वर्णोच्चारण आवश्यकस्य कौशलस्य निरूपणम्]

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत् ॥२५॥

[रङ्गवर्णोच्चारणनिरूपणम्]

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रऽाँ इत्यभिभाषते।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराऽाँऽ इव खेदया ॥२६॥

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन् नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम्।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् पश्चान् नासिक्यमाचरेत् ॥२७॥

हृदये चैकमात्रस् तु अर्धमात्रस् तु मूर्धनि।
नासिकायां तथाऽर्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥२८॥

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन्।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाऽाँ इति निदर्शनम् ॥२९॥

[कम्पस्वरोच्चारणवैशिष्ट्यम्]

मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत्।
सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥३०॥

[वर्णोच्चारणकौशलमाहात्म्यम्]

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाऽव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥३१॥

[अधमपाठकलक्षणम्]

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश् च षडेते पाठकाऽधमाः ॥३२॥

[पाठकगुणविचारः]

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस् तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥३३॥

[पाठप्रकारविशेषाणां निषेधः]

शङ्कितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम् ॥३४॥
उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन् न दीनं न तु साऽनुनास्यम् ॥३५॥

[श्रौतसोमयागेषु त्रिषु सवनेषु वाचः स्थानविशेषणां प्रयोगस्य प्रकाराः]

प्रातः पठेन् नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।
माध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन ॥३६॥
तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच् च सदा प्रयोज्यम्।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥३७॥

[आस्यप्रयत्नाः (आभ्यन्तरप्रयत्नाः)]

अचोऽस्पृष्टा यणस् त्वीषन् नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधाऽनुप्रदानतः ॥३८॥

[अनुप्रदानम् (बाह्यप्रयत्नाः, स्वरयन्त्रप्रयत्ना वा)]

अमोऽनुनासिका अह्रो नादिनो ह-झषः स्मृताः।
ईषन्नादा यण्-जशस् तु श्वासिनस् तु खफादयः ॥३९॥

ईषच्छ्वासाँश् चरो विद्याद् गोर् धामैतत् प्रचक्षते।
दाक्षीपुत्त्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि॥४०॥

[वेदपुरुषाङ्गपरिचयः, साङ्गवेदाध्ययनमाहात्म्यं च]

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर् निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥४२॥

[हस्तकार्यस्वरनिर्देशप्रकारः]

उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा।
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव॥४३॥
उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम्।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोप कनिष्ठिकाम्॥४४॥

[पदशय्याः (उदात्तादिस्वरमूलकपदप्रस्तारः)]

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नव पदशय्याः॥४५॥

[स्वरप्रस्तारोदाहरणम्]

अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर् बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती॥

अग्निरित्यन्तोदात्तम्, सोम इत्याद्युदात्तम्, प्रेत्युदात्तम्, व इत्यनुदात्तम्, वीर्यं नीचस्वरितम्, हविषां मध्योदात्तम्, स्वरिति स्वरितम्, बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तम्, इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम्॥४६–४७॥

[हस्तकार्यस्वरनिर्देशप्रकारः]

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥४८॥

[मात्राविशेषनिदर्शनानि]

चाषस् तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस् त्वर्धमात्रकम् ॥४९॥

[कुतीर्थाऽऽगतवेदपाठनिन्दा (असद्गुरुनिन्दा)]

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥५०॥

[सुतीर्थाऽऽगतवेदपाठप्रशंसा (सद्गुरुप्रशंसा)]

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥५१॥
(न करालो न लम्बोष्ठो नाऽव्यक्तो नाऽनुनासिकः।
गद्गदो बद्धजिह्वश् च न वर्णान् वक्तुमर्हति ॥)

[स्वरवर्णादिविकलोच्चारणे हानिः]

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥५२॥

अवक्षरं ह्यनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम्।
अक्षताऽशस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥५३॥

[हस्तस्वरनिर्देशस्याऽऽवश्यकता]

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वर-वर्ण-विवर्जितम्।
ऋग्-यजुः-सामभिर् दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥५४॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वर-वर्णा-ऽर्थसंयुतम्।
ऋग्-यजुः-सामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥५५॥

[शिक्षाशास्त्रगुरुपरम्परा, पाणिनिगौरवं च]

शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद् दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥५६॥

येनाऽक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥५७॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश् चाऽज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥५८॥

अज्ञानाऽन्धस्य लोकस्य ज्ञानाऽञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥५९॥

*(दाक्षीपुत्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि।
रत्नभूतमिदं शास्त्रं पृथिव्यां सम्प्रकाशितम् ॥)*

[पाणिनीयशिक्षापठनाऽधिकारि-माहात्म्यादिकम्]

त्रिनयनमुखनिस्सृतामिमां
य इह पठेत् प्रयतः सदा द्विजः।
स भवति धनधान्यकीर्तिमान्
सुखमतुलं च समश्नुते दिवि ॥ इति ॥६०॥

(अथ शिक्षामात्मोदात्तश् च हकारं स्वराणां यथा गीत्यचोऽस्पृष्टा उदात्तं चाषस् तु शङ्कर एकादश) ॥

पाणिनीयशिक्षा

(शोधोपलब्धिपूर्णया वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्यया संस्कृतव्याख्यया नारायण्याख्यया हिन्दीव्याख्यया च समेता)

॥ ओ३म्। नमो वागीश्वराय॥

शुक्लाम्बरं कृष्णमृगाजिनाङ्कितं
सुकूर्चकं विश्वसृजं चतुर्मुखम्।
कुसुम्भ-दण्ड-स्रुव-दर्भ-हस्तकं
सरस्वतीशं कमलासनं भजे॥१॥

वेदवेदाङ्गविद्यानां मान्द्येनाऽध्ययनेऽधुना।
शिक्षाऽन्यैरुत्पथे नीता सत्पथे नीयते मया॥२॥

अथ पद्यात्मिकायाः पाणिनीयशिक्षाया वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्या छात्रोपयोगिनी सरला विवेचनात्मिकाऽनुसन्धानोपलब्धिपूर्णा विद्वन्मनोहारिणी गभीरा च व्याख्या प्रारभ्यते, लोकेऽस्याः शिक्षाया बाहुल्येन प्रचारादस्यां विहितो विमर्शो भारतवर्षीयशिक्षाविद्यायाः प्रचाराय भूम्ना सफलः स्यादिति। तत्र वर्णसमाम्नायो हि शिक्षाया मूलम्। अत एव शिक्षा वर्णशिक्षेति चोच्यते (ऋग्वेदप्रातिशाख्ये १४।६८)। वर्णसमाम्नाय एवाऽक्षरकसमाम्नाय इत्यपि व्यवह्रियते। अक्षरसमाम्नायगुरुपरम्परा च ऋक्तन्त्रे वर्णिता यथा– "ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच बृहस्पतिरिन्द्रायेन्द्रो भरद्वाजाय भरद्वाज ऋषिभ्य ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः, तं खल्विममक्षरसमाम्नायमित्याचक्षते, न भुक्त्वा न नक्तं प्रब्रूयाद् ब्रह्मराशिरिति" इति (१।४)। यद्यपि पाणिनीयवैयाकरणनिकाये शङ्करडमरुनादात् पाणिनिना

चतुर्दशसूत्रात्मकोऽक्षरसमाम्नायः प्राप्त इति प्रसिद्धिः, पाणिनीयशिक्षायां च "शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्" इत्यादिना (श्लो.५६) शङ्करादिका गुरुपरम्परा प्रोक्ता, तथापि ब्रह्मविष्णुशङ्कराणां स्वरूपतोऽभेदात् कार्यविशेषार्थं गुणविशेष-ग्रहणेनैव उपाधित एव भेदाद् ब्रह्मादिका शङ्करादिका वा गुरुपरम्परोच्यमाना न विरुध्यते। अत एव पाणिनीयशिक्षायामपि **"स्वयं प्रोक्ता स्वयम्भुवा"** (श्लो.३) इत्यप्युक्त्वा ब्रह्मादिका गुरुपरम्पराऽपि स्वीकृतैव। ऋक्तन्त्रादिषु प्रतिपादितः अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ क ख ग घ इत्यादिको वर्णसमाम्नायो ब्रह्मसम्प्रदायादागतः, पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रेषु प्रतिपादित अ इ उ ह य व र इत्यादिको वर्णसमाम्नायो महेश्वरसम्प्रदायादागत इत्यपि के चिद् वदन्ति। एतत्पक्षे पाणिनीयशिक्षायां **"स्वरा विंशतिरेकश् च"** (श्लो.४-५) इत्यादिना प्रतिपादितो वर्णसमाम्नायोऽपि ब्रह्मसम्प्रदायादेवाऽऽगतोऽवगम्यत इति ब्रह्मसम्प्रदायमप्यादायेयं शिक्षा प्रवृत्तेति मन्तव्यम्। **"कालतो नियमा अचि"** (श्लो.११) **"अचोऽस्पृष्टाः"** (श्लो.३८) इत्यादौ तु महेश्वरसम्प्रदायादागतं वर्णसमाम्नायमादायेयं शिक्षा प्रवृत्ता दृश्यते। अतोऽत्र द्विविधस्याऽपि सम्प्रदायस्य मिश्रणं जातं दृश्यते। **"शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्"** (श्लो.५६) इत्यादिवचनानुसारं तु ब्रह्मसम्प्रदायोपजीव्येव माहेश्वर-सम्प्रदाय इत्यपि ज्ञायते **"वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य"** इति वचनात्। **"शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्"** इत्यादिकं हि विशेषतया पाणिनीयव्याकरण-वासनयोक्त-मिति च मन्तव्यम्। एवं गुरुपरम्पराऽऽगतं शिक्षाशास्त्रज्ञानं स्वशास्त्रानुकूलांश-विशेषसङ्ग्रहेण पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलिरूप-मुनित्रय-मतानुयायी कश्चन आचार्यो ग्रन्थरूपेण निबध्नाति अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामीत्यादि—

[प्रतिज्ञा]

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।
शास्त्रानुपूर्वं तद् विद्याद् यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥

अन्वयः— अथ यथा पाणिनीयम् मतम् (तथा) शिक्षाम् प्रवक्ष्यामि। तत् लोकवेदयोः यथा उक्तम् (तथा) शास्त्रानुपूर्वम् विद्यात्।

शब्दार्थः— अथ= वेदप्रवचनानन्तरम्, यथा= यादृशम्, पाणिनीयम्= पाणिनिसम्बद्धम्, मतम्=ज्ञानम्, (तथा=तदनुकूलाम्), शिक्षाम्=वर्णाद्युच्चारण-विधिशास्त्रम्, प्रवक्ष्यामि= प्रकर्षेण कथयिष्यामि। तत्= मदीयबुद्धौ उपस्थितं पाणिनीयं मतम्, लोकवेदयोः= लौकिकशब्देषु वैदिकशब्देषु च विषयभूतेषु, यथा=येन प्रकारेण, उक्तम्=वैदिके लौकिके च शिक्षाशास्त्रे कथितम्, (तथा= तदनुरूपतया), शास्त्रानुपूर्वम्= शास्त्रानुगतम् (शास्त्रक्रमागतम्), विद्यात्= जानीयात्।

सरलार्थः— वेदप्रवचनानन्तरं यादृशं पाणिनीयं मतं तदनुकूलां शिक्षां प्रकर्षेण वक्ष्यामि। मदीयबुद्धौ उपस्थितं पाणिनीयं मतं लौकिकवैदिक-शब्दो-च्चारणविषये लौकिकेषु वैदिकेषु च प्राचीनेषु शिक्षाग्रन्थेषु यदुक्तं तदनुसारि एव वर्तते इति शिष्यजनो जानीयात्।

व्याख्या— यद्यपि पुराकल्पे संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणाः शिक्षां व्याकरणं चाधीत्य पूर्वं वर्णविषयं शब्दविषयं चाऽऽवश्यकं ज्ञानं सम्यगधिगम्य वैदिकान् शब्दान् पठन्ति स्म, तथापि पाणिन्यादिकालेषु ब्राह्मणाः संस्कारोत्तरकालं प्रथममेव वेदं पठन्ति स्म, विशिष्टा जिज्ञासव एव शिक्षाव्याकरणादिकं पठन्ति स्मेति पतञ्जलिमुनिना पस्पशाह्निके प्रतिपादितम्, अतोऽत्र अथ शब्दस्य वेद-प्रवचनानन्तरमित्यर्थः कृतो वेदितव्यः। आनन्तर्यार्थकत्वेनैवोच्चारितोऽपि अथ-शब्दः उच्चारितः श्रुत एव वाऽपि मङ्गलाय भवत्येव। तदुक्तं बृहन्नारदीयपुराणे— **"ओङ्कारश् चाऽथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान् माङ्गल्यकाविमौ"** इति (१।५१।१०)। **"शास्त्रानुपूर्वं तद् विद्याद् यथोक्तं लोकवेदयोः"** इति कथनेन आपिशलीयशिक्षादिलौकिकशिक्षाम् ऋग्वेदप्राति-शाख्यादि-वैदिकशिक्षां चाऽनुसृत्य संक्षिप्तरूपेण विरचितेयं सङ्ग्रहात्मिका शिक्षा सर्ववेदशाखालोकसाधारणपाणिनीयव्याकरणाऽनुकूला चेति ध्वनितं बोध्यम्। एतेन एतस्याः शिक्षाया अविच्छिन्नस्मृतिपरम्परागतवस्तुप्रतिपादकत्वेन प्रमाणत्वं च सूचितम्। स्मृतयो हि पूर्वपूर्वस्मृत्युपजीविन्यः प्रमाणकोटिमारो-हन्ति। तथा हि वाक्यपदीये भर्तृहरिः— **"साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरण-**

स्मृतिः। अविच्छेदेन शिष्टानामिदं स्मृतिनिबन्धनम्॥ तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं च सनिबन्धनाम्। आश्रित्याऽऽरभ्यते शिष्टैः शब्दानामनुशासनम्" इति (१।४२,४३); "अनादिमव्यवच्छिन्नां श्रुतिमाहुरकर्तृकाम्। शिष्टैर् निबध्यमाना तु न व्यवच्छिद्यते स्मृतिः" इति (१।१४४) च। एतादृश्यः स्मृतयः प्रायेण सङ्ग्रहात्मिकाश्च भवन्ति।

हिन्दी— अब मैं पाणिनि के मत की अनुकूल शिक्षा को कहूँगा। शिष्यजन पाणिनि के उस मत को लौकिक वैदिक शब्दों के विषय में पूर्वाचार्यों से प्रोक्त लौकिक वैदिक शिक्षाशास्त्रों में जो कहा गया है उसी का अनुगत जाने।

विशेष— "शास्त्रानुपूर्वं तद् विद्याद् यथोक्तं लोकवेदयोः" इस कथन से पाणिनि के मत को पूर्वशास्त्रों का अनुगामी बताया गया है। इस से पाणिनि के मत की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। इस से ऐसे मतों की प्रामाणिकता अविच्छिन्न स्मृतिपरम्परा के अनुगामी होने पर ही सिद्ध होने की बात भी सूचित की गई है॥१॥

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।
पुनर् व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम्॥२॥

अन्वयः— प्रसिद्धम् अपि अबुद्धिभिः अविज्ञातम् वाचः उच्चारणे विधिम् शब्दार्थम् पुनः व्यक्तीकरिष्यामि।

शब्दार्थः— प्रसिद्धम्=प्रथितम्, अपि=च, अबुद्धिभिः=मन्दधीभिः, अविज्ञातम्= विशेषतोऽविदितम्, वाचः= लौकिकवैदिकयज्ञियवाण्याः, उच्चारणे= उद्गिरणे, विधिम्=स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानादिप्रयोगस्य प्रकारम्, शब्दार्थम्= याज्ञे प्रयोगे अदृष्टोत्पादने समर्थं शब्दं दुरुच्चारणतो रक्षितुम्, पुनः= भूयः, व्यक्तीकरिष्यामि=स्पष्टीकरिष्यामि।

सरलार्थः— पूर्वेषु महत्सु प्रातिशाख्यादिषु शास्त्रेषु स्पष्टतया प्रतिपादितत्वेन प्रसिद्धमपि महान्ति शास्त्राणि अध्येतुमसमर्थैर् मन्दमतिभिर् वेदाध्यायिभिर् लक्ष्यदृष्ट्या सामान्यतो ज्ञातमपि विशेषतोऽज्ञातं वैदिक्या लौकिक्याश् च यज्ञियवाण्या उच्चारणे स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानादिप्रयोगस्य प्रकारं याज्ञे प्रयोगे अदृष्टोत्पादने समर्थस्य शब्दस्य दुरुच्चारणमूलकापभ्रंशीभावाद् रक्षणाय पूर्वशास्त्रानुगामितया पुनः बालानामपि सुखधार्येण सुखबोध्येन च लघुना ग्रन्थेन स्फुटीकरिष्यामि।

व्याख्या— ऋग्वेदप्रातिशाख्य-शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य-तैत्तिरीयप्रातिशाख्य-ऋक्तन्त्राऽथर्ववेप्रातिशाख्यरूपशौनकीयचतुरध्यायिकादिषु महत्सु शास्त्रग्रन्थेषु तत्तच्छाखागताया वाच उच्चारणे विधिः विस्तरेण सूक्ष्मेक्षिकया च प्रतिपादितः, स च तदध्यायिषु महामतिषु वेदवित्सु प्रसिद्ध एव। किन्तु स मन्दबुद्धिभिर् वेदाध्यायिभिरविज्ञातः। संस्कारादिकर्मसु यज्ञेषु च सङ्कल्पादिवाक्यानि मन्त्राँश्च प्रयोक्तुं सर्वत्र महामतयो वेदविदो न सुलभाः। मन्दमतिभिर् वेदाध्यायिभिश्च कर्मसु सङ्कल्पवाक्यादिरूपाया यज्ञियवाण्याः प्रयोगे लक्षणज्ञानाभावे वाण्या दुरुच्चारणेनाऽपभ्रंशीकरणं भवेत्, ततश्च कर्मवैगुण्याद् याजकयाज्ययोः श्रेयोहानिः स्यात्। अतो मन्दमतीनां कृतेऽपि वाच उच्चारणे विधिः संक्षिप्तेन लघुना सुखधार्येण सुखबोध्येन च ग्रन्थेन स्पष्टीकरणीय इत्ययं ग्रन्थः प्रारब्धोऽस्तीति ग्रन्थकृत आकूतं बोध्यम्। एतादृशोऽभिप्रायः शौनकीयशिक्षाकारेण स्फुटतरं प्रतिपादितः। तद् यथा— **"सर्वज्ञं सर्वकर्तारं सर्वात्मानं शिवं गुरुम्। प्रणम्यर्क्षु प्रवक्ष्यामि वर्णोच्चारणलक्षणम्॥ वेदस्य लक्षणं सम्यग् बालानां बुद्धिवर्धनम्। यथोक्तं पूर्वशास्त्रेषु तथा संक्षिप्तमर्थवत्"** इति (श्लो.१,२)।

हिन्दी— विद्वज्जनों में प्रसिद्ध होने पर भी मन्दबुद्धियों से (लक्षणशास्त्र-ज्ञानाभाव होने से) अज्ञात, यज्ञिय वाणी के उच्चारण के स्थान-करण-प्रयत्नअनुप्रदानादि-प्रयोगविशेषरूप प्रकार को यज्ञिय शब्दों के (रक्षा के) लिए मैं पुनः स्पष्ट करूँगा।

विशेष— वाणी के अर्थात् वैदिक और लौकिक संस्कृत के वर्णों के उच्चारण के प्रकारों को स्पष्ट करने के लिए ऋग्वेदप्रातिशाख्य, शुक्ल-यजुर्वेदप्रातिशाख्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, ऋक्तन्त्र, अथर्ववेदप्रातिशाख्य (शौनकीयचतुरध्यायिका) इत्यादि तत्तच्छाखीय शिक्षाग्रन्थ और आपि-शलीयशिक्षाप्रभृति लौकिक शिक्षाग्रन्थ तथा विभिन्न व्याकरणों में आए हुए शिक्षाशास्त्रसम्बन्धी अंश विद्वानों को उपलब्ध हैं, और उन ग्रन्थों से प्रतिभासम्पन्न तथा मेधावी बडे लोग वाणी के उच्चारण के शास्त्रीय प्रकारों को जानते ही हैं। अल्पमति वेदपाठी याज्ञिक-पुरोहित-प्रभृति लोगों से लक्षणशास्त्र के ज्ञान से शून्य होने से यज्ञिय वाणीका अपभ्रंशीकरण न हो और इस लघु ग्रन्थ की सहायता से उन से भी अदृष्टोत्पादनसमर्थ शास्त्रीय शब्दों की रक्षा हो— इसी लिए यह ग्रन्थ प्रणीत हुआ है ॥२॥

[वर्णसङ्ख्या]

त्रिषष्टिश् चतुष्षष्टिर् वा वर्णाः सम्भवतो[1] मताः ।
प्राकृते संस्कृते चाऽपि स्वयम् प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥३॥

अन्वयः— प्राकृते संस्कृते च अपि स्वयम्भुवा स्वयम् प्रोक्ताः वर्णाः सम्भवतः त्रिषष्टिः चतुष्षष्टिः वा मताः।

शब्दार्थः— प्राकृते=वैदिकभाषारूपप्रकृतिप्रसूते शौरसेन्यादिरूपे लौकिके वचसि, संस्कृते= प्रकृतिप्रत्ययविभागकल्पनादिसंस्कारवति वैदिके तदनुगे च शिष्टैः प्रयुज्यमाने वचसि, च=अपि, अपि=च, स्वयम्भुवा=ब्रह्मणा, स्वयम्= आत्मना, प्रोक्ताः=कथिताः, वर्णाः=अकारादयो वर्णाः, सम्भवतः=यथासम्भवम्, त्रिषष्टिः= त्रयश्च षट्कृत्वो दश च, चतुष्षष्टिः= चत्वारश्च षट्कृत्वो दश च, वा=अथवा, मताः=अवगताः।

---

१. "शम्भुमते" इति पाठान्तरम्।

सरलार्थः— शौरसेन्यादिप्राकृतभाषायां वैदिकलौकिकसंस्कृतभाषायां च ब्रह्मणा स्वयं प्रतिपादिता वर्णा यथासम्भवं त्रिषष्टिः चतुष्षष्टिर् वा विदुषां सम्मताः सन्ति।

विशेषः— एतिस्मन् पद्ये पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां च **"सम्भवतः"** इत्येव पाठो दृश्यते। शब्दकौस्तुभे भट्टोजिदीक्षितेनापि **"मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः"** इति सूत्रे "सम्भवतः" इत्येव पाठो धृतो व्याख्यातश् च। पण्डितबेचनरामत्रिपाठिना पण्डितकनकलालशर्मणा मैथिलेन च "सम्भवतः" इत्येव पाठः परिगृहीतः। शैशिरीयशिक्षायामपि सम्भवत इत्येव पाठो दृश्यते। सायणस्तु ऋग्वेदव्याख्याभूमिकायां **"शम्भुमते"** इति पठति। प्राकृतभाषासु त्रिषष्टेश् चतुष्षष्टेर् वा वर्णानामभावात् तद्व्यक्तीकरणाय सम्भवत इति कथनमावश्यकमप्यस्ति। के चन आधुनिकास् तु प्राकृते इति संस्कृते इत्यस्यैव विशेषणं स्वीकृत्याऽत्र देववाणीरूपस्य संस्कृतस्यैव वर्णानां सङ्ख्या प्रतिपादितेति मन्यन्ते। तत् तु **"प्राकृते संस्कृते चाऽपि"** इति प्रयोगस्य नाऽतीवाऽनुकूलं दृश्यते। सर्ववेदशाखालोकसाधारणत्वेनाऽभिमतायां पाणिनीयशिक्षायां वेदशाखासु वर्णसङ्ख्यानां विभेदात् प्रतिशाखं वर्णसङ्ख्याया आत्यन्तिकं निश्चयमप्रदर्श्य सामान्यतयैव वर्णसङ्ख्यानिर्देशः समुचिततर इति तदर्थमपि सम्भवत इत्येव पाठ आवश्यकः प्रतीयते। शम्भुमते इति पाठे महेश्वरमते इत्यन्येषां व्याख्याऽस्ति। तत्र भगवतः शङ्करस्योपदेशस्य इतरमतप्रतिस्पर्धिमतविशेषरूपेण प्रतिपादनं नाऽतीवोचितं प्रतीयते। शम्भुमते इति तैत्तिरीयशाखाविशेषसम्बद्धशिक्षाविशेषस्य प्रणेतुः शम्भुनामकस्याऽऽचार्यस्य मते इति व्याख्याऽपि कर्तुं शक्या प्रतीयते। तैत्तिरीयशाखाशिक्षाकर्तॄणामन्येषां मते तु न तावन्तो वर्णा इति शम्भुमतस्योल्लेखः कृतः स्यात्। एतच् च पाणिनीयशिक्षायाः कथितस्य पञ्चत्रिंशत्पद्यात्मकस्य याजुषपाठस्य तैत्तिरीयशाखासम्बद्धत्वस्य सूचकं च प्रतीयते। शिक्षाग्रन्थेषु कुत्रकुत्र कतिकति वर्णाः स्वीकृता इति विस्तरेण ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षा द्रष्टव्या (पृ.१८१–१८७)। तत्सङ्ग्रहस् तु "ऊना वा त्र्यधिका पञ्चाशद् वा सप्ताधिकाऽपि वा। अष्टाधिका

षष्टिरूनैकाधिका त्र्यधिका तथा॥ चतुर्युक् पञ्चयुक् षड्युक् सप्तयुग् वाऽष्ट-युक् तथा। त्रिसप्ततिर् वाऽष्टशतं वेति वर्णा विकल्पिताः" (२।५६–५७) इति।

हिन्दी— प्राकृत और संस्कृत भाषा में ब्रह्मा जी से स्वयम् बताए गए वर्ण सम्भावित रूप में तिरसठ या चौसठ माने गए हैं। (वे वर्ण कौन हैं- यह बात अगले पद्यों में कही गई है।)

विशेष— इस पद्य में प्रायः सभी आधुनिक लोग "शम्भुमते" यह पाठ मानते हैं। सायण ने भी ऋग्वेदव्याख्याभूमिका में "शम्भुमते" पाठ लिया है। किन्तु पञ्जिका व्याख्या में और शिक्षाप्रकाशव्याख्या में भी "सम्भवतः" पाठ ही उल्लिखित है। भट्टोजिदीक्षित ने भी शब्दकौस्तुभ में **"मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः"** इस सूत्र की व्याख्या में "सम्भवतः" पाठ ही लिया है और इसी पाठ को स्पष्टीकृत किया है। पण्डित बेचनराम त्रिपाठी ने और पण्डित कनकलालशर्मा मैथिल ने भी "सम्भवतः" पाठ को ही लिया है। शैशिरीयशिक्षा में भी "सम्भवतः" पाठ मिलता है। तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में शम्भुशिक्षा नाम की एक शिक्षा मिलती है। अतः पाणिनीयशिक्षा के याजुष पाठ में उस शिक्षाकार को लेकर "शम्भुमते" पाठ भी माना जा सकता है। साधारणतया भगवान् शङ्कर को लेकर "शम्भुमते" कहना समुचित नहीं लगता है। भगवान् शङ्कर के उपदेश को दूसरे मत के प्रतिस्पर्धी एक मत के रूप में उल्लिखित करना भगवान् शङ्कर के प्रति उतना गौरवपूर्ण व्यवहार नहीं दिखाई देता है। वर्णों की सङ्ख्या के विषय में वेद की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न मत व्यक्त किए गए हैं। वस्तुतः वेद की उस उस शाखा में उतने उतने ही वर्ण प्रयोग में आए हैं। इसी से यह मतभेद हुआ है। उन मतवादियों का वैदिक-लौकिक संस्कृत भाषा में कूल इतने ही वर्ण हैं– यह अभिप्राय नहीं है। उन मतवादियों का विवरण संस्कृत में कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में उपलब्ध है (पृ.१८१-१८७)। उन मतों में वर्णों की सङ्ख्या मतभेद से क्रमशः ४९, ५३, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ७३ और १०८ है॥३॥

[वर्णगणना]

स्वरा विंशतिरेकश् च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश् च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश् च यमाः स्मृताः ॥४॥
अनुस्वारो विसर्गश् च ᳲकᳳपौ चाऽपि पराश्रितौ।
दुस्स्पृष्टश् चेति विज्ञेय लृकारः प्लुत एव च ॥५॥

अन्वयः— स्वराः विंशतिः एकः च, स्पर्शानाम् पञ्चविंशतिः, यादयः च अष्टौ हि स्मृताः, यमाः च चत्वारः स्मृताः, अनुस्वारः विसर्गः च, पराश्रितौ ᳲकᳳपौ च अपि, प्लुतः लृकारः एव च दुस्स्पृष्टः च इति विज्ञेयः (एवम् त्रिषष्टिः चतुष्षष्टिः वा वर्णाः ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः— स्वराः=अचः, विंशतिः=नखमिताः, एकः=चन्द्रमितः, च=अपि, स्पर्शानाम्=स्थाने करणस्य स्पर्शेन अभिव्यञ्जनीयानां वर्णानाम्, पञ्चविंशतिः=तत्त्वमिता सङ्ख्या, यादयः=यकारादिकाः, च=अपि, अष्टौ=गजमिताः, हि=एव, स्मृताः=शिष्टानां स्मृतिविषयतां गताः, **यमाः=स्थाने करणस्य यमनेन अव्यक्ततयाऽभिव्यञ्जनीया नासिकास्थाना वर्णविशेषाः**, च=अपि, चत्वारः=वेदमिताः, स्मृताः= शिष्टानां स्मृतिविषयतां गताः, अनुस्वारः= सर्वदा स्वरात् पश्चादागच्छन् नासिकास्थानो वर्णविशेषः, विसर्गः=विसर्जनीयः, पराश्रितौ=परवर्तिवर्णविशेषप्रभावेण जनितारौ, ᳲकᳳपौ=जिह्वामूलीयोपध्मानीयाख्यौ वर्णौ, च=अपि, अपि=च, प्लुतः=**प्लवँस् त्रिमात्रतां** गतः, लृकारः=ऋकारसवर्णो लकारघटितो वर्णः, एव=हि, च=अपि, दुस्स्पृष्टः=ईषत् स्पर्शेन अभिव्यञ्जनीयतां गतः, च=अपि, इति=एवम्प्रकारेण, विज्ञेयः=ज्ञातव्यः। एवं त्रिषष्टिश्चतुष्षष्टिर् वा वर्णा ज्ञेया इति शेषः।

सरलार्थः— अकारादयः स्वरा एकविंशतिः, कादयो मावसानाः स्पर्शाः पञ्चविंशतिः, यकारादयो हकारान्ता अन्तस्था ऊष्माणश्चेति अष्टौ, वर्ग-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थसधर्माणः कुँ खुँ गुँ घुँ इति लिपिभिर् वर्णसमाम्नायलेखे

सङ्केतिता यमाख्या नासिकास्थाना वर्णाश् चत्वारः, विसर्गः, जिह्वामूलीयः, उपध्मानीयः, दुस्स्पृष्ट इत्यपि व्यवह्रियमाणः प्लुत लृकारश्चेति सङ्कलने त्रिषष्टिर् वर्णाः ज्ञेयाः। अनुस्वारस्य मतविशेषे अनुस्वाररङ्गभेदभिन्नस्य द्वित्वेन गणने चतुष्षष्टिर् वा वर्णा वेदितव्याः।

व्याख्या– अ आ आ३ इ ई ई३ उ ऊ ऊ३ ऋ ॠ ॠ३ लृ ए ए३ ऐ ऐ३ ओ ओ३ औ औ३ इति एकविंशतिः स्वराः, क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म इति पञ्चविंशतिः स्पर्शाः, य र ल व इति चतस्रोऽन्तस्थाः, श ष स ह इति चत्वार ऊष्माण इति यादयोऽष्टौ वर्णाः, कुँ खुँ गुँ घुँ इति वर्णसमाम्नायलेखे सङ्केतिता वर्गप्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थसधर्मत्वेन सङ्ग्राह्या नासिकास्थानवर्णविशेषरूपाश् चत्वारो यमाः, अनुस्वारः, विसर्गः, जिह्वामूलीयः, उपध्मानीयः, दुस्स्पृष्टतां प्राप्तः प्लुत लृकारश्चेति त्रिषष्टिर् वर्णाः। पक्षान्तरे अनुस्वारस्य ह्रस्वदीर्घभेदभिन्नत्वेन दीर्घस्याऽपि अनुस्वारस्य गणने चतुष्षष्टिर् वर्णाः **पञ्जिकाकारेण** पद्यैः प्रतिपादिताः। **शिक्षाप्रकाशव्याख्याकारेण** तु अनुस्वारावान्तरभेदविशेषस्य रङ्गस्य पृथग्वर्णतयाऽगणने त्रिषष्टिः, पृथग्-वर्णतया गणने तु चतुष्षष्टिर् वर्णा इत्युक्तम्। यद्यपि शिक्षाप्रकाशव्याख्याकारेण रङ्गोच्चारणप्रतिपादकाः श्लोका नैव व्याख्याताः, तथापि प्रस्तूयमानायामेतस्यां पाणिनीयशिक्षायां रङ्गस्यैकस्य वर्णस्य प्रतिपादने चतुर्णां श्लोकानां विनियुक्त-त्वात् (श्लो.२६–२९), अस्याः शिक्षाया याजुषपाठेऽपि यथा सौराष्ट्रिका नारी-त्यादिकस्य रङ्गोच्चारणप्रकारप्रतिपादकस्य पद्यस्य षष्ठपद्यत्वेन दर्शनाच्च रङ्गस्य चतुष्षष्टितमवर्णतया गणना युज्यते एव। **नारायणदत्तत्रिपाठि-कालीप्रसादमिश्र-रुद्रप्रतापावस्थि-गुरुप्रसादशास्त्रि-मधुकरफाटकादिभिः** दुस्स्पृष्टशब्देन ऋग्वेद-प्रातिशाख्यादिषु प्रसिद्धः स्वरमध्यगतो ड़कारः (ळकारः) गृहीतः। **भट्टोजि-दीक्षितेनापि** शब्दकौस्तुभे मुखनासिकेत्यादिसूत्रव्याख्याने **"दुस्स्पृष्टश्च बह्वृचानां प्रसिद्धः, ईडे वोढेति"** इत्युक्तम्। तेषां मते प्लुतलृकारस्याऽगणने त्रिषष्टिः, गणने चतुष्षष्टिर् वर्णाः। तेषां मतमेवाऽऽधुनिकैः परीक्षोपयोगिव्याख्याकारैरनुसृतम्; किन्तु तदनुपपन्नम्, ड़कारस्य गणनायां तादृशस्यैव ढ़कारस्याऽपि गणनीय-

त्वापत्तेः। ड़कारढ़कारयोर् दुस्स्पृष्टत्वेन सङ्ग्रहेणैकत्वमाश्रयितुमपि अनुचितम्, अल्पप्राणमहाप्राणधर्माभ्यां तयोर् भिन्नत्वात्, यँवँलँानामत्राऽगणितत्वाद् अवान्तरवर्णानामत्र गणना नैव क्रियते इति सिद्धान्तस्यैव स्वीकर्तव्यत्वाच् च। **शैशिरीयशिक्षायां** तु वर्णानामेवं गणना स्वीकृता प्रतीयते— एकविंशतिः स्वराः, पञ्चविंशतिः स्पर्शाः, अष्टौ यादयः, चत्वारो यमाः, अनुस्वारः, विसर्गः, ड़कारः, ढ़कारः, नासिक्यः, रङ्ग इति चतुष्षष्टिर् वर्णाः; नासिक्यस्य त्यागे त्रिषष्टिरेव वर्णाः। नासिक्यो नाम स्वतन्त्रो वर्णः **शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य-तैत्तिरीयप्रातिशाख्य-पाणिनीयव्याकरणभाष्यादिषु** प्रसिद्धः। तद्वर्णनं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां द्रष्टव्यम् (पृ.२४६-२४८)। **शौनकीयशिक्षायाः** प्राचीनेन व्याख्याकारेण तु वर्णसङ्ख्या एवं प्रतिपादिता— अ आ अ३ इ ई इ३ उ ऊ उ३ ऋ ॠ ऌ ऌ३ ए ए३ ऐ ऐ३ ओ ओ३ औ औ३ इति एकविंशतिः स्वराः, कादयो मावसनाः स्पर्शाः पञ्चविंशतिः, यादयोऽष्टौ, यमाश् चत्वारः, अनुस्वारः, विसर्गः, जिह्वामूलीयः, उपध्मानीयः, दुस्स्पृष्टो ड़कारो ढ़कारश् चेति चतुष्षष्टिर् वर्णाः (श्लो.३), दुस्स्पृष्टयोर् द्वयोर् दुस्स्पृष्टत्वेनैकीकृत्य गणनायां त्रिषष्टिर् वर्णाः (श्लो.५) इति। तत्र पाणिनीयशिक्षाया वर्णगणनापद्ये "दुस्स्पृष्टश् चेति विज्ञेयो डकारोऽथ ढ एव च" इति पाठः स्थितो लेखकसम्पादकादिप्रमादाद् **"दुस्स्पृष्टश् चेति विज्ञेयो डकारो वध एव च"** इति रूपं प्राप्त इति च प्रतीयते शौनकीयशिक्षाव्याख्यायामुद्धृतात् पाणिनीय-शिक्षावर्णगणनापद्यपाठात्। वर्णगणनाविषयेऽधिकं विवेचनं द्रष्टुकामैः कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षाया वर्णगणनाप्रकरणं विलोकनीयम् (पृ.१८१-१८७)।

यमवर्णानां स्वरूपस्य सङ्ख्यायाश् च विषये भ्रमो व्यापको वर्तते। **"यमानां ज्ञानेनैव फलम्, न तेषामुच्चारणविशेषोऽस्ति"** इति के चन वदन्ति। ज्योत्स्नाकारः श्रीरामशर्मा (सूत्र.३५३), प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षाकारो **बालकृष्णो गोडशेः** (शिक्षासङ्ग्रहे, द्वितीयसंस्करणे, पृ.२१६-२१७), पथ्या स्वस्तिरिति ग्रन्थस्य रचयिता **मधुसूदन ओझा** विद्यावाचस्पतिः (पृ.९) सम्प्रदायप्रबोधिनीकारो गोपालचन्द्रमिश्रश् (पृ.२२) चेत्यादयो जनास् तथा वदन्तो भ्रान्ता एव।

यमवर्णानामुच्चारणे स्थानकरणप्रयत्नादिप्रयोगो भवत्येव, अल्पप्राणो महाप्राणो वा अघोषो घोषवान् वा वर्णप्रकृतिभूतो वायुर् नासिकातो निस्सरत्येव। यमाः ककारादिरूपेण व्यक्ता न भवन्ति, ककारादिभ्यो विलक्षणा एव यमवर्णा इत्येव **"अशरीरं यमवँ् विद्यात्"** इत्यादेर् वचनस्य तात्पर्यं बोध्यम्। अत एव **"शून्यालये पिशाचोऽपि गर्जति न च दृश्यते"** इत्युक्तम् पाराशरीयशिक्षायाम् (श्लो.५९, द्र.– अमोघानन्दिन्यां शिक्षायाम्, श्लो.५०)। यच्च *सिद्धान्तकौमुद्याम्* **"पलिक्क्नीः चख्ख्नतुः अग्ग्निः घ्घ्नन्ति इत्यत्र क्रमेण कखगघेभ्यः परे तत्-सदृशा एव यमाः"** इति संज्ञाप्रकरणे उक्तम्, तदपि अशुद्धम्, चख्ख्नतुः इत्यत्र पूर्वस्य खकारस्य चर्त्वस्य आवश्यकत्वात्, **"अनन्यस्तु प्रकृतेः प्रत्ययार्थे"** (ऋग्-वेदप्रातिशाख्ये ६।३४) इति वचनस्य उव्वटकृततद्व्याख्यानस्य च प्रामाण्यात्, घ्घ्नन्ति इत्यत्र घकारद्वित्वनिमित्तस्याऽभावात्, पूर्वपदकल्पनया कथञ्चित् तस्योपपादने प्रयत्तेऽपि यमोत्पत्तौ एकपदस्थनिमित्तस्याऽऽवश्यकत्वेनाऽनुपपत्तेस् तादवस्थ्यात्, शैशिरीयशाकलऋग्वेदशाखायां तस्याऽनावश्यकत्वेऽपि पूर्व-घकारजश्त्वस्याऽऽवश्यकत्वाच्च। **शब्दकौस्तुभे** स्थितस्य अघ्घ्नन् इत्यस्यो-दाहरणस्याऽपि पूर्वघकारजश्त्वाभावेन दुष्टत्वं च बोध्यम्। तत्राऽयं **भट्टोजि-दीक्षितस्य** दोषस् तदनुयायिषु तद्ग्रन्थव्याख्यातृषु हरिदीक्षित-नागोजिभट्टादिषु मध्ये केनापि नैव दृष्टः, तन्निराकरणस्य वार्ता तु दूरे एव। एवं च तेषां वेदस्य वेदाङ्गशिक्षायाश् चाऽध्ययनस्य मन्दत्वमेव दृश्यते इति न खलु वेदाङ्गशिक्षा-ध्यायिभिस् तेषामेतद्विषयके वचने आदरः कर्तव्यः। चतुर्णां यमानां शुद्धानि उदाहरणानि तु– **पलिक्क्ँनीः** (ऋग्वेदे ५।२।४), **मुमुच्च्ँमहे** (ऋ.१।२९।५), **निचक्ख्ँनुः** (अथर्व.५।३१।८, १०।१।१८), **अमत्थ्ँनात्** (ऋ.१।९३।४), **अग्ग्ँनिम्** (ऋ.१।१।१), **परिज्ज्ँमानम्** (ऋ.१।१२७।२); **जग्घ्ँनथुः** (ऋ.७।९९।४), **दद्ध्ँना** (ऋ.८।२।९) इत्त्यादीनि बोध्यानि। यमस्वरूपसङ्ख्योदाहरणविषयेऽधिकं जिज्ञासुभिः कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा विलोकनीया (पृ.२३४–२४६)।

एतयोः पद्ययोः प्रतिपादितायां वर्णमालायां वर्णनिवेशक्रमस्य निर्धारणे उपपत्तिश्च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्या (पृ.१९१–१९६)।

हिन्दी– स्वर बीस और एक (इक्कीस), स्पर्श पच्चीस, यकारादि (अन्तस्था और ऊष्म) वर्ण आठ, और यम वर्ण चार, अनुस्वार (एक) विसर्ग (एक) कखपरक तथा पफपरक (परनिरूपणीय विसर्गविकार-रूप) जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय वर्ण दो, दुस्स्पृष्टता को प्राप्त प्लुत लृकार (एक) जानना चाहिए। (इस प्रकार तिरसठ वर्ण होते हैं। अनुस्वार के मतभेद से ह्रस्व दीर्घ वा अनुस्वार-रङ्ग रूप में दो सङ्ख्या लेने पर चौसठ वर्ण होते हैं।)

विशेष– तिरसठ और चौसठ वर्णों की गणना के प्रकार में विचारकों में मतभेद है। कोई प्लुत लृकार को लेने से चौसठ और छोडने से तिरसठ वर्ण बताते हैं। इन के मत में दुस्स्पृष्ट शब्द से स्वरमध्यगत ड़कार को लेना है। किन्तु ये लोग स्वरमध्यगत दुस्स्पृष्ट ढ़कार को छोड देते हैं। कोई स्वरमध्यगत ड़कार-ढ़कार को दुस्स्पृष्टत्वेन एक बताते भी हैं। तुल्यकक्षा के ड़कार को लेना और ढ़कार को छोडना तो कथमपि युक्तिसङ्गत नहीं दिखाई देता है। कोई दुस्स्पृष्ट ड़कार-ढ़कार दोनों को नहीं गिनते हैं। प्लुत लृकार को ही दुस्स्पृष्टत्व से विशेषित मानते हैं। वे चतुष्षष्टि सङ्ख्या के पूरण के लिए अनुस्वार का ह्रस्व और दीर्घ के रूप में अथवा साधारण अनुस्वार और रङ्गरूप अनुस्वार के रूप में दो भेद मान कर दोनों को गिनाते हैं। वस्तुतः वर्णसङ्ख्या का तिरसठ अथवा चौसठ ही होने में आग्रह नहीं होने से इस गणना के किसी पक्ष में भी ज्यादा आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। यह सङ्ख्या सामान्यतया सम्भावित सङ्ख्या के रूप में ही बताई गई है।

यम वर्ण के स्वरूप के और उच्चारण के विषय में बहूत भ्रम फैला हुआ है। शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य के व्याख्याता ज्योत्स्नाकार श्रीरामशर्मा ने (सूत्र.३५३), प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षाकार बालकृष्ण गोडशे ने (शिक्षा-सङ्ग्रह, द्वितीय संस्करण, पृ.२१६-२१७), पथ्या स्वस्ति के रचयिता जयपुर-राजपण्डित प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन ओझा विद्यावाचस्पति ने

(पृ.९) और सम्प्रदायप्रबोधिनी शिक्षा के रचयिता पण्डित गोपालचन्द्र मिश्र ने (पृ.२२) यम वर्ण को उच्चारण में न आनेवाला और केवल ज्ञेय बताया है। यह इन लोगों की भ्रान्ति है। "अशरीरं यमं विद्यात्" (याज्ञ-वल्क्यशिक्षा, श्लो.२०३, पाराशरीयशिक्षा, श्लो.५८) इत्यादि वचनों का तात्पर्य दूसरा है। यम ककारादि रूप में व्यक्त नहीं होते हैं, ये ककारादि से विलक्षण वर्ण हैं- इतना ही उन वचनों का तात्पर्य है। यम वर्ण को सामान्यतया यमल (जुडवाँ) वर्ण के रूप में प्रतिपादित करने वाले डब्लु.डि.ह्विट्नि, सिद्धेश्वर वर्मा, सुनीतिकुमार चटर्जी, डब्लु.एस्.यालेन, विधाता मिश्र इत्यादि आधुनिक प्राच्य-पाश्चात्त्य संस्कृताध्येताओं ने भी यम वर्णों के वास्तविक उच्चारणीय स्वरूप को समझे विना ही लेखनी चलाई है। यमों के उच्चारण में स्थान-करण-प्रयत्नादि का प्रयोग होता है, अल्पप्राण वा महाप्राण अघोष वा घोषवान् वर्णप्रकृतिभूत वायु नासिका से निकलता है। यमों के उच्चारण की प्रक्रिया पूर्वशास्त्रों के आधार पर कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में स्पष्ट रूप से वर्णित है (पृ.२३५)। यमों की वास्तविक सङ्ख्या बीस ही है। वर्गप्रथम-वर्गद्वितीयादि रूप में सङ्गृहीत करके शास्त्रकारों ने यमों को चार बताया है। इस विषय में अधिक जिज्ञासु पाठक संस्कृत में कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा का यमनिरूपणप्रकरण (पृ.२३४-२४६) देखें। यम के उदाहरण ऊपर संस्कृतव्याख्या में देखें।

हमारी प्राचीन परम्परा की वर्णमाला में वर्णों के कण्ठ, तालु इत्यादि स्थानों का और जिह्वामूल, जिह्वामध्य इत्यादि करणों का विचार करके युक्तियुक्त रूप में अकारादि वर्णों का क्रम निर्धारित किया गया है। यवनों की (ग्रीकों की) वर्णमाला में A (अल्फा), B (बीटा), Υ (गामा), △ (डेल्टा), E (एप्साइलन) इत्यादि रूप से वर्णों का जैसा युक्तिरहित और स्वर-व्यञ्जनसाङ्कर्ययुक्त क्रम है वैसा यहाँ नहीं है। यह बात उल्लेखनीय है। इस पद्य में उल्लिखित वर्णों के क्रम के निर्धारण में सभी युक्तियाँ कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में द्रष्टव्य हैं (पृ.१९१-१९६)॥४-५॥

[वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया, वर्णभेदकारणगणना च]

आत्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्ऽर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाऽग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥६॥

मारुतस् तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातस्सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्॥७॥

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभाऽनुगम्।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागताऽनुगम्॥८॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णाञ् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः॥९॥

स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नाऽनुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर् निपुणं तन् निबोधत॥१०॥

अन्वयः— आत्मा बुद्ध्या अर्थान् समर्थ्य विवक्षया मनः युङ्क्ते, मनः कायाग्निम् आहन्ति, स मारुतम् प्रेरयति॥६॥ मारुतः तु उरसि चरन् प्रातस्सवनयोगम् गायत्रम् छन्दः आश्रितम् तम् मन्द्रम् स्वरम् जनयति॥७॥ कण्ठे (चरन्) माध्यन्दिनयुगम् त्रैष्टुभानुगम् मध्यमम् (स्वरम् जनयति)। (शिरसि चरन्) तार्तीयसवनम् शीर्षण्यम् जागतानुगम् तारम् (स्वरम् जनयति)॥८॥ सः उदीर्णः मारुतः मूर्ध्नि अभिहतः वक्त्रम् आपद्य वर्णान् जनयते, तेषाम् स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नाऽनुप्रदानतः पञ्चधा विभागः स्मृतः इति वर्णविदः प्राहुः, तद् निपुणम् निबोधत॥९-१०॥

शब्दार्थः— आत्मा= जीवः, बुद्ध्या= मत्या, अर्थान्= विषयान्, समर्थ्य= सम्यग् ज्ञात्वा विमृश्य, विवक्षया= वक्तुमिच्छया, मनः= अन्तःकरणम्, युङ्क्ते= योजयति, मनः= अन्तःकरणम्, कायाग्निम्= शारीरम् अनलम्, आहन्ति=

ताडयति (व्यापारे प्रवर्तयति), सः=ताडितः कायाग्निः, मारुतम्=कोष्ठ्यं वायुम्, प्रेरयति= प्रवर्तयति॥६॥ मारुतः= तथा प्रेरितः कोष्ठ्यो वायुः, तु= एव, उरसि= वक्षसि (फुस्फुसयोः), चरन्= गच्छन्, प्रातःसवनयोगम्= सोमयागसम्बद्ध-प्रातःसवनभक्तम्, गायत्रम्=गायत्र्याख्यम्, छन्दः=कण्ठस्वरपरिच्छेदविशेषम्, आश्रितम्=अनुगतम्, तम्= प्रसिद्धम्, मन्द्रम्=गभीरम्, स्वरम्=शब्दविशेषम्, जनयति= उत्पादयति॥७॥ कण्ठे= गले, (चरन्= गच्छन्), माध्यन्दिनयुगम्= माध्यन्दिनसवनभक्तम्, त्रैष्टुभानुगम्=त्रिष्टुप्छन्दोऽनुगतम्, मध्यमम्=मन्द्रतार-मध्यवर्तिनम्, (स्वरम्=शब्दविशेषम्, जनयति=उत्पादयति), (शिरसि=मूर्ध्नि, चरन्= गच्छन्), तार्तीयसवनम्= तृतीयसवनभक्तम्, शीर्षण्यम्= शिरोभवम्, जागतानुगम्= जगत्याख्यच्छन्दोऽनुगतम्, तारम्= तीक्ष्णम्, (स्वरम्= शब्द-विशेषम्, जनयति= उत्पादयति)॥८॥ सः= यथास्थानं त्रिविधान् स्वरान् जनयिता, उदीर्णः=उद्गतः, मारुतः=कोष्ठ्यो वायुः, मूर्ध्नि=शिरसि, अभिहतः= प्रतिहतः, वक्त्रम्= वदनम्, आपद्य= प्राप्य, वर्णान्= अकारादिकान् शब्दान्, जनयति= उत्पादयति, तेषाम्= तथा जातानां वर्णानाम्, स्वरतः= उदात्तादि-स्वरात्, कालतः= ह्रस्वदीर्घादिकालात्, स्थानात्= कण्ठमूर्धताल्वादिस्थानात्, प्रयत्नाऽनुप्रदानतः= आभ्यन्तरप्रयत्नाद् बाह्यप्रयत्नाच् चेति, पञ्चधा= पञ्च-प्रकारकतया, विभागः= विभजनम्, स्मृतः= स्मृत्या अवगतः, इति= एवम्, वर्णविदः= वर्णशास्त्रज्ञाः, प्राहुः= प्रकथयन्ति, तत्= उक्तं वर्णविभागकारणम्, निपुणम्=सूक्ष्मदृष्ट्या वर्णितम्, निबोधत=जानीत॥९-१०॥

सरलार्थः— जीवो बुद्ध्या विषयान् सम्यग् ज्ञात्वा विमृश्य वक्तुमिच्छया मनः योजयति, मनः शारीरमग्निं व्यापारे प्रवर्तयति, तथा प्रवृत्तोऽग्निः कोष्ठ्यं वायुं प्रेरयति॥६॥ तथा प्रेरितो वायुः उरसि चरन् प्रातस्सवनभक्तं गायत्रच्छन्दो-ऽनुगतं मन्द्रं स्वरं जनयति॥७॥ कण्ठे चरन् माध्यन्दिनसवनभक्तं त्रिष्टुप्छन्दो-ऽनुगतं मन्द्रतारमध्यवर्तिनं स्वरं जनयति, शिरसि चरन् तृतीयसवनभक्तं जागत-च्छन्दोऽनुगतं तारं स्वरं जनयति॥८॥ यथास्थानं त्रिविधान् स्वरान् जनयिता उदीर्णः वायुः मूर्ध्नि प्रतिहतो वदनं प्राप्य अकारादिकान् वर्णान् जनयति। तथा

जातानां वर्णानाम् उदात्तादिस्वरात्, ह्रस्वदीर्घादिकालात्, कण्ठमूर्धताल्वादिस्थानात्, आभ्यन्तरप्रयत्न-बाह्यप्रयत्नाभ्यां चेति पञ्चप्रकारेण विभेदो भवति इति वर्णशास्त्रज्ञाः प्रकथयन्ति। तद् वर्णविभागकारणं सूक्ष्मेक्षिकया जानीत।

व्याख्या– एतेषु पद्येषु वर्णिता वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया वेदमन्त्रसंहिता-ब्राह्मणादिग्रन्थेषु च सूचिताऽस्ति, ऋग्वेदप्रातिशाख्याऽऽपिशलीयशिक्षादिषु ग्रन्थेषु तु सम्यक् प्रतिपादिता चाऽस्ति। तद्विस्तरः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यः (पृ.१७५-१७९)। दिक्प्रदर्शनायाऽत्र आपिशलीयशिक्षोक्ता प्रक्रिया प्रदर्श्यते। सा च यथा– **"तत्र नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमनुक्रामन्नुरःप्रभृतीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते। स विधार्यमाणो वायुः स्थानमभिहन्ति, तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यते आकाशे, सा वर्णश्रुतिः, स वर्णस्याऽऽत्मलाभः"** इति (नाभितलप्रकरणे, प्रथमं सूत्रम्)।

अत्र मन्द्र-मध्यम-ताराणां स्वराणां चर्चाऽस्ति। मन्द्र-मध्यम-ताराः स्वरा वर्णानां प्रकृतयः सन्ति। एतेषां स्वराणामुत्पत्तेः प्रक्रिया प्रातिशाख्यादिषु ग्रन्थेषु च वर्णिताऽस्ति। तत्र ऋग्वेदप्रातिशाख्ये **"त्रीणि मन्द्रं मध्यममुत्तमं च स्थानान्याहुः सप्त यमानि वाचः"** (१३।४२) इत्युक्तम्। एवमेव **शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य-तैत्तिरीयप्रातिशाख्यादिषु** चाऽयं विषयो विविधरूपेण आगतोऽस्ति। एतेषां स्वराणां सोमयागेषु प्रयोगे विशेषनियमोऽस्ति। तत्र प्रातस्सवने शस्त्रपाठादिषु मन्द्रा वाक् प्रयोक्तव्या, माध्यन्दिनसवने मध्या वाक् प्रयोक्तव्या, तृतीयसवने तारा वाक् प्रयोक्तव्या। एष नियम **ऐतरेयिब्राह्मणे** प्रतिपादितोऽस्ति। तथा हि– **"यदा वा एष प्रातरुदेत्यथ मन्द्रं तपति तस्मान् मन्द्रया वाचा प्रातःसवने शंसेत्। अथ यदाऽभ्येत्यथ बलीयस् तपति तस्माद् बलीयस्या वाचा मध्यन्दिने शंसेत्। अथ यदाऽभितरामेत्यथ बलिष्ठतमन् तपति तस्माद् बलिष्ठतमया वाचा तृतीयसवने शंसेत्"** इति (३।४४ [१४।६])।

अत्र भक्तिसाहचर्यस्याऽपि चर्चा प्रसङ्गदागता। एतस्य विषयस्य सम्यग् बोधाय **निरुक्ते** व्याख्यातं भक्तिसाहचर्यं च बोद्धव्यम्। तद् यथा–

"अथैतान्यग्निभक्तीनि– अयं लोकः प्रातःसवनं वसन्तो गायत्री त्रिवृत् स्तोमो रथन्तरं साम ये च देवगणाः समाम्नाताः प्रथमे स्थानेऽग्नायी पृथिवीडेति स्त्रियः" इति,........ "अथैतानीन्द्रभक्तीनि– अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनं ग्रीष्मस् त्रिष्टुप् पञ्चदशस्तोमो बृहत् साम ये च देवगणाः समाम्नाता मध्यमे स्थाने याश्च स्त्रियः" इति, ... "अथैतान्यादित्यभक्तीनि– असौ लोकस् तृतीयसवनं वर्षा जगती सप्तदशस्तोमो वैरूपं साम ये च देवगणाः समाम्नाता उत्तमे स्थाने याश्च स्त्रियः" इति (७।३।१–४)।

हिन्दी– जीवात्मा बुद्धिद्वारा विषयों को ठीक प्रकार से जानकर उनको बताने की इच्छा से मन को काम में प्रयुक्त करता है, मन शरीर के अग्नि को चलाने के लिए धक्का देता है, शरीर का अग्नि फेफडेरूप कोष्ठ में वर्तमान वायु को प्रेरित करता है॥६॥ इस प्रकार प्रेरित वायु वक्षःस्थल के अन्दर चलता हुआ प्रातःसवन में प्रयोज्य और गायत्री छन्द से विशेषतया सम्बद्ध मन्द्र (गम्भीर) स्वर को उत्पन्न करता है॥७॥ वही वायु कण्ठदेश में चलता हुआ माध्यन्दिन सवन में प्रयोज्य त्रिष्टुप् छन्द से विशेषतया सम्बद्ध मध्यम स्वर को उत्पन्न करता है और शिर में चलता हुआ शिर में अभिव्यक्त, तृतीय सवन में प्रयोज्य तथा जगती छन्द से विशेषतया सम्बद्ध तार स्वर को उत्पन्न करता है॥८॥ इस प्रकार ऊपर जाता हुआ प्राणवायु शिर में ठोकर खाके मुह में पहुँच कर अकारादि वर्णों को उत्पन्न करता है। उन वर्णों का उदात्तादि स्वर, ह्रस्व-दीर्घादि काल, कण्ठ-मूर्ध-ताल्वादि स्थान, आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न इन पाँच कारणों से पाँच प्रकार का विभेद होता है– यह बात वर्णशिक्षा के अभिज्ञ विद्वान् कहते हैं। उन वर्णविभाग-कारणों को बारीकी से समझ लो।

विशेष– इन पद्यों में वर्णित वर्णोत्पत्ति-प्रक्रिया को वेदमन्त्र-संहिताओं में और ब्राह्मणग्रन्थों में भी सूचित किया गया है। ऋग्वेद-प्रातिशाख्यादि प्रातिशाख्यग्रन्थों में और आपिशलीयशिक्षा में भी इस

विषय को सम्यक् प्रतिपादित किया गया है। कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में इस विषय में सप्रमाण विशद वर्णन प्रस्तुत हुआ है (पृ.१७५-१७९)।

इस प्रसङ्ग में मन्द्र-मध्यम-तार-स्वरों का जो उल्लेख हुआ है उनके विषय में भी प्रातिशाख्यों में वर्णन है। सोमयाग के तीन सवनों में मन्द्रादि स्वर के प्रयोग के नियम ऐतरेयिब्राह्मण और कात्यायनश्रौतसूत्र प्रभृति ग्रन्थों में वर्णित हैं। इस विषय के समूल और विस्तृत प्रतिपादन के लिए जिज्ञासु पाठक कौण्डिन्न्यायनशिक्षा देखें (पृ.५६५-५६६)।

इस प्रसङ्ग में मूल में आए हुए **"प्रातस्सवनयोगम्"** इत्यादि कथन में गर्भित भक्तिसाहचर्य को ठीक ठीक समझने के लिए पाठकों को निरुक्त के सम्बद्ध प्रसङ्ग (७।३।१-४) का अनुशीलन करना चाहिए।

तृतीयसवन को रुद्रप्रताप (रुद्रप्रसाद) अवस्थी जी ने सायंसवन पद से समझाने की चेष्टा की है और अन्य आधुनिक परीक्षोपयोगी व्याख्या के लेखकों ने भी उसी का अनुसरण किया है, पट्टाभिराम शास्त्री ने भी मीमांसान्यायप्रकाश की बालतोषिणी व्याख्या में ऐसा ही कहा है (पृ.१२८, १९८), किन्तु वह ठीक नहीं है। तृतीयसवन को वैदिक वाङ्मय में सायंसवन नहीं कहा जाता है॥६-१०॥

[स्वरकृतवर्णभेदाः, कालकृतवर्णभेदाश् च]

उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च स्वरितश् च स्वरास् त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि॥११॥

अन्वयः— अचि उदात्तः च अनुदात्तः च स्वरितः च (इति) त्रयः स्वराः, ह्रस्वः दीर्घः प्लुत इति कालतः नियमाः (च सन्ति)।

शब्दार्थः— अचि= अकारादिके स्वरे, उदात्तः= उच्चैरुच्चारितः, च= अपि, अनुदात्तः= नीचैरुच्चारितः, च= अपि, स्वरितः= आद्यभागे उच्चैः अवशिष्टभागे नीचैः उच्चारितः, च= अपि, (इति= एवम्प्रकारेण), त्रयः= अग्निमिताः (त्रिप्रकाराः), स्वराः= वर्णप्रकृतिभूतकण्ठस्वरविशेषाः, ह्रस्वः=

एकमात्रः, दीर्घः= द्विमात्रः, प्लुतः= त्रिमात्रः, इति= एवम्प्रकाराः, कालतः= उच्चारणकालात्, नियमाः=नियतभेदाः, (च=अपि, सन्ति=भवन्ति)।

सरलार्थः— अकारादिषु स्वरेषु उदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितश्चेति त्रयः स्वराः, ह्रस्वः दीर्घः प्लुत इति कालकृता भेदाश्च भवन्ति।

व्याख्या— अत्र शिक्षायामुदात्तादिलक्षणानि तु नोक्तानि, तानि ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयानि। तत्र **"नीचैः स्वरोऽनुदात्तः स्यादुच्चैश्चोदात्त उच्यते। स्वरितं तत्समाहारस् तदैक्यं प्रचयः स्मृतः"** इति शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.६०), **"उच्चैरुच्चार्यति यस्तु स उदात्त उदाहृतः। आयामो दृढता सौक्ष्म्यं गात्रेऽङ्गेषु तथा गले"** इत्यादिकं च कौहलीयशिक्षायाम् (श्लो.३)। पाणिनीयानि **"उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः"** इति सूत्राणि (अष्टा.१।२।२९–३१) च उदात्तादिलक्षण-रूपाणि प्रसिद्धानि। तेषां व्याख्यानानि च काशिका-सिद्धान्तकौमुद्यादिषु भ्रमजनकानि सन्ति। तद्विषये कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां विस्तरेण विचारः प्रस्तुतोऽस्ति (पृ.३१७–३२४)। तत्र प्रातिशाख्यशिक्षानुगामि-पाणिनीयव्याकरण-भाष्यानुसारम् उदात्तादिलक्षणप्रतिपादनं कृतमस्ति। तत्सारस्तु तत्रैव प्रतिपादितो यथा— **"आयामः कण्ठतन्त्र्यो रौक्ष्यं ध्वनेः स्वाणु कण्ठखम्॥ उच्चारणे यस्य तीक्ष्णः स्वरः सोदात्त उच्यते॥ मन्द्रः स्वरोऽनुदात्तः स्याद् यस्य ह्युच्चारणे भवेत्। तन्त्र्योरन्ववसर्गस् स्नैग्ध्यन् ध्वनेश्चोरु कण्ठखम्॥ यस्याऽऽद्यभागस् तूदात्त उदात्ततर एव वा। शेषोऽनुदात्तो वाऽप्येकश्रुतिस् स स्वरितः स्मृतः"** (३।५–७) इति। अस्यां शिक्षायामनुक्ताः प्रचयादिस्वरभेदा स्वरितभेदाश् च तत्र विस्तरेण निरूपिताः। **"प्रातिशाख्यशिक्षाप्रोक्तानां पाणिन्यादित्रिमुन्यभिमतानां चोदात्तादि-स्वरलक्षणानां समन्वयः काशिकाकार-सिद्धान्तकौमुदीकारादिमत-निराकरणञ् च"** इति वाराणसीस्थ-सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्याऽनुसन्धानपत्रिकायां सारस्वत्यां सुषमायां (३७ व., १–४ अ., २०३९ वै.) प्रकाशितः प्रस्तुतव्याख्याकाररचितो निबन्धोऽपीच्छुकैर् द्रष्टव्यः। शिक्षाशास्त्रस्य **"वर्णः स्वरः, मात्रा बलम्, साम सन्तानः"** इत्युक्तेषु मुख्येषु षट्सु विषयेषु तृतीयस्य विषयस्य मात्रारूपस्य लक्षणम्, ह्रस्व-दीर्घादिलक्षणानि चाऽस्यां शिक्षायां

नोक्तानि। तान्यपि ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयानि। तद्विषयकं विशदं प्रतिपादनं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां मात्राध्याये द्रष्टव्यम्। **"ऊकालोऽज् ह्रस्वदीर्घप्लुतः"** (अष्टा.१।२।२७) इति पाणिनीयं सूत्रं तु प्रसिद्धमेव। **"एकमात्रो भवेद् ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस् तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्"** इति याज्ञवल्क्यशिक्षावचनं (१।१६) च विद्वत्सु प्रसिद्धमेव। मात्राकालनिदर्शनानि तु **"चाषस्तु वदते मात्राम्"** इत्यादिना श्लोकेन अत्रापि (श्लो.४९) प्रोक्तान्येव। यद्यपि हल्षु अपि उदात्तादयः स्वरा भवन्त्येव, कालकृतो मात्राकृतो वा भेदोऽपि ङकारादिषु केषु चन हल्षु अपि भवितुं शक्नोत्येव, तथापि शिष्टभाषिते संस्कृते हल्षु स्वाश्रयाऽच्स्वरस्यैव सत्त्वेन तस्य पृथगगणनीयत्वात्, हल्षु कालकृतभेदस्याऽपि अभावाच् च अचीत्युक्तं बोध्यम्।

हिन्दी— अच् में उदात्त अनुदात्त और स्वरित ये तीन स्वर तथा ह्रस्व दीर्घ और प्लुत ये तीन कालकृत नियम भी हैं।

विशेष— उदात्तादि के लक्षण इस शिक्षा में नहीं बताए गए हैं। अन्य ग्रन्थों में वे विशेष रूप से वर्णित मिलते हैं। उनको कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षा में स्वराध्याय में सङ्गृहीत किया गया है। सङ्क्षेप में यह कहा जा सकता है कि तीक्ष्ण स्वर उदात्त, गम्भीर स्वर अनुदात्त और आद्य भाग में उदात्त तथा शेष भाग में अनुदात्त स्वर से युक्त स्वर स्वरित स्वर है। **"उच्चैरुदात्तः"** इत्यादि सूत्रों का काशिका का और सिद्धान्तकौमुदी का व्याख्यान महाभाष्यादि आर्ष ग्रन्थों का विरुद्ध है। अतः वह अशुद्ध तथा अस्वीकार्य है। इस बात को कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के उदात्तलक्षण-व्याख्यान में सप्रमाण विशद विचार से सिद्ध किया गया है। इस विषय में सारस्वती सुषमा के विशेषाङ्क में (३७ व., १-४ अ., २०३९ वै.) प्रकाशित प्रस्तुत व्याख्याकार का **"प्रातिशाख्यशिक्षाप्रोक्तानां पाणिन्यादित्रिमुन्यभिमतानां चोदात्तादि-स्वरलक्षणानां समन्वयः, काशिकाकार-सिद्धान्त-कौमुदीकारादिमतनिराकरणञ्च"** शीर्षक का निबन्ध (पृ.११६-१२३) भी द्रष्टव्य है। मात्रालक्षण और मात्राकृत कालभेद के विषय में भी विस्तृत

प्रतिपादन के लिए उपर्युक्त कौण्डिन्न्यायनशिक्षा का मात्राध्याय देखना चाहिए। व्यञ्जनों में भी उदात्तादि स्वर होता है, तथापि व्यञ्जन का स्वर स्वाश्रय स्वर के (अच् के) समान ही होता है। कतिपय व्यञ्जनों में कालकृत भेद (अर्धमात्रत्व, एकमात्रत्व इत्यादि) भी हो सकता है, तथापि शिष्टभाषित संस्कृत में व्यञ्जनों में कालकृत भेद नहीं होता है ॥११॥

[पाठस्वर-गानस्वर-संवादः]

उदात्ते निषाद-गान्धारावनुदात्त ऋषभ-धैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः ॥१२॥

अन्वयः— निषादगान्धारौ उदात्ते (अन्तर्भूतौ भवतः), ऋषभ-धैवतौ अनुदात्ते (अन्तर्भूतौ भवतः), एते षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः स्वरितप्रभवा हि (सन्ति)।

शब्दार्थः— निषादगान्धारौ= निषादगान्धारनामकौ गानस्वरौ, उदात्ते= उच्चे पाठस्वरे (अन्तर्भूतौ भवतः), ऋषभधैवतौ=ऋषभधैवतनामकौ गानस्वरौ, अनुदात्ते= नीचे पाठस्वरे (अन्तर्भूतौ भवतः), एते= प्रसिद्धाः, षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः= षड्ज-मध्यम-पञ्चमनामानो गानस्वराः, स्वरितप्रभवाः= स्वरित-मूलाः, हि=एव (सन्ति)।

सरलार्थः— गान्धर्ववेदे गाने वा प्रसिद्धौ निषादगान्धारौ स्वरौ वैदिके उदात्ते स्वरे अन्तर्भवतः, तथैव ऋषभधैवतौ स्वरौ अनुदात्ते अन्तर्भवतः, प्रसिद्धाः षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः स्वरा वैदिकस्वरितस्वरमूला इति ते स्वरिते अन्तर्भवन्ति।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां चाऽपरिगृहीतम्। याजुषे पाठे तु परिगृहीतम्। अत्र **षड्ज-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादा** गानस्वरा वैदिकेषु उदात्तादिषु स्वरेषु कुत्रकुत्राऽन्तर्भवन्तीति प्रतिपादितम्। एष विषयो याज्ञवल्क्यशिक्षादिषु अन्यासु शिक्षास्वपि प्रतिपा-

दितः। एष विषय उदात्तादिस्वरस्वरूपज्ञानायोपयोगी च विद्यते। तत्सङ्ग्रहश् च सविस्तरः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये वैदिकस्वर-गान्धर्वस्वर-तुलना-प्रकरणे द्रष्टव्यः (पृ.३६९–३७४)। तत्सारश्च– "गान्धर्ववेदे ये प्रोक्ताः सप्त षड्जादयः स्वराः। ते हि प्रायेण वेदेऽपि स्वरा नीचादयः स्मृताः॥ षड्जोऽनुदात्तः कथित ऋषभः स्वरितस् तथा। धैवतः प्रचितः प्रोक्तो निषादश् चाऽप्युदात्तकः॥ उच्चौ निषादगान्धारौ नीचावृषभधैवतौ। पञ्चमो मध्यमः षड्जः स्वरिता इति के चन॥ नीचात् षड्जर्षभौ जातावुच्चाद् गान्धारमध्यमौ। धैवताद्यास् तु स्वरिताज् जाता इत्यपि के चन" इति (३।४२–४५)। गान्धर्वस्वर-सामस्वरविवेचनमपि तत्रैव द्रष्टव्यम् (पृ.३७४–३७९)। तत्सारश्च "गान्धर्वे षड्ज ऋषभो गान्धारो मध्यमस् तथा। पञ्चमो धैवतश्चाऽपि निषादश्च स्वराः स्मृताः॥ साम्नां च क्रुष्टः प्रथमो द्वितीयश् च तृतीयकः। चतुर्थश् च तथा मन्द्रोऽतिस्वार्यश् च स्वराः श्रुताः॥ क्रुष्टादिषु यथापूर्वं षड्जादिषु यथापरम्। उच्चोच्चाः स्युः स्वरास् तुल्याश् चोभये ते यथायथम्" (३।४६–४८) इति। गान्धर्वस्वरनिदर्शनानि च "मयूरः कवते षड्जमृषभं गौर् हि रम्भते। कल्लतेऽजा तु गान्धारं क्रौञ्चः कायति मध्यमम्॥ कोकिला पञ्चमं कौति हेषतेऽश्वो हि धैवतम्। निषादं बृंहति गज एतत् स्वरनिदर्शनम्" (३।५०–५१) इति कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये सङ्गृहीतानि (पृ.३८०)।

हिन्दी– गान के निषाद तथा गान्धार स्वर उदात्त में और ऋषभ तथा धैवत स्वर अनुदात्त में अन्तर्भूत होते हैं। ये जो गान के षड्ज मध्यम और पञ्चम स्वर हैं वे स्वरितमूलक हैं।

विशेष– गानस्वर और पाठस्वर की तुलनात्मक ज्ञान उदात्तादि के स्वरूप को समझने के लिए उपयोगी है। इस विषय का विवेचन शिक्षाओं में हुआ है। उन सब का सङ्ग्रह कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के स्वराध्याय में वैदिकस्वर-गान्धर्वस्वर-तुलना-प्रकरण में द्रष्टव्य है। मुनियों ने उदाहरण के लिए पशु और पक्षियों के स्वर से षड्जादि का

उदाहरण दिया है। तदनुसार मयूर षड्ज, गाय ऋषभ, बकरी गान्धार, क्रौञ्च मध्यम, कोकिल पञ्चम, घोडा धैवत तथा हाथी निषाद स्वर निकालते हैं, यह शिक्षाशास्त्र के ग्रन्थों में कहा गया है।।१२।।

[वर्णस्थानगणना]

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस् तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश् च नासिकोष्ठौ च तालु च।।१३।।

अन्वयः— वर्णानाम् उरः कण्ठः शिरः तथा जिह्वामूलम् च दन्ताः च नासिका ओष्ठौ च तालु च (इति) अष्टौ स्थानानि (सन्ति)।

शब्दार्थः— वर्णानाम्=अकारादीनां वर्णानाम्, उरः=वक्षः, कण्ठः=गलः, शिरः=मूर्धा, तथा=तेनैव प्रकारेण, जिह्वामूलम्=रसनामूलम्, च=अपि, दन्ताः= दशनाः, च=अपि, नासिका=नासा, ओष्ठौ=रदनच्छदौ, च=अपि, तालु=काकुदम्, च=अपि, (इति= एतानि), अष्टौ= गजमितानि, स्थानानि= वर्णाभिव्यक्तिप्रदेशाः (सन्तीति शेषः)। (नासिकोष्ठौ इति समासः आर्षः सन्धिर् वाऽपि मन्तव्यः।)

सरलार्थः— अकारादीनां वर्णानाम् उरः, कण्ठः, मूर्धा, जिह्वामूलम्, दन्ताः, नासिका, ओष्ठौ, तालु चेति अष्टौ स्थानानि सन्ति।

व्याख्या— पञ्चसु वर्णविभागकारणेषु तृतीयं कारणं स्थानमस्ति। स्थानस्य परिभाषा तु अस्यां शिक्षायामुक्ता नाऽस्ति। स्थानपरिभाषा च **कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षायां** बलाध्याये द्वितीये पद्ये यथा— **"फुस्फुसान् निर्गतो वायुर् यान् देशान् प्रतिहत्य च। वर्णीभवति तान्याहुः स्थानानि खलु शिक्षकाः"** इति (५।२)। वर्णानां स्थानानि अष्टेति **शैशिरीयशिक्षायाम्** (श्लो.१९), **माण्डूकीयशिक्षायाम्** (श्लो.६८), **वर्णरत्नप्रदीपिकायां शिक्षायाम्** (श्लो.२५), **आपिशलीयशिक्षासूत्रे** चान्तिमप्रकरणे उक्तम्। **चारायणीशिक्षायां** तु **"दश स्थानानि वर्णानां कीर्तयन्ति मनीषिणः। यतः प्रवृत्तिर् वर्णानां तानि मे गदतः शृणु॥ उरः कण्ठः शिरस् तालु दन्ता ओष्ठौ तु नासिका। जिह्वामूलं तु सृक्वश् च दन्तमूलस् तथैव च"** (१।४-५,

कौ.शि., पृ.८०२) इति। एतेभ्योऽन्यानि च स्थानानि ऋग्वेदप्रातिशाख्यादिषु उल्लिखितानि। तानि कौण्डिन्न्यायनशिक्षातो वेद्यानि (पृ.४७८–४७९)।

हिन्दी– वर्णों के उरः, कण्ठ, मूर्धा, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ, और तालु ये आठ उच्चारण के स्थान हैं।

विशेष– पाणिनीयशिक्षा में और अन्य कतिपय शिक्षाओं में वर्णों के उच्चारण के स्थान आठ गिने गए हैं। चारायणीयशिक्षा में दस गिने गए हैं। ऋग्वेद-प्रातिशाख्यादिग्रन्थों में और भी स्थान उल्लिखित हैं। उनका विवरण जिज्ञासु पाठक अस्मत्प्रणीत कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में देखें (पृ.४७८–४७९)॥१३॥

[ऊष्मगतिभेदाः]

ओभावश् च विवृत्तिश् च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥१४॥

अन्वयः– ऊष्मणः ओभावः विवृत्तिः शषसाः रेफः एव च जिह्वामूलम् उपध्मा च (इति) अष्टविधा गतिः (भवति)।

शब्दार्थः– ऊष्मणः=विसर्गस्य, ओभावः=ओकारत्वप्राप्तिः, विवृत्तिः= रिक्तकालताप्राप्तिः (लोपविशेषः), शषसाः= शकारभाव-षकारभाव-सकार-भावाः, रेफः=रवर्णत्वप्राप्तिः, एव=हि, च=अपि, (इति=एवम्प्रकारेण), अष्ट-विधा=गज-मितप्रकारा, गतिः=परिणतिः, (भवति=जायते)।

सरलार्थः– विसर्गस्य ओकारभावः, विवृत्तिः, शकारभावः, षकारभावः, सकारभावः, रेफभावः, जिह्वामूलीयभावः, उपध्मानीयभावश्चेति अष्टप्रकारा परिणतिर् भवति।

विशेषः– एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां च नैव परिगृहीतम्। याजुषपाठे तु परिगृहीतम्। वस्तुत एष विषयः सन्तान-(=संहिता=

सन्धि)प्रकरणे शिष्यधीवृद्धयेऽवान्तरप्रकरणत्वेन प्रतिपादयितुमुचितः। सन्धि-विषयस्तु अस्यां शिक्षायामुपेक्षित इत्ययं विषयोऽपि अत्र सुतरामुपेक्षितुं शक्यः। तत्राऽपि वर्णस्थान-निरूपणमध्ये ग्रन्थगडुतया एतस्योत्तरस्य च पद्यस्याऽत्र सङ्ग्रहश् चिन्त्य एव। कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां तु विसर्गपरिणतिविशेषाः सन्तानाध्याये एव निरूपिता बोध्याः (पृ.६७४-६८०, ७००-७१०)। अत्रोदाहरणानि यथा- (१) बालकः+गच्छति= बालको गच्छति, (२) बालकः+आगच्छति= बालकऽ आगच्छति, (३) बालकः+शेते= बालकश् शेते, (४) बालकः+ षट्पदं विलोकयति= बालकष् षट्पदं विलोकयति, (५) बालकः+स्वपिति= बालकस् स्वपिति, (६) अग्निः+ज्वलति= अग्निर् ज्वलति, (७) बालकः+ क्रीडति= बालकः क्रीडति, (८) बालकः+पठति= बालकः पठति इति।

वैदिके पाठे स्वराद् अव्यवहिते स्वरे परे मध्ये लघीयान् विरामो विवृत्तिरित्युच्यते। द्वयोः स्वरवर्णयोरुच्चारणयोर् मध्ये वर्णोच्चारणरहितो रिक्तः कालविशेष एव करणव्यापारनिवृत्तियुतो विवृत्तिशब्दबोधितो वेदितव्यः।

हिन्दी– ओकार होना, विवृत्ति होना, शकार होना, षकार होना, सकार होना, रेफ होना, जिह्वामूलीय होना, और उपध्मानीय होना- इन आठ प्रकारों से विसर्ग की गति होती है। (उदाहरण संस्कृतव्याख्या के विशेष में देखें।)

विशेष– यह पद्य पञ्जिका में और शिक्षाप्रकाशव्याख्या में परिगृहीत नहीं है। याजुष पाठ में तो परिगृहीत है। इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान (=संहिता=सन्धि) इन छह मुख्य विषयों में छठा मुख्य विषय सन्तान (=सन्धि) प्रतिपादित नहीं है। अतः प्रस्तुत पद्य से प्रतिपादित विषय यहाँ उपेक्षणीय है। वर्णस्थानों के निरूपण के प्रकरण में बीच में इस पद्यका सङ्ग्रह चिन्त्य है।

वैदिक पाठ में स्वर से अव्यवहित उत्तर में स्वर होने पर स्वरों के बीच में जो लघु विराम किया जाता है वही विवृत्ति है।।१४।।

[ऊष्मगतिविशेषविवेकः]

यद्योकारप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः ॥१५॥

अन्वयः— यदि ओभावप्रसन्धानम् पदम् उकारादिपरम् (तर्हि) तादृशम् (पदम्) स्वरान्तम् विद्यात्, यद् अन्यत् (ओभावप्रसन्धानम् पदम्) तत् (पदम्) व्यक्तम् ऊष्मणः (गतिविशेषेण ओभावप्राप्तिरूपेण युक्तम् पदम् विद्यात्)।

शब्दार्थः— यदि=चेत्, ओभावप्रसन्धानम्=ओकारत्वप्राप्तिमता सन्धिना युक्तम्, पदम्= सुबन्तं तिङन्तं वा, उकारादिपरम्= परस्थितोकारादिकपदम्, (तर्हि= तदा), तादृशम्= उक्तविधलक्षणयुक्तम् (पदम्= सुबन्तं तिङन्तं वा), स्वरान्तम्=अजन्तम् (अन्त्याकारस्वरम्), विद्यात्=जानीयात्, यत्=साकाङ्क्ष-बुद्धिविशेषविषयभूतम्, अन्यत्= इतरत् (परस्थिताऽनुकारादिकपदम् ओकार-प्रसन्धानं पदम्), तत्= तादृशम् (पदम्), व्यक्तम्= स्पष्टरूपेण, ऊष्मणः= विसर्गस्य (गतिविशेषेण ओभावप्राप्तिरूपेण युक्तं पदं विद्यात्)।

सरलार्थः— यदि ओभावप्राप्तिमता सन्धिना युक्तं पदम् उकारादिकपद-परं तर्हि तादृशं पदम् अकारस्वरान्तं जानीयात्, यत् परस्थिताऽनुकारादिक-पदम् ओभावप्राप्तिमता सन्धिना युक्तं पदं तत् स्पष्टरूपेण विसर्गस्य ओभाव-प्राप्तिरूपेण गतिविशेषेण युक्तं पदं जानीयात्।

विशेषः— एतदपि पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां च परिगृहितं नास्ति। याजुषपाठे तु अस्ति। पूर्वपद्यवदेतत् पद्यमपि ग्रन्थगडुभूतमेव दृश्यते। पद्ये वाक्यरचना च विसंस्थुलाऽध्याहारेण पूरणीयेति पद्यमेतद् ग्रन्थप्रवक्तु-रपरिष्कृतां शैलीं प्रमाणयति।

हिन्दी— यदि ओभावप्राप्तियुक्त सन्धि से युक्त पद से अव्यवहित परवर्ती पद उकारादि है तो उस पूर्व पदको अकारस्वरान्त जाने, जो अव्यवहित परवर्ती अनुकारादि पद से युक्त ओभावप्राप्तियुक्त सन्धि से

युक्त पूर्व पद है उसको स्पष्ट रूप से विसर्ग के ओभावप्राप्तिरूप गति-विशेष से युक्त पद जाने। (यथा 'तवोदयः' में उत्तरपद उकारादि होने से पूर्वपद तव स्वरान्त है, 'बालकोगच्छति' में उत्तरपद उकारादि न होने से पूर्वपद बालकः ऊष्मान्त [विसर्गान्त] है यह निश्चय हो जाता है।)

विशेष— यह पद्य भी पञ्जिका व्याख्या में और शिक्षाप्रकाशव्याख्या में परिगृहीत नहीं है। याजुष पाठ में तो परिगृहीत है। वर्णस्थानों के निरूपण के प्रकरण के बीच में इस पद्यका सन्निवेश भी चिन्त्य है॥१५॥

[वर्णविशेषस्थाननिरूपणम्]

हकारं पञ्चमैर् युक्तमन्तस्थाभिश् च संयुतम्।
उरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्॥१६॥

अन्वयः— पञ्चमैः युक्तम् अन्तस्थाभिः च संयुतम् हकारम् उरस्यम् विजानीयात्, असंयुतम् तम् कण्ठ्यम् आहुः।

शब्दार्थः— पञ्चमैः= कवर्गादिवर्गान्तिमवर्णैर् ङकारादिभिः, युक्तम्= संयुक्तम्, अन्तस्थाभिः=अन्तस्थासञ्ज्ञकैर् वर्णैः (यरलवैः), संयुतम्=संयुक्तम्, हकारम्=अन्तिमव्यञ्जनवर्णम्, उरस्यम्=उरःस्थानकम्, विजानीयात्=विद्यात्, असंयुतम्= पञ्चमैरन्तस्थाभिश् च असंयुक्तम्, तम्= पूर्वोक्तं वर्णं हकारम्, कण्ठ्यम्=कण्ठस्थानकम्, आहुः=ब्रुवन्ति।

सरलार्थः— वर्गपञ्चमवर्णैः संयुक्तम् अन्तस्थासञ्ज्ञकैर् वर्णैः संयुक्तं च हकारम् उरःस्थानकं विजानीयात्, वर्गपञ्चमैर् वर्णैः अन्तस्थासंज्ञकैर् वर्णैश् चाऽपि असंयुक्तं हकारं तु कण्ठस्थानकमेव जानीयात्।

व्याख्या— अपराह्णे, आह्निकम्, ब्राह्मणाः, बाह्यः, ह्रस्वः, आह्लादः, आह्वानम् इत्यादिषु स्थलेषु हकारस्य वर्गपञ्चमयुतस्य अन्तस्थायुतस्य चोरःस्थानकत्वं च हकारादुत्तरस्य पञ्चमवर्णस्य अन्तस्थावर्णस्य वोच्चारणे

वायोरवरोधेन हकारोच्चारणेऽपि वायोः कियताऽप्यंशेनाऽवरोधाद् वायुना अन्तर्-मुखस्य गुञ्जितस्येव जननाद् बोध्यम्। तैत्तिरीयशाखायां तु पञ्चमपरकस्य हकारस्य नासिक्यवर्णताप्राप्तिर् भवतीति तैत्तिरीयप्रातिशाख्य-व्यासशिक्षादिषु प्रतिपादितं वर्तते। तद्विवरणं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां नासिक्यवर्णविवेचने द्रष्टव्यम् (पृ.२४६-२४८)। तत्सारश् च- "हकाराद् ण-न-मेष्वेकस्मिन् हि एकपदे स्थिते। परेऽन्तरागतो रक्तो हँस् तु नासिक्य उच्यते" इति (२।८५)।

हिन्दी— परवर्ती वर्गपञ्चम वर्णों से और अन्तस्थासंज्ञक वर्णों से संयुक्त हकारको उरःस्थानक जाने, और उन वर्णों से असंयुक्त हकार को कण्ठस्थानक जाने।

विशेष— परवर्ती वर्गपञ्चम वर्ण ण न म इन से संयुक्त अपराह्ण, आह्निक, ब्रह्म इत्यादि पद में स्थित हकार कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय-शाखा में नासिक्य वर्ण बन जाता है। यह बात तैत्तिरीयप्रातिशाख्य तथा व्यासशिक्षादि तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में वर्णित है। नासिक्य एक पृथक् ही वर्ण माना जाता है। नासिक्य वर्ण के विवेचन के लिए कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा देखें (पृ.२४६-२४८) ॥१६॥

कण्ठ्यावहाविचुयशास् तालव्या ओष्ठजावुपू।
स्युर् मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ॥१७॥

अन्वयः— अहौ कण्ठ्यौ, इचुयशाः तालव्याः, उपू ओष्ठजौ, ऋटुरषाः मूर्धन्याः स्युः, लृतुलसाः दन्त्याः स्मृताः।

शब्दार्थः— अहौ=अकारहकारौ, कण्ठ्यौ= कण्ठस्थानभवौ, इचुयशाः= इकार-चवर्गीयवर्ण-यकार-शकाराः, तालव्याः= तालुस्थानभवाः, उपू= उकार-पवर्गीयवर्णौ, ओष्ठजौ= दशनच्छदस्थानभवौ, ऋटुरषाः= ऋकार-टवर्गीयवर्ण-रेफ-षकाराः, मूर्धन्याः=मूर्धस्थानभवाः, लृतुलसाः=लृकार-तवर्गीयवर्ण-लकार-सकाराः, दन्त्याः=दशनस्थानभवाः, स्मृताः=स्मृतिरूपेण ज्ञानेनाऽवगताः।

सरलार्थः— अकारहकारौ कण्ठस्थानौ, इकार-चवर्गीयवर्ण-यकार-शकाराः तालुस्थानाः, उकार-पवर्गीयवर्णौ ओष्ठस्थानौ, ऋकार-टवर्गीयवर्ण-रेफ-षकाराः मूर्धस्थानाः, लृकार-तवर्गीयवर्ण-लकार-सकारा दन्तस्थाना अवगताः सन्ति।

व्याख्या— वर्णस्थानेषु कण्ठादीनि स्थानानि नाम्ना प्रसिद्धानि। तत्-स्वरूपाणि तु शिक्षकैर् विशेषतोऽवर्णितानीति साधारणतया जनैरविदितानि। तस्मात् तेषां परिचयाय कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया वर्णाध्यायस्य वर्णोत्पत्ति-शारीराधिकारात् काश्चन कारिकाः प्रदर्श्यन्ते— **"मुख-नासाकुहरिकाविभाग-स्थानतस् त्वधः। स्वरयन्त्रमुखादूर्ध्वः प्रदेशः कण्ठ उच्यते॥ मध्यस् तथोन्नत-तमो भागो मुखबिलस्य तु। छदिषोऽभिमतो मूर्धा शिक्षकाणां विपश्चिताम्॥ उक्ताद् मूर्ध्नः पुरः पश्चाद् बर्स्वाद् यो भाग आस्यगः। तत् तालु शिक्षाशास्त्रे तु विदुषामभिसंहितम्॥ दन्तवेष्टाग्र्यभागस्योर्ध्वस्य पश्चिमतः स्थितः। धारा-मध्यस्थ उत्सेधो बर्स्वं वर्त्सं च भण्यते"** (२।३३,३७–३९) इति।

विशेषः— ऋकारस्य स्थानस्य करणस्य च विषये शिक्षाग्रन्थेषु मतभेद इव दृश्यते। तेन साधारणा जनास्तु भ्रान्ता भवन्त्येव, ऋकारस्वरूपस्य यथार्थ-तयाऽज्ञानात् पण्डिता अपि तद्विषये व्यामूढतां प्राप्ताः प्रतीयन्ते। ऋकार-लृकार-स्थान-करण-श्रुति-लिपि-विषये तु विशिष्टाः कोशकारा अपि व्यामूढा दृश्यन्ते। एतादृशेनैव व्यामोहेन पुण्यपत्तनस्थ-भाण्डारकर-प्राच्यविद्यासंशोधन-मन्दिराधिकृतैः १९३५ तमे क्रैस्ताब्दे प्राकाश्यं नीतेषु पाणिनीयसूत्रपाठस्य तत्-परिशिष्टग्रन्थानां च शब्दकोशेषु ५२ तमे पृष्ठे २३४ तमे पृष्ठे; १९३७ तमे क्रैस्ताब्दे प्राकाश्यं नीते महाभाष्यशब्दकोशे २९७ तमे पृष्ठे च वर्णानुक्रमव्यत्यासेन शब्द-निवेशः कृतो दृश्यते। वाराणसीरामघट्टस्थ-श्रीवल्लभरामशालिग्राम-साङ्गवेद-विद्यालयस्य त्रिषष्टितमस्य वर्षस्य विवरणे २०४० तमवैक्रमाब्दसम्बद्धे द्वाविंशे त्रयोविंशे च पृष्ठे प्रकाशिते ऋकार-लृकारविचारे च निर्णेतृमध्यस्थगतोऽपि व्यामोहः प्रतीयते। तथैव भागीरथत्रिपाठिना प्रणीते "संस्कृत भाषा सीखने की सरल और वैज्ञानिक विधि" इति ग्रन्थे वर्णकाण्डे ३७ तमे पृष्ठे दीर्घऋकारो-

च्चारणविषये अशास्त्रीयरूपस्य वर्णितत्वात् तद्विषये तत्र भवतोऽपि व्यामोहः सञ्जातः प्रतीयते। एतस्य व्यामोहस्य निराकरणाय कौण्डिन्नयानशिक्षायाः सम्बद्धो भागो द्रष्टव्यः (प्रस्ताविकायाम् आ-इ-पृष्ठयोः; वर्णाध्याये वर्णविशेषविवेचनाधिकारे ऋकारऌकारविवेकप्रकरणे, पृ.२००-२०९; मात्राध्याये दीर्घप्लुतऋकारल्कारस्वरूपगतविशेषविवरणे, पृ.४५३-४५५; बलाध्याये ऋकारल्कारस्थानकरणप्रयत्नादिविचारप्रकरणेषु च, पृ.४८३-४८५, ५०८-५१०, ५२९-५३०)।

हिन्दी— अकार और हकार कण्ठस्थानक, इकार चवर्गीय वर्ण (च छ ज झ ञ) यकार और शकार तालुस्थानक, उकार और पवर्गीय वर्ण (प फ ब भ म) ओष्ठस्थानक, ऋकार टवर्गीय वर्ण (ट ठ ड ढ ण) रेफ और षकार मूर्धस्थानक तथा ऌकार तवर्गीयवर्ण (त थ द ध न) लकार और सकार दन्तस्थानक अवगत हुए हैं।

विशेष— वर्णों के कण्ठादि स्थान प्रसिद्ध हैं। किन्तु कण्ठादिका स्वरूप शिक्षाग्रन्थों में प्रायः अवर्णित हैं। उनके वर्णन कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के वर्णाध्याय के वर्णोत्पत्ति-शारीराधिकार में पाए जाते हैं। जिज्ञासु पाठक उनका विस्तार वहीं देखें। कुछ सम्बद्ध कारिकाएँ ऊपर संस्कृत व्याख्या में उद्धृत की गईं हैं। ऋकार-ऌकार के स्थान-करण-प्रयत्न-श्रुति-लिपि के विषय में भी पण्डितों और विशिष्ट कोशकारों में भी व्यामोह पाया जाता है। इस व्यामोह का सङ्केत ऊपर संस्कृत व्याख्या में किया गया है। एकस्वरमात्ररूप ऌकार की और लकार-ऋकारघटित अक्षर की लिपि में पार्थक्य स्थापित करना भी उचित और आवश्यक है। इस विषय में भी जिज्ञासु पाठक कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के ऊपर संस्कृतव्याख्या में निर्दिष्ट भाग का अवलोकन करें। हम ने लकार-ऋकार घटित अक्षर की प्रचलित लिपि 'ऌ' से एकस्वररूप ऌकार की पृथक् रूप की लिपि (ऌ) का प्रस्ताव वहाँ किया है। स्वरभक्ति की समुचित लिपि का तथा अन्य आवश्यक लिपियों का प्रस्ताव भी किया है।

वर्तमान काल में ऋकार के उच्चारण में समस्या बनी हुई दीखती है। विभिन्न प्रान्तों के संस्कृताध्येता विभिन्न रूप में ऋकार का उच्चारण करते हैं। 'कृष्ण' इस पद का क्रष्ण, क्रिष्ण, क्रुष्ण, क्रेष्ण इत्यादि सभी उच्चारणों को कुछ आधुनिक विचारक उपादेय मानते हैं। किन्तु ये सब उच्चारण तत्तद् देश्य भाषा के उच्चारण के प्रभाव से संस्कृत में घुसे हुए अपभ्रंशरूप के उच्चारण हैं। याज्ञ कर्म में प्रयोक्तव्य संस्कृतभाषा के वर्णों का उच्चारण प्रातिशाख्यादि शिक्षाग्रन्थों में वर्णित रूप से अनादि अनपभ्रष्ट रूप में ही करना आवश्यक है। अतः उक्त विचार ग्राह्य नहीं है।

इसी प्रकार क्ष का छ्य उच्चारण और ज्ञ का ग्यँ द्न न्य इत्यादि उच्चारण अपभ्रंश रूप के होने से त्याज्य हैं। इन का वेदाङ्गशिक्षा-व्याकरणादिशास्त्रसम्मत शुद्ध उच्चारण क्ष और ज्ञ ही है। उच्चारण में सुधार लाने के लिए लेखन में भी क्ष ज्ञ का ही प्रयोग करना समुचित है। हम ने कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में सम्पूर्ण ग्रन्थ में वैसा ही प्रयोग किया भी है॥१७॥

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्तोष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः।
एऐ तु कण्ठ्यतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ॥१८॥

अन्वयः— कुः बुधैः जिह्वामूले प्रोक्तः, वः (बुधैः) दन्तोष्ठ्यः स्मृतः, एऐ तु (बुधैः) कण्ठ्यतालव्यौ स्मृतौ, ओऔ (बुधैः) कण्ठोष्ठजौ (स्मृतौ)।

शब्दार्थः— कुः=कवर्गीयवर्णः, तु=हि, बुधैः=वर्णशिक्षाविद्भिः, जिह्वा-मूले=रसनामूले, प्रोक्तः=कथितः, वः=अन्तस्थासु अन्त्यो वर्णः, (बुधैः=वर्ण-शिक्षाविद्भिः), दन्तोष्ठ्यः=दन्तकरणक ओष्ठे भवश्च, स्मृतः=स्मृतिविषयत्वेना-ऽवगतः, एऐ=एकार ऐकारश्च, (बुधैः=वर्णशिक्षाविद्भिः), कण्ठ्यतालव्यौ=कण्ठतालुभवौ, स्मृतौ= स्मृतिविषयत्वेनाऽवगतौ, ओऔ= ओकार औकारश्च, (बुधैः= वर्णशिक्षाविद्भिः), कण्ठोष्ठजौ= कण्ठोष्ठभवौ, स्मृतौ= स्मृतिविषय-त्वेनाऽवगतौ।

सरलार्थः— कवर्गीयवर्णो बुधैः जिह्वामूलभवः कथितः, वकारो दन्तकरणकः ओष्ठभवः स्मृतः, एकारैकारौ बुधैः कण्ठतालुभवौ स्मृतौ, ओकारौकारौ बुधैः कण्ठोष्ठभवौ स्मृतौ।

विशेषः— एतस्यां पद्यात्मिकायां पाणिनीयशिक्षायां कवर्गीयवर्णो जिह्वामूलीय उक्तः, आपिशलीयशिक्षासूत्रे तु कवर्गीयवर्णः स्वमते कण्ठ्यः एकेषां मते जिह्व्य उक्तः। तथा सति भट्टोजिदीक्षितेन पाणिनीय-सावर्ण्यसूत्रव्याख्याने केन कारणेन कवर्गीयवर्णः कण्ठ्य उक्त इति विचारमर्हति। **"तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्"** इति सूत्रस्य वृत्तेर् व्याख्याने न्यासे (१।१।९) *जिनेन्द्रबुद्धिना* **"अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः"** इत्यादीनि शिक्षावचनानि उदाहृतानि। तान्येवाऽनुसृत्य **भट्टोजिदीक्षितेन** कवर्गीयवर्णस्य कण्ठः स्थानमुक्तमिति प्रतीयते। एतेन पाणिनीयसूत्रव्याख्याने भट्टोजिदीक्षितेनाऽत्र पद्यात्मिका पाणिनीयशिक्षा विस्मृताऽवगम्यते। **नागोजिभट्टेन** तु पाणिनीयव्याकरण-प्रक्रियायां कवर्गीय-वर्णानां कण्ठ्यत्वे वा जिह्वामूलीयत्वे वाऽप्याश्रिते बाधाभावं पश्यता तद्दोषसमाधानाय **"कण्ठपदं कण्ठस्थानतत्समीपजिह्वामूलस्थानोभयपरम्"** इत्युक्तम्। वस्तुतस्तु अकारहकारविसर्जनीयानामुच्चारणे कवर्गीयवर्णानामुच्चारणे च स्थानकृतं पार्थक्यं स्फुटमनुभूयते इति तयोर् विवेकेन पृथक्स्थानत्वेनैव प्रतिपादनं युक्ततरं बोध्यम्। एतद्विषये शिक्षाकाराणां मतभेदयुक्तानि वचनानि कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सङ्गृहीतानि द्रष्टव्यानि (पृ.४९१–४९३)। कवर्गीयवर्णानामपि जिह्वामूलभवत्वेऽपि कखपरकविसर्जनीयविशेषस्यैव जिह्वामूलीयत्वेन प्रसिद्धिः रूढिवशाज् जाता ज्ञेया। **"पश्यामः समानकर्मणां नामधेय-प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा तक्षा परिव्राजको जीवनो भूमिज इति"** इति यास्कवचनं च स्मर्तव्यम् (१।४।३)।

अत्र **"दन्तोष्ठ्यो वः"** इति परम्परागतः पाठोऽवगम्यते। तत्र नागोजिभट्टेन स्वाङ्गसमुदायस्य स्वाङ्गत्वाभावाद् यत्प्रत्ययस्याऽप्राप्त्या दन्तोष्ठ्य इति प्रयोगोऽनुपपन्न इति मत्वा दन्त्योष्ठ्य इति पाठः कल्पितः प्रतीयते। स चाऽज्ञानमूलक इति सिद्धान्तकौमुदीटिप्पण्यां शिवदत्तशर्मा दाधीमथः। वयमपि "दन्त-

करणक ओष्ठ्यो दन्तोष्ठ्यः" इति मध्यमपदलोपिनं समासमाश्रित्य परम्परागतं "दन्तोष्ठ्यः" इति प्रयोगं साधुं मन्यामहे। वकारस्य दन्तकरणकौष्ठ्यत्वं च कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां प्रामाणिकवचनैः साधितम्, तत् तत्रैव स्थानकरणाधिकारयोर् द्रष्टव्यम्।

हिन्दी— कवर्गीय वर्ण (क ख ग घ ङ) जिह्वामूल में होनेवाला बताया गया है, वर्णशिक्षाविद् लोगों से वकार दन्तोष्ठ्य (दाँतों से अधरोष्ठ को छूकर बोला जाने वाला) माना गया है, एकार और ऐकार कण्ठ-तालुरूप स्थानद्वय में होने वाले माने गए हैं; और वर्णशिक्षाविद् विद्वानों से ओकार और औकार कण्ठोष्ठरूप स्थानद्वय में होने वाले माने गए हैं।

विशेष— इस पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा में कवर्गीय वर्ण को जिह्वामूलीय बताया गया है। गद्यसूत्रात्मक पाणिनीयशिक्षासूत्र में और आपिशलीयशिक्षासूत्र में तो कवर्गीय वर्ण को कण्ठ्य बताया गया है। पाणिनि के "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" सूत्र की व्याख्या में भट्टोजि दीक्षित ने "अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः" कहकर कवर्गीय वर्ण को कण्ठ्य बताया है। इस प्रकार पाणिनीयसूत्र का व्याख्यान पद्यात्मक पाणिनीयशिक्षा का विरुद्ध दिखाई देता है। इस विरोध के परिहार के लिए नागोजिभट्ट ने सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या लघुशब्देन्दुशेखर में "कण्ठपद कण्ठस्थान तथा तत्समीपस्थ जिह्वामूलस्थान दोनों को बताने के अभिप्राय से प्रयुक्त है" ऐसा कहा है। वस्तुतः कण्ठस्थान और जिह्वामूलस्थान उच्चारणगत वैशिष्ट्य के आधार पर पृथक् ही माने जाने चाहिए। अ-ह का और क-ख का एक ही उच्चारणस्थान मानना वस्तुस्थितिका प्रतिकूल ही है। पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया की दृष्टि से कवर्गीय वर्ण को कण्ठ्य मानने में और जिह्वामूलीय मानने में कोई अन्तर नहीं पडता है। अतः यदि गद्यसूत्रात्मक पाणिनीयशिक्षा को ही वास्तविक पाणिनीयशिक्षा मानना है तो पाणिनि के 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' सूत्र की व्याख्या में कवर्गीय वर्णको कण्ठ्य बताना ही ठीक है। यदि पद्यात्मिका पाणिनीयशिक्षा ही वास्तविक

पाणिनीयशिक्षा है तो उस पाणिनीय सूत्र की व्याख्या में कवर्गीय वर्ण को जिह्वामूलस्थानक बताना ही युक्ततर प्रतीत होता है।

"दन्तोष्ठ्यः" पाठ को अनुपपन्न मान कर नागोजिभट्ट ने "दन्त्योष्ठ्यः" पाठ माना है। किन्तु "दन्तकरणक ओष्ठ्यः दन्तोष्ठ्यः" इस मध्यमपदलोपी समास को मानकर परम्परागत "दन्तोष्ठ्यः" पाठ उपपन्न माना जा सकता है। शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्यादि में "वो दन्ताग्रैः" (१।८१) इत्यादि सूत्रों को देखते हुए वकार का करण दाँतों को मानना समीचीन है।

संस्कृत के दन्तोष्ठ्य वकार का उच्चारण कुछ लोग पवर्गीय बकार के समान ही कर देते हैं। कुछ लोग दो होठों को वृत्ताकार बनाकर 'व़ह' 'व़े' इत्यादि में पाए जाने वाले व़कार के समान उच्चारण करते हैं। उक्त प्रकार के उच्चारण में दन्तकरणकता नहीं होती। अतः ये दोनों ही प्रकार वेदाङ्गशिक्षाशास्त्र की दृष्टि से अशुद्ध हैं। प्रातिशाख्यादि वेदाङ्गशिक्षाओं में पाए जाने वाले दन्तोष्ठ्य वकार के उच्चारणप्रक्रिया के अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है। अतः दन्तोष्ठ्य वकार का उच्चारण ऊपर की दन्तपङ्क्ति के अग्रभाग को नीचे के होंठ में स्पर्श कराकर करना ही शास्त्रसम्मत होगा ॥१८॥

[ए-ओ-ऐ-औ-वर्णविचारः]

अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य ऐकारौकारयोर् भवेत्।
एकारौकारयोर् मात्रा तयोर् विवृतसंवृतम् ॥१९॥

अन्वयः— ऐकारौकारयोः अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य भवेत्, एकारौकारयोः मात्रा (तु कण्ठ्यस्य भवेत्), तयोः विवृतसंवृतम् (करणम्) भवेत्।

शब्दार्थः— ऐकारौकारयोः= ऐकारे औकारे च, अर्धमात्रा= आद्यः अर्धमात्रात्मको भागः, तु=हि, कण्ठ्यस्य=कण्ठस्थानकस्य अवर्णस्य, भवेत्= स्यात्, एकारौकारयोः=एकारे ओकारे च, मात्रा=आद्यः मात्रात्मको भागः (तु=

हि, कण्ठ्यस्य= कण्ठस्थानकस्य अवर्णस्य, भवेत्= स्यात्); तयोः= उक्तयोः ऐकारौकारयोः एकारौकारयोश्च पूर्वभागयोः, विवृतसंवृतम्= क्रमेण विवृतं संवृतं च, (करणम्=आभ्यन्तरप्रयत्ने करणम्), भवेत्=स्यात्।

सरलार्थः— ऐकारे औकारे च आद्यः अर्धमात्रात्मको भागः कण्ठस्थान-कस्य अवर्णस्य भवेत्, एकारे ओकारे च आद्यः मात्रात्मको भागः कण्ठस्थान-कस्य अवर्णस्य भवेत्, परिशेषाद् अवशिष्टो भागः ऐकारे एकारे च इवर्णस्य, औकारे ओकारे च उवर्णस्य भवेत्; तयोः ऐकारौकारयोः एकारौकारयोश् च पूर्वभागयोः अवर्णयोः क्रमेण विवृतं संवृतं च करणं भवेत्।

विशेषः— ऐकारौकारयोः एकारौकारयोश्च द्विस्थानकतामुपपादयितुं तत्स्वरूपविशेषताऽनेन पद्येन वर्णिताऽस्ति। ऐकारादेकारस्य औकारादोकारस्य च भेदोऽप्यत्र प्रसङ्गात् स्फुटीकृतोऽस्ति। एतस्य पद्यस्य प्रचलितः पाठो भ्रष्ट एव भातीति गुरुप्रसादशास्त्रिमहाभागोऽपि प्राह स्म। तत्प्रदर्शितानि टिप्पणी-गतानि पाठान्तराणि विचार्य शिक्षापञ्जिकासम्मतमेकारौकारयोर् भवेदिति पाठं च विमृश्य पाणिनीयाष्टाध्यायीसूत्रारूढमतानुसारिणोऽर्थस्याऽनुकूलोऽयं पाठो-ऽत्राऽस्माभिः प्रकल्प्य गृहीतो बोध्यः। **"ऐकारौकारयोर् मात्रा तयोर् विवृतसंवृतम्"** इति पाठ एव युक्तः प्रतिभातीति पण्डितकालीप्रसादमिश्रोऽपि मन्यते स्म। अत्र ऐकारौकारयोरकारभागस्य विवृतत्वम्, एकारौकारयोरकारभागस्य संवृतत्वं चोक्तं बोध्यम्। अथवा अकारस्य इकारोकारापेक्षया विवृतत्वाद्, इकारोकारयो-रकारापेक्षया संवृतत्वाद् ऐकारादिषु चतुर्षु वर्णेषु पूर्वोत्तरभागयोर् विवृतसंवृतत्व-मुक्तं बोध्यम्। इकारोकारयोरकारापेक्षया संवृतत्वं चाऽनुभवगम्यम्, पाणिनीय-व्याकरणभाष्ये अइउण्सूत्रे चतुर्थवार्तिके प्रतिपादितं च। ऐकारे औकारे च पूर्वोत्तरभागयोर् विषममात्राकत्वाद् भागयोः पार्थक्यस्य स्फुटत्वम्, एकारे ओकारे च पूर्वोत्तरभागयोः सममात्राकत्वाद् भागयोः पार्थक्यस्याऽस्फुटत्वमिति च विवेक्तव्यम्। एतद्विषयेऽधिकां विवेचनां वाञ्छद्भिः कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायाः वर्णाध्याये वर्णविशेषविवेचनाधिकारे अे अै ओ औ इत्येतेषां विवे-चनम् (पृ.२०९–२१३), मात्राध्याये सन्ध्यक्षरमात्राविशेषनिरूपणम् (पृ.४५५–

४५६), बलाध्याये वर्णविशेषाणामाभ्यन्तरप्रयत्नस्य निरूपणं च (पृ.५२७-५३१) द्रष्टव्यम्। उपरि प्रस्तुतं व्याख्यानं हि **"एच इग् घ्रस्वादेशे"** (अष्टा.१।१।४८) इति सूत्रयतः पाणिनेराचार्यस्य, **"सन्ध्यानि सन्ध्यक्षराण्याहुरेके द्विस्थानतैतेषु तथोभयेषु। सन्ध्येष्वकारोऽर्धमिकार उत्तरं युजोरुकार इति शाकटायनः"** (ऋग्वेदप्रातिशाख्ये १३।३८,३९) इत्यादिना सन्दर्भेण समुल्लिखितानां शाकटायनादीनामाचार्याणां च मतेन कृतं बोध्यम्। **"एच इग् घ्रस्वादेशे"** इति सूत्रे **"सिद्धमेङः सस्थानत्वादैचोश्चोत्तरभूयस्त्वाद्"** इति वदतो वार्तिककारस्य **कात्यायनस्य** तत् समर्थयमानस्य भाष्यकारस्य **पतञ्जलिमुनेश्** च मते तु एकारस्य ओकारस्य च एकस्थानकत्वाद् एकारस्य ओकारस्य च द्विस्थानकत्वं विलक्षणपूर्वोत्तरभागवत्त्वं चात्र प्रतिपाद्यमानमसङ्गतं भवतीति च बोध्यम्। एकारस्य ओकारस्य च स्थानस्य विषये शिक्षाकाराणां वचनानि सोहापोहानि कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां बलाध्याये स्थानाधिकारे साकल्येन सङ्गृहीतानि द्रष्टव्यानि (पृ.४८५-४९१)।

हिन्दी– ऐकार और औकार में आद्य अर्धमात्रा कण्ठस्थानक अवर्ण की होती है, एकार और ओकार में आद्य मात्रा कण्ठस्थानक अवर्ण की होती है; उनका विवृत और संवृत करण होता है।

विशेष– इस पद्य में ऐ औ और ए ओ इन चार वर्णों के द्विस्थानकत्व का उपपादन किया गया है तथा प्रसङ्गवश ऐकार से एकार का और औकार से ओकार का पार्थक्य भी दिखाया गया है। इस पद्य का लिखितपरम्पराऽगत पाठ लेखकदोष से भ्रष्ट मालूम पडता है। पाणिनीय व्याकरण के सूत्र-वार्त्तिक-भाष्यों के विचार से ऊपर दिया हुआ पाठ समुचित माना जा सकता है। मुख्य रूप से यह पाठ पाणिनीय व्याकरण-सूत्र तथा शाकटायनादिमत का विशेषतया अनुकूल है। "तयोर् विवृत-**संवृतम्**" का अर्थ ऐकार-औकार के आद्य कण्ठ्य भाग का विवृतत्व और एकार-ओकार के आद्य कण्ठ्य भाग का संवृतत्व प्रतिपादित करने वाला अथवा ऐकारादि चारों वर्णों के पूर्वोत्तर भागों का क्रमेण विवृतत्व और

संवृतत्व प्रतिपादित करने वाला भी माना जा सकता है। उनमें पहला अर्थ अधिक उपयुक्त जँचता है।

यद्यपि कात्यायन और पतञ्जलि इत्यादि आचार्यों के मत में एकार और ओकार एकस्थानक और समानाक्षर हैं, तथापि शाकटायन-पाणिनि इत्यादि प्राचीनतर आचार्यों के मत में एकार तथा ओकार भी द्विस्थानक ही हैं और सन्ध्यक्षर ही हैं। अतः 'संस्कृत् हिष्टोरिकल् फोनोलजि' नाम के ग्रन्थ में (पृ.२३-२४) अमेरिकन संस्कृताध्येता फ्र्याङ्क्लिन् एजर्टन् ने जो आक्षेप किया है वह अबोधमूलक है।

एतस्य पद्यस्य सव्याख्यः प्रचलितः पाठस्तु—

अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारैकारयोर् भवेत्।
ओकारौकारयोर् मात्रा तयोर् विवृतसंवृतम्॥

अन्वयः— एकारैकारयोः अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य भवेत्, ओकारौकारयोः मात्रा (कण्ठ्यस्य भवेत्), तयोः विवृतसंवृतम् (करणम् भवेत्)।

शब्दार्थः— एकारैकारयोः=एकारे ऐकारे च, अर्धमात्रा=आद्या अर्धमात्रा, तु=हि, कण्ठ्यस्य=कण्ठस्थानकस्य अवर्णस्य, भवेत्=स्यात्, ओकारौकारयोः= ओकारे औकारे च, मात्रा=आद्या मात्रा, (कण्ठ्यस्य=कण्ठस्थानकस्य अवर्णस्य, भवेत्= स्यात्), तयोः= एकारादीनां पूर्वोत्तरभागयोः, विवृतसंवृतम्= क्रमेण विवृतं संवृतं च (करणम्=आभ्यन्तरप्रयत्ने करणम्, भवेत्=स्यात्)।

विशेषः— अत्र एकारैकारयोः ओकारौकारयोश् च आद्या अर्धमात्रा मात्रा वा कण्ठ्यस्याऽवर्णस्य भवेत्, एकारे ओकारे च कण्ठ्यस्य भागस्य संवृतत्वम्, ऐकारे औकारे च कण्ठ्यस्य भागस्य विवृत्वं भवेदिति रुद्रप्रतापादयो व्याचक्षते। अन्ये पुनः एकारे ऐकारे ओकारे औकारे च पूर्वा अर्धमात्रा कण्ठ्यस्य भवतीति पूर्वपक्षिमतं पूर्वार्धेन प्रतिपादितम्, एकारे ऐकारे ओकारे औकारे च आद्या मात्रा कण्ठ्यस्य भवतीति पाणिनेर् मतं सिद्धान्तपक्षरूपमुत्तरार्धेन प्रतिपादितमिति

ब्रुवते। एवं चाऽस्य पद्यस्य पाठभ्रंशेन व्याख्यातारो दिग्भ्रमं प्राप्ताः प्रतीयन्ते। तेषां व्याख्यानानि युक्तिभिः परीक्षायां कृतायामसङ्गतान्येव दृश्यन्ते इति बोध्यम्। अतोऽस्माभिः प्रकल्प्य गृहीतः पूर्वोक्तः पाठोऽर्थश् चैव सुसङ्गतो ज्ञेयः। शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (१।७३) याज्ञवल्क्यशिक्षायां च (श्लो.२१५) वस्तुतो विचारणे ऐकारे औकारे चैव पूर्वोत्तरमात्राविभागस्य प्रतिपादितताया निश्चयाद् याज्ञवल्क्यशिक्षावचनप्रामाण्येनाऽत्र श्लोकपाठनिरूपणम् अर्थ-निर्धारणं च नैवोचितमिति विवेक्तव्यम्। वर्णरत्नप्रदीपिकाकारस्तु पाणिनीय-शिक्षादिप्रभावपतितः प्रतीयते।

हिन्दी— एकार और ऐकार में कण्ठ्य स्वर की अर्धमात्रा तथा ओकार और औकार में कण्ठ्य स्वर की एक मात्रा (पूर्व भाग में) होती है, ए ओ ऐ औ के पूर्वोत्तर भागों का क्रमेण विवृतत्व और संवृतत्व होता है।

विशेष— इस पद्य का पञ्जिका व्याख्या, शिक्षाप्रकाशव्याख्या, याजुष पाठ इत्यादि में परिग्रह हुआ है। किन्तु सर्वत्र पाठभ्रंश प्रतीत होता है, और पूर्वव्याख्याकारों का अर्थ असङ्गत दिखाई देता है। अतः विवेकशील विद्वान् हमारे उपर्युक्त पाठ को और तदनुकूल व्याख्या को ही स्वीकृत करें॥१९॥

[संवृत-विवृतवर्णविशेषविचारः]

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥२०॥

अन्वयः— मात्रिकम् संवृतम् ज्ञेयम्, द्विमात्रिकम् तु विवृतम् (ज्ञेयम्)। सर्वे घोषाः वा संवृताः, अघोषाः विवृताः स्मृताः।

शब्दार्थः— मात्रिकम्=मात्राकालम् (ह्रस्वम् अवर्णम्), संवृतम्=संवृत-करणकम्, ज्ञेयम्=वेद्यम्, द्विमात्रिकम्=द्विमात्राकालम् (दीर्घम् अवर्णम्), तु=हि, विवृतम्=विवृतकरणकम्, (ज्ञेयम्=वेद्यम्), सर्वे=निखिलाः, घोषाः=घोष-

वन्तो वर्णाः, वा= अथवा, संवृताः= संवारप्रयत्नाः, अघोषाः= अघोषवर्णाः, विवृताः=विवारप्रयत्नाः, स्मृताः=स्मृत्याऽवगताः।

सरलार्थः— ह्रस्वम् अवर्णं संवृतं ज्ञेयम्, दीर्घं तु अवर्णं विवृतं ज्ञेयम्। सर्वे घोषवन्तो वर्णाः संवारप्रयत्नाः स्मृताः, अघोषवर्णा विवारप्रयत्नाः स्मृताः।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां याजुषपाठे च नैव परिगृहीतम्। वर्णस्थाननिरूपणप्रकरणे एतत् पद्यम् अप्राकरणिकं च वर्तते। एतत् पद्यम् एतदर्थकं पद्यान्तरं वाऽपि शैशिरीयशिक्षायां शौनकीयशिक्षायां चाऽन्यत्र वाऽपि एतत्प्रसङ्गे नैवोपलभ्यते। अतोऽत्राऽपि ग्रन्थगडुभूतमेवैतत् पद्यम्। एतस्मिन् पद्ये पूर्वार्धे अवर्णस्याऽऽभ्यन्तरः प्रयत्नः प्रतिपादितः, उत्तरार्धे तु घोषवतामघोषाणां च वर्णानां बाह्यप्रयत्नविशेषः प्रतिपादितः। पूर्वार्धे प्रतिपादितं संवृतत्वं विवृतत्वं च पृथक्, उत्तरार्धे प्रतिपादितं संवृतत्वं विवृतत्वं च पृथगेवाऽस्ति। तयोरेकताया भ्रमस्य जनकत्वेनाऽत्र पद्ये सहैव प्रतिपादनं समुचितं न दृश्यते। एतस्यां शिक्षायां हि वर्णानाम् आभ्यन्तरप्रयत्ना बाह्यप्रयत्नाश् च अष्टात्रिंशत्तमादिषु पद्येषु प्रतिपादिताः सन्तीति एतत्पद्योक्तो विषयोऽपि यथौचिति तत्रैव प्रतिपादयितुमुचितः।

हिन्दी— ह्रस्व अवर्णको संवृत जानना चाहिए, दीर्घ अवर्ण को विवृत जानना चाहिए। सभी घोषवान् वर्ण संवृत और सभी अघोष वर्ण विवृत माने गए हैं।

विशेष— यह पद्य शिक्षापञ्जिकादि में नहीं है। यहाँ यह पद्य अप्राकरणिक भी है। इस पद्य के विषयों को यथोचित रूप में अठतीसवें श्लोक से आरब्ध प्रयत्नप्रकरण में ही प्रतिपादित करना समुचित था।।२०।।

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च।।२१।।

अन्वयः— स्वराणाम् ऊष्मणाम् च एव करणम् विवृतम् स्मृतम्, तेभ्यः अपि एङौ विवृतौ (स्मृतौ), ताभ्याम् (अपि) ऐचौ तथा च एव (स्मृतौ)।

शब्दार्थः— स्वराणाम्=अचाम्, ऊष्मणाम्=शलाम्, च=अपि, एव=हि, करणम्=आभ्यन्तरप्रयत्नः, विवृतम्=विवृताख्यम्, स्मृतम्=स्मृत्या अवगतम्, तेभ्यः=उक्तेभ्यः स्वरेभ्यः ऊष्मभ्यश्च, अपि=च, एङौ=एकारौकारौ, विवृतौ=विवृततरकरणजन्यौ, (स्मृतौ=स्मृत्या अवगतौ), ताभ्याम्=उक्ताभ्याम् एकारौकाराभ्याम् (अपि), ऐचौ=ऐकारौकारौ, तथा=विवृततरकरणजन्यौ, एव=हि, च=अपि, (स्मृतौ=स्मृत्या अवगतौ)।

सरलार्थः— अकारादीनां स्वराणाम्, शषसहानां च करणं विवृतं स्मृतम्, स्वरेभ्यः शषसहेभ्यश्च एकारौकारौ विवृततरौ स्मृतौ, एकारौकाराभ्यामपि ऐकारौकारौ विवृततरौ स्मृतौ।

व्याख्या— केषाञ्चन वर्णानामाभ्यन्तरप्रयत्नस्य प्रतिपादकम् एतत् पद्यं पञ्जिकायां न परिगृहीतम्। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां याजुषे पाठे च परिगृहीतम्। तत्र याजुषे पाठे ऊष्मणां च स्वराणां चेति पाठो दृश्यते। वर्णस्थानप्रतिपादनप्रकरणे एतस्य पद्यस्य पाठोऽप्राकरणिकोऽस्ति। एतस्य पद्यस्यार्थः खलु **"अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन् नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः"** इत्यादिकस्य पद्यस्य (श्लो.३८) अर्थेनांऽशतो विरुध्यते, एकत्र शलां विवृतत्वस्याऽन्यत्र तेषां नेमस्पृष्टत्वस्य कथनात्। एतेन षष्टिपद्यात्मिकायां पाणिनीयशिक्षायां प्रक्षिप्तांशसत्त्वस्य सम्भावनाऽपि दृढीक्रियते। एतस्य विरोधस्य विचारः केनाऽपि पूर्वव्याख्याकारेण न कृत इति, मधुकरफाटकमहोदयेन **"पाणिनीयशिक्षायाः शिक्षान्तरैः सह समीक्षा"** इति ग्रन्थे चाऽन्याय्यं व्याख्यानं कृतम् (पृ.१४७-१४८) इति चैतस्मिन् विषये विवेचकैः सम्यग् विचारः कर्तव्यः। **"नाऽज्-झलौ"** इति (अष्टा.१।१।१०) इति सूत्रयतः पाणिनेराचार्यस्य मते ऊष्मणामपि विवृतत्वमेवेति ज्ञेयम्।

हिन्दी— अकारादि स्वरों का और ऊष्मवर्णों का (श ष स ह का) भी आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत माना गया है। उन वर्णों से ए ओ अधिक विवृत माने गए हैं, और ए ओ से भी ऐ औ अधिक विवृत माने गए हैं।

विशेष– इस पद्य में श ष स ह को विवृत माना गया है, जो "नाऽज्-झलौ" (अष्टा.१।१।१०) सूत्र बनाने वाले आचार्य पाणिनि के सिद्धान्त की अनुकूल बात है। किन्तु अठतीसवें पद्य में श ष स ह को नेमस्पृष्ट (अर्धस्पृष्ट) माना गया है। इस से ग्रन्थ में पूर्वापरविरोध पडता है। यहाँ वर्णस्थानप्रकरण में इस पद्य का पाठ अप्राकरणिक है। इन विषयों को विवेचकों को सम्यक् परखना चाहिए॥२१॥

[अनुस्वार-यमा-ऽयोगवाहस्थानविशेषाः]

अनुस्वार-यमानां च नासिका स्थानमुच्यते।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः॥२२॥

अन्वयः– अनुस्वारयमानाम् स्थानम् च नासिका उच्यते। अयोगवाहाः आश्रयस्थानभागिनः विज्ञेयाः।

शब्दार्थः– अनुस्वारयमानाम्= अनुस्वाराख्यस्य वर्णस्य यमाख्यानां वर्णानां च, स्थानम्=उच्चारणप्रदेशः, नासिका=नासा (नक्रम्), उच्यते=कथ्यते, अयोगवाहाः= अयोगवाहाख्याः अनुस्वार-विसर्ग-जिह्वामूलीयोपध्मानीय-यम-नासिक्या वर्णाः,आश्रयस्थानभागिनः=स्वाश्रयभूतस्वपूर्ववर्तिस्वरस्थानभागिनश्च, विज्ञेयाः=वेदितव्याः।

सरलार्थः– अनुस्वारस्य यमाख्यानां वर्णानां च उच्चारणस्थानं नासिका कथ्यते। अयोगवाहाख्याः अनुस्वार-विसर्ग-जिह्वामूलीयोपध्मानीय-यम-नासिक्या वर्णाः स्वाश्रयभूतस्वपूर्ववर्तिस्वरस्थानभागिनश्च वेदितव्याः।

व्याख्या– अयोगवाहानां स्वंस्वं स्थानम् आश्रयस्थानं चेति स्थानद्वयं वेदितव्यम्।

अयोगवाहपरिभाषा तु कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायाम्– **"स्वपूर्ववर्‌तिनो यानि स्वरस्‌स्याऽङ्गानि सर्‌वदा। व्यञ्जनानि तु तान्‌न्येवाऽयोगवाहाः प्रकीर्‌तिताः"** इति (२।११०)। तद्विवरणं च तत्रैव द्रष्टव्यम् (पृ.२९१-२९३)।

हिन्दी— अनुस्वार का और यमसंज्ञक वर्णों का स्थान नासिका कही जाती है। अयोगवाह वर्ण (अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, यम और नासिक्य वर्ण) अपने आश्रयभूत स्वपूर्ववर्ति स्वर के स्थान को लेने वाले होते हैं।

विशेष— अयोगवाह वर्णों का अपनाअपना स्थान और स्वपूर्ववर्ती स्वर का स्थान ये दोनों स्थान माने जाते हैं। सर्वदा स्वपूर्ववर्ती स्वर का ही अङ्ग हो सकने वाले और स्वपरवर्ती स्वर का अङ्ग कभी भी नहीं हो सकने वाले व्यञ्जन वर्ण अयोगवाह कहे जाते हैं।

याजुष पाठ में सत्ताइसवें श्लोक में इस पद्य का अधोलिखित पाठ दिखाई देता है—

उपध्मानीय ऊष्मा च जिह्वामूलीयनासिके।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः॥

इन पाठों में कौन सा पाठ समीचीनतर दिखाई देता है, यह विद्वज्जन स्वयम् विवेचनपूर्वक जानें॥२२॥

[अनुस्वारस्वरूपादिकम्]

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यः स्वरानुगः।
अनुस्वारस् तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च॥२३॥

अन्वयः— स्वरानुगः अनुस्वारः ह्रोः शषसेषु च (परेषु) तु नित्यम् दन्तमूल्यः अलाबुवीणानिर्घोषः कर्तव्यः।

शब्दार्थः— स्वरानुगः=स्वरमनुगच्छन्, अनुस्वारः=अनुस्वाराख्यो वर्णः, ह्रोः=हकाररेफयोः, शषसेषु=तालव्य-मूर्धन्य-दन्त्येषु ऊष्मसु (परेषु=उत्तरवर्तिषु सत्सु), तु=हि, नित्यम्=सदा, दन्तमूल्यः=दन्तमूलस्थानकः (जम्भमूलस्थानकः), अलाबुवीणानिर्घोषः=तुम्बीवीणास्वनतुल्यस्वनः, कर्तव्यः=उच्चारणीयः।

सरलार्थः— स्वरमनुगच्छन् अनुस्वारो हकार-रेफ-श-ष-सेषु परेषु तु सिंह-संरम्भ-संशासन-प्रशंसनादिषु शब्देषु हवींषीत्यादिषु पदेषु च नित्यं जम्भरूपदन्तविशेषमूलस्थानकस् तुम्बीवीणास्वनतुल्यस्वनः उच्चारणीयः।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकायां याजुषपाठे च परिगृहीतम्, शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां तु न दृश्यते। पूर्वस्मिन् पद्येऽनुस्वारो नासिकास्थानक उक्तः, एतस्मिन् पद्ये तु दन्तमूलस्थानक उक्तः। एवं चाऽनयोः पद्ययोरसमन्वितत्वमिव प्रतीयते। एतस्मिन् विषये पूर्वैर् व्याख्याकारैः कापि विशिष्टा टिप्पणी न प्रस्तुता। अस्मन्मते तु पूर्वपद्योक्तोऽनुस्वारः साधारणो लौकिकः, एतत्पद्योक्तोऽनुस्वारस् तु वैदिको विशिष्टोऽनुस्वार इति तयोरुच्चारणेऽपि केनाऽप्यंशेन पार्थक्यस्य सत्त्वात् तयोः स्थानेऽपि किञ्चित् पार्थक्यं स्वाभाविकमेव। साधारणानुस्वारवेदशाखाविशेषानुस्वारयोरुच्चारणे स्थितं विशेषं बुभुत्सुभिः पाठकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां वर्णाध्याये वर्णविशेषविवेचनाधिकारे अनुस्वारविवेकप्रकरणम् (पृ.२२१), वर्णनिरूपणाधिकारे वेदशाखाविशेषानुस्वारविशेषोच्चारणविचारप्रकरणम् (२७६–२८४), बलाध्याये अनुस्वारस्थानकरणादिविवेचनं (पृ.५००–५०१, ५१२–५१३) च पठनीयम्।

हिन्दी— स्वर के पीछे आनेवाले अनुस्वार को हकार रेफ और श ष स उत्तरवर्ती होने पर तो सदा दन्तमूलस्थानक और लौकी की वीणा के ध्वनि के तुल्य ध्वनिवाला बना कर उच्चरित करना चाहिए।

विशेष— पूर्व पद्य में और इस पद्य में अनुस्वार के स्थान के विषय में पार्थक्य दिखाई देता है। यह पार्थक्य वेदशाखाविशेष के विशिष्ट अनुस्वार को लेकर आया हुआ प्रतीत होता है। इस विषय में पूर्व व्याख्याकार कोई स्पष्ट प्रतिपादन नहीं करते हैं। इस विषय में विशेष विवेचन के लिए पाठक संस्कृत में कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के सम्बद्ध प्रकरण देखें (पृ.२२१, २७६–२८४, ५००–५०१, ५१२–५१३)॥२३॥

[अनुस्वाराद्युच्चारणे विशेषः]

अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाऽक्षरद्वये।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् यथौकार-वकारयोः ॥२४॥

अन्वयः— यथा ओकार-वकारयोः ओष्ठ्यौ द्विः विगृह्णीयात् (तथा) अनुस्वारे विवृत्त्याम् तु विरामे अक्षरद्वये च (मध्ये सति ओष्ठ्ययोः स्वरयोः उच्चारणीययोः सतोः) ओष्ठ्यौ तु द्विः विगृह्णीयात्।

शब्दार्थः— यथा= येन प्रकारेण, ओकारवकारयोः= वकारौकारयोः (उच्चारणीययोः सतोः), ओष्ठ्यौ=ओष्ठौ, तु=हि, द्विः=द्विवारम्, विगृह्णीयात्= व्यापारयेत्, (तथा=तेन प्रकारेण), अनुस्वारे=अनुस्वाराख्ये वर्णे, विवृत्त्याम्= विवृत्तौ, तु=च, विरामे=अवसाने, अक्षरद्वये=व्यञ्जनवर्णद्वये च (मध्ये=ओष्ठ्य-स्वरयोर् मध्ये, सति= वर्तमाने, ओष्ठ्ययोः=ओष्ठस्थानकयोः, स्वरयोः=अचोः, उच्चारणीययोः=प्रयोज्ययोः, सतोः=स्थितयोः), ओष्ठ्यौ=ओष्ठौ, तु=हि, द्विः= द्विवारम्, विगृह्णीयात्=व्यापारयेत्।

सरलार्थः— यथा वकारौकारयोः उच्चारणीययोः सतोः ओष्ठौ द्विवारं व्यापारयेत्, तथा अनुस्वारे, विवृत्तौ, विरामे, अक्षरद्वये च ओष्ठ्ययोः स्वरयोर् मध्ये वर्तमाने सति तयोरोष्ठ्ययोः स्वरयोरुच्चारणीययोः सतोः ओष्ठौ द्विवारं व्यापारयेत्।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां याजुषपाठे च न परिगृहीतम्। एतस्य पद्यस्याऽतीव संक्षिप्तत्वाद् बह्वध्याहारसापेक्षत्वाच्चाऽर्थोऽतीव दुरवगमः। अत एव नारायणदत्तत्रिपाठि-कालीप्रसादमिश्र-मनोमोहन-घोष-रुद्रप्रतापावस्थि-गुरुप्रसादशास्त्रिप्रभृतय आधुनिकाः सर्वेऽपि यत्किञ्चन-वादिनः पद्यार्थज्ञानविधुरा व्यर्थमेवाऽत्र विवृत्तिभेदादिप्रतिपादनेन ग्रन्थकलेवरं वर्धयन्तो दृश्यन्ते। एतस्य पद्यस्याऽर्थस्य ज्ञानाय तैत्तिरीयप्रातिशाख्यादिषु उप-लभ्यमानस्य करणोपसंहारप्रकरणस्य ज्ञानमुपकारकं भवति। तच्च कौण्डिन्न्या-यनशिक्षायां बलाध्याये करणाधिकारे करणोपसंहारविशेषविवरणे द्रष्टव्यम् (पृ.५१३–५१६)। तत्र शैशिरीयशिक्षावचनविचारात् शौनकीयशिक्षावचन-

विचाराच् चाऽस्य पद्यस्याऽर्थः सुखेन परिच्छेत्तुं शक्य इति तानि वचनान्यत्रोद्ध्रियन्ते। तथा हि *शैशिरीयशिक्षायाम्*— "उच्चारणविशेषेणाऽत्राऽक्षराश्रयमुच्यते। अनुस्वारे विवृत्त्यन्ते विरामे चाऽक्षरद्वये। ओवर्णे च उवर्णे च पवर्गे च पृथक्-पृथक्। ओ औ उ वर्ण इत्येषामनुस्वारविसर्गयोः। विरामे च विवृत्तौ च मध्ये च व्यञ्जनद्वये। द्विरोष्ठौ तु विगृह्णीयाद् वकारे त्वधरं तथा। सु ऊतयो भ्रातुः पुत्रान् धेनुं सोमः प्र सुष्टुतिः। यन्मयोभु उदीरय पुपुष्वान् मोष्ठवो असमाः। बभूवुः श्वो वोचेमहीत्येतादृशं निदर्शनम्" इति (श्लो.२२-२७)। *शौनकीयशिक्षायां* च— "ओ औ उवर्ण इत्येषामनेकस्य च सङ्गमे। सकृदोष्ठ्यौ विजानीयान् नाऽन्यश् चेन् मध्यगः स्वरः॥ उषो न ओ षू णो अग्ने द्विषो युयोतु यूयुविः। अनुषु पूरुषुस्थः (च) सोमः पूरुषु सूयते॥ विरामे च विवृत्तौ च मध्ये चेद् व्यञ्जनद्वयम्। द्विरोष्ठौ तु विगृह्णीयाद् वकारे त्वधरं तथा॥ यन्मयोभु उदीरय ताभिरू षु ऊतिभिः। भ्रातुः पुत्रान् धेनुस्सोमस् सुष्टुतिर् मोषु वो अस्मत्" इति (श्लो.१८-२१)। तत्र शौनकीयशिक्षाव्याख्यायाः "तत्राऽपि वकारमध्यपाते विशेषमाह— वकारे त्वधरं तथेति। वकारे तेषां मध्ये सति अधरोष्ठं द्विर् गृह्णीयात्। उत्तरोष्ठे तथैव स्थिते सति अधरोष्ठमुपादाय वकारमुक्त्वा पुनरोकाराद्युच्चारणाय अधरोष्ठं व्यापारयेदित्यर्थः" इति वचनं च विशेषेण सम्यग् बोद्धव्यम्।

हिन्दी— जिस प्रकार वकार और ओकार के उच्चारण के लिए होठों को दो वार व्यापृत करे, उसी प्रकार अनुस्वार, विवृत्ति, विराम और व्यञ्जनद्वय दो ओष्ठ्य स्वर के बीच में आने पर उन दो ओष्ठ्य स्वर के उच्चारण के लिए होठों को दो वार व्यापृत करे।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकाव्याख्या, शिक्षाप्रकाशव्याख्या और याजुष पाठ में परिगृहीत नहीं है। यह-पद्य अतिसंक्षिप्त है। इस का अर्थ अध्याहार के बल पर करना पडता है। इस लिए यह पद्य अतिदुर्बोध है। पूर्व व्याख्याताओं ने इस पद्यका अर्थ ठीक ठीक नहीं समझा है। इस को समझने के लिए ग्रन्थान्तरका ज्ञान आवश्यक है। इस प्रसङ्ग में आवश्यक ग्रन्थान्तरवचन कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में करणोपसंहारविशेषविवरण में

(पृ.५१३-५१६) सङ्गृहीत हैं। ऊपर संस्कृतव्याख्या में सङ्गृहीत शैशिरीयशिक्षा के और शौनकीयशिक्षा के वचनों की सहायता से भी इस पद्यका अर्थ समझा जा सकता है। इस पद्य में बताए गए उच्चारणनियम के उदाहरण शैशिरीयशिक्षा के और शौनकीयशिक्षा के वचनों में ऋग्वेदसंहिता से उद्धृत कर दिखाए गए उदाहरणों से ही गतार्थ होते हैं। वहाँ दो ओष्ठ्यस्वरों के मध्य के अनुस्वार का उदाहरण **"धेनुं सोमः"** (ऋग्वेद१।९१।२०), विवृत्ति का उदाहरण **"सु ऊतयः"** (ऋ.८।४७।१-१८), विराम का उदाहरण **"मयोभु। उदीरय"** (ऋ.५।४२।२-३), अक्षरद्वय का (व्यञ्जनद्वय का) उदाहरण **"भ्रातुः पुत्रान्"** (ऋ.१०।५५।१) है। इस पद्य के पूर्वव्याख्याताओं के पद्यार्थ और उदाहरण सब सर्वथा अयथार्थ हैं॥२४॥

[वर्णोच्चारणे आवश्यकस्य कौशलस्य निरूपणम्]

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्॥२५॥

अन्वयः— पतनभेदाभ्याम् भीता व्याघ्री पुत्रान् यथा दंष्ट्राभ्याम् हरेत्, न च पीडयेत्, तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्।

शब्दार्थः— पतन-भेदाभ्याम्= अधःपतनच्छेदाभ्याम्, भीता= दरिता, व्याघ्री= शार्दूलस्त्री, पुत्रान्= शावकान्, यथा= येन प्रकारेण, दंष्ट्राभ्याम्= दशनाभ्याम्, हरेत्= वहेत्, न च= न तु, पीडयेत्= दुःखयेत्, तद्वत्= तेनैव प्रकारेण, वर्णान्=अकारादिकान् वर्णान्, प्रयोजयेत्=उच्चारयेत्।

सरलार्थः— शावको मुखात् पतेद् इति, शावकस्य चर्म छिद्रितं भवेत् इति च भीता व्याघ्री यथा सावधानतया समुचितेन करणप्रयोगेण शावकान् दंष्ट्राभ्याम् हरेत्, हरन्ती न च तान् दंष्ट्राभ्यां पीडयेत्, तथैव वर्णानामुच्चारयिताऽपि समुचितेन करणप्रयोगेण समुचितेन यत्नेन च वर्णान् उच्चारयेत्, करणस्याऽतिशिथिलेन प्रयोगेण वर्णान् अस्पष्टानपि न कुर्यात्, अतिदृढेन प्रयोगेण वर्णान् रूक्षानपि न कुर्यात्।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकायां परिगृहीतं नास्ति, शिक्षाप्रकाश-व्याख्यायां याजुषपाठे च परिगृहीतमस्ति। एतत् पद्यं याज्ञवल्क्यशिक्षा-चारायणीयशिक्षा-नारदीयशिक्षादिष्वपि प्राप्यते। एतस्मिन् पद्ये सुष्ठु वर्णो-च्चारणं कथं कर्तव्यमिति वर्णितमस्ति। एतत् पद्यं शिक्षाशास्त्रस्य मुख्येषु षट्सु विषयेषु पञ्चमस्य विषयस्य साम्नः प्रतिपादने प्रवृत्तं वेदितव्यम्।

हिन्दी— बच्चे के पतन और छेदन से डरती हुई व्याघ्री जैसे अपने छोटेछोटे बच्चों को अपने दाढ़ों से हल्के रूप में पकडकर इधरउधर ले जाती है, दाढ़ों की पकड को शिथिल करके गिरने भी नहीं देती है, दाढ़ों की पकड को अतिकठोर करके दाढ़ों से उनको पीडित भी नहीं करती है, उसी प्रकार से वर्णों के उच्चारण करनेवालों को भी करणों को, ज्यादा शिथिल रूप में भी नहीं, ज्यादा दृढ रूप में भी नहीं, समुचित रूप में प्रयुक्त करके वर्णों को उच्चरित करना चाहिए।

विशेष— यह पद्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, चारायणीयशिक्षा, नारदीय-शिक्षा, माण्डूकीयशिक्षा इत्यादि अन्य शिक्षाग्रन्थों में भी पाया जाता है। इस पद्य में शिक्षा के वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान- इन छह मुख्य विषयों में पञ्चम विषय साम का प्रतिपादन हुआ है॥२५॥

[रङ्गवर्णोच्चारणनिरूपणम्]

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रऽाँ इत्यभिभाषते।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराऽाँऽ इव खेदया॥२६॥

अन्वयः— सौराष्ट्रिका नारी यथा तक्रऽाँ इति अभिभाषते एवम् खे अराऽाँऽ इव खेदया (इत्यादिषु) रङ्गाः प्रयोक्तव्याः।

शब्दार्थः— सौराष्ट्रिका= सुराष्ट्रदेशभवा, नारी= स्त्री, यथा= येन प्रकारेण, तक्रऽाँ इति= तक्रऽाँ इति पदम्, अभिभाषते= वक्ति, एवम्= एतेनैव प्रकारेण, खे अराऽाँऽ इव खेदया= ऋग्वेदादिषु स्थितेषु **"खे अराऽाँऽ इव खेदया"**

(ऋ.८।७७।३) इत्यादिषु स्थलेषु, रङ्गाः= रङ्गवर्णाः, प्रयोक्तव्याः= उच्चारयितव्याः।

सरलार्थः— सुराष्ट्रदेशभवा गौर्जरी वा तक्रविक्रयिणी गोपालवनिता येन प्रकारेण ह्रस्वान्तमपि तक्रपदं दीर्घान्तं कृत्वा तद्दीर्घीकृतस्वरप्रान्ते ह्रस्वम् आँ इत्येतादृशं वर्णं योजयित्वा स्वतक्रविक्रयार्थं भ्रमणस्य वेलायां **"तक्रऽऽआँ"** इतीव भाषते, एवमेव वेदेषु **"खे अराꣳऽ इव खेदया"** इत्यादिषु स्थलेषु रङ्गवर्णा उच्चारणीयाः।

विशेषः— एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां च नोपात्तम्। याजुषपाठे तु दृश्यते। एतत् पद्यं याज्ञवल्क्यशिक्षादिषु चोपलभ्यते। एतस्य पद्यस्य नारायणदत्तत्रिपाठि-कालीप्रसादमिश्र-रुद्रप्रतापावस्थि-गुरुप्रसाद-शास्त्रिप्रभृतिभिः कृता व्याख्या अयथार्था दृश्यन्ते। सप्तविंशपद्यार्थविचारेणाऽपि अयमर्थो बोद्धुं शक्यः। एतद्विषयेऽधिकं विचारं कर्तुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया वर्णाध्याये वर्णविशेषविवेचनाधिकारे रङ्गवर्णविवेकप्रकरणं द्रष्टव्यम् (पृ.२२१-२३०)। तत्सारश् च तत्र प्रतिपादितो यथा— **"नस्य लोपविकाराभ्यां प्राक्स्वरे रक्ततां गते। अरक्तं तत्पूर्वभागमुच्चार्य खलु वैदिकाः। उच्चारयन्ति तत्प्रान्तं कृत्वा नासिक्यमात्रकम्। तन् नासिक्यं रङ्गमाहुर् वेदे नैकविधश् च सः"** इति (२।७९-८०)।

हिन्दी— सुराष्ट्र देश की (गुजरात की) तक्र बेचने वाली गोपालवनिता जिस प्रकार "तक्राँ" इस पद को (ह्रस्वान्त पद को भी दीर्घान्त प्लुतान्त जैसा बनाकर और पीछे पूर्ण नासिक्य ह्रस्व 'आँ'- ध्वनि को जोडकर) बोलती है, उसी प्रकार "खे अराꣳऽ इव खेदया" (ऋग्वेदसंहिता ८।७७।३) इत्यादि स्थलों में वेद में रङ्ग वर्ण का उच्चारण करना चाहिए।

विशेष— रङ्ग वर्ण के उच्चारण के स्पष्टीकरण के लिए याज्ञवल्क्यशिक्षादि शिक्षाग्रन्थों में बहूत वचन हैं। इसी शिक्षा के सत्ताईसवें

पद्य से भी रङ्गोच्चारण के संस्कृतसरलार्थ में और हिन्दी में दिए गए विवरण का समर्थन हो जाता है। अतः नारायणदत्त त्रिपाठी, कालीप्रसाद मिश्र, रुद्रप्रताप अवस्थी, गुरुप्रसाद शास्त्री इत्यादि आधुनिक व्याख्याताओं की व्याख्याएँ वस्तुस्थिति की अनुकूल नहीं मानी जा सकती हैं। इस विषय में अधिक विचार करने के लिए उत्सुक पाठक कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में रङ्गविवेकप्रकरण देखें (पृ.२२१-२३०)। वहाँ सभी शिक्षाओं के वचन भी सङ्गृहीत हैं॥२६॥

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन् नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम्।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् पश्चान् नासिक्यमाचरेत्॥२७॥

अन्वयः— रङ्गवर्णम् प्रयुञ्जीरन्, पूर्वम् अक्षरम् नो ग्रसेत्, दीर्घस्वरम् प्रयुञ्जीयात्, पश्चात् नासिक्यम् आचरेत्।

शब्दार्थः— रङ्गवर्णम्=रङ्गाख्यम् अनुस्वारविशेषरूपं वर्णम्, प्रयुञ्जीरन्= उच्चारयेयुः, पूर्वम्= प्रागवर्तिनम्, अक्षरम्= वर्णम्, नो= नैव, ग्रसेत्= ह्रसयेत्, दीर्घस्वरम्=द्विमात्रं स्वरम्, प्रयुञ्जीयात्=उच्चारयेत्, पश्चात्=दीर्घवर्णोच्चारणानन्तरम्, नासिक्यम्=नासिकामात्रस्थानकं ध्वनिम्, आचरेत्=उच्चारयेत्।

सरलार्थः— वेदाध्यायिनो जना रङ्गवर्णं पटुतया प्रस्फुटतया उच्चारयेयुः, रङ्गपूर्ववर्तिनं स्वरं न ह्रासयेयुः, रङ्गपूर्ववर्तिनं स्वरं दीर्घम् उच्चारयेयुः, रङ्गपूर्ववर्तिदीर्घस्वरोच्चारणानन्तरं नासिकामात्रस्थानकं वर्णं रङ्गाख्यम् उच्चारयेयुः।

विशेषः— एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां याजुषपाठे च न परिगृहीतम्। एतस्य पद्यस्य रचना च विसंस्थुला। मुखे बहुवचनान्तक्रियापदप्रयोगस् तदनन्तरमेकवचनान्तक्रियापदप्रयोगश् चेति असामञ्जस्यम्। प्रयुञ्जीयात् इति प्रयोगश्च पाणिनीयव्याकरणविरुद्धः **"प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु"** (अष्टा.१।३।६४) इति सूत्रात्। कवेः पाणिनेराचार्यस्यैतादृशी रचना न सम्भवति। **"रङ्गवर्णं प्रयुञ्जानो नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम्। दीर्घं स्वरं प्रयुञ्जीत पश्चान् नासिक्यमाचरेत्"** इति पाठः सुकरः।

हिन्दी— वेदाध्यायी लोग रङ्गवर्ण का पटुतापूर्वक उच्चारण करें। रङ्गपूर्ववर्ती स्वर को ह्रस्व न बनावें। रङ्गपूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ बोलें और उस दीर्घ स्वर के बाद (उसी के प्रान्त में जोडकर) नासिकामात्र-स्थानक (रङ्गनामक) वर्ण को उच्चरित करें।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकाव्याख्यादि में परिगृहीत नहीं है। इस की रचना भी असमञ्जस है। आचार्य पाणिनि जैसे काव्यकार महावैयाकरण की ऐसी रचना नहीं हो सकती है। इस पद्यका समञ्जस और सुकर पाठ ऊपर संस्कृतव्याख्या में दिया गया है॥२७॥

हृदये चैकमात्रस् तु अर्धमात्रस् तु मूर्धनि।
नासिकायां तथाऽर्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता॥२८॥

अन्वयः— हृदये तु एकमात्रः मूर्धनि तु अर्धमात्रः तथा नासिकायाम् अर्धम् च एवम् रङ्गस्य द्विमात्रता (ज्ञेया)।

शब्दार्थः— हृदये= उरःप्रदेशे, तु= हि, एकमात्रः= मात्राकालः, मूर्धनि= शिरसि, तु=हि, अर्धमात्रः=अर्धमात्राकालः, तथा=तेनैव प्रकारेण, नासिकायाम्= नासायाम्, अर्धम्=अर्धमात्रा, च=अपि, एवम्=एतेन प्रकारेण, रङ्गस्य=रङ्ग-वर्णस्य, द्विमात्रता=द्विमात्राकालता, (ज्ञेया=बोध्या)।

सरलार्थः— हृदये एकमात्रो मूर्धनि अर्धमात्रो नासिकायामर्धमात्र इति द्विमात्रो रङ्गवर्णो ज्ञेयः।

विशेषः— एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकादिषु नैव परिगृहीतम्। पण्डितो रुद्र-प्रतापावस्थिमहाशयोऽपि एतत् पद्यं प्रक्षिप्तं मन्यते स्म। एतस्य पद्यस्य वास्त-विकोऽर्थश् च दुरवगमः, निस्सृतस्य श्रूयमाणस्यैव स्वरस्य मात्रायाश्च मुख्य-तया शिक्षाशास्त्रे विचारयितुमुचितत्वात्। एतस्य पद्यस्य तात्पर्यं तु रङ्गवर्णे संलग्नः पूर्वः स्वरभागोऽननुनासिकः, अन्तिमोऽर्धमात्रात्मको रङ्गशब्देन मुख्य-तया व्यवहार्यो भागश्च सर्वनासिक्य इत्येवाऽवगम्यते। एतादृशानि पद्यानि

अन्यासु शिक्षास्वपि दृश्यन्ते। तथा हि चारायणीयशिक्षायाम्– "तस्य मात्रा तु हृदये अणुमात्रा तु मूर्धनि। नासाग्रे त्वणूनां मात्रा रङ्गस् स परिकीर्तितः" इति (८।३५-३६, कौ.शि., पृ.८१५), लोमशीयशिक्षायां च– "तस्य मात्रा तु हृदये अणुमात्रा तु मूर्धनि। नासाग्रे त्वणूनां मात्रा रङ्गस्य परिकीर्तिता" इति (१।७)। तैत्तिरीयशाखाशिक्षायां पारिशिक्षायां कृतं प्लुतरङ्गवर्णनं च रङ्गस्वरूपज्ञाने प्रस्तुतपद्यभावनिर्णये चोपयोगीति तदप्यत्र प्रस्तूयते– "रङ्गे मुखे व्याघ्ररुतोपमं स्यान् मात्राद्वयं हृज्जनितं त्वनास्यम्। मात्राद्वयं स्यादिह कांस्यघण्टानादः सकम्पः स तु मूर्धजातः॥ नासिक्यरन्ध्रद्वयनिस्सृतोऽन्त्ये स्यादेकमात्रस् तु स काकली स्यात्॥ सौराष्ट्रिका गोपवधूः सुकण्ठस्वरेण तक्राँ३ इति भाषते यथा। तथा समुच्चार्य वदेत् स्वकालाद् रङ्गश् च कम्पः खलु वर्धते सः" इति (श्लो.१४९-१५०, कौ.शि., पृ.८३६)।

हिन्दी– रङ्ग की हृदय में एक मात्रा शिर में आधी मात्रा तथा नासिका में आधी मात्रा होती है। इस प्रकार रङ्ग की द्विमात्रिकता होती है।

विशेष– यह पद्य शिक्षापञ्जिकादि में नहीं है। प.रुद्रप्रताप अवस्थी ने इस पद्य को प्रक्षिप्त माना है। इस प्रकार का पद्य चारायणीयशिक्षा में और लोमशीयशिक्षा में भी पाया जाता है। इस पद्य का वास्तविक अर्थ दुरवगम (दुर्बोध) है। इस पद्य का तात्पर्य तो रङ्गपूर्ववर्ती स्वरभाग अननुनासिक ही होता है, और उसी स्वर के अन्तिम भाग में सर्वनासिक्य रङ्गवर्ण जुडा हुआ होता है– यही विदित होता है॥२८॥

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन्।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँऽ इति निदर्शनम्॥२९॥

अन्वयः– हृदयात् उत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन् मार्दवम् च द्विमात्रम् च (प्राप्तः रङ्गः उच्चारणीयः; अत्र) जघन्वाँऽ इति निदर्शनम् (ज्ञेयम्)।

शब्दार्थः– हृदयात्=वक्षःस्थलात्, उत्करे=उपरिष्टात्, तिष्ठन्=वर्तमानः, कांस्येन=कांस्यवाद्येन, समनुस्वरन्=समानं ध्वनिं दधत्, मार्दवम्=मृदुत्वम्,

द्विमात्रम्=मात्राद्वयकालम् (प्राप्तः=गच्छन्, रङ्गः=रङ्गवर्णः, उच्चारणीयः= प्रयोज्यः; अत्र=एतस्मिन् विषये), जघन्वाऽाँ इति=ऋग्वेदे आगतः जघन्वाऽाँ इति प्रयोगः (१।३२।११), निदर्शनम्=उदाहरणम्, (ज्ञेयम्=बोध्यम्)।

सरलार्थः— उरःस्थलादुपरि आगच्छन् कांस्यवाद्यध्वनिना समानं ध्वनिं दधद् मृदुः द्विमात्रश् च रङ्ग उच्चारणीयः, अत्र ऋग्वेदे आगतः "जघन्वाऽाँ" इति (१।३२।११) प्रयोग उदाहरणतया ज्ञेयः।

विशेषः— एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकादिषु न परिगृहीतम्। एतस्य पद्यस्य रचना च विसंस्थुलाऽस्ति। "हृदयादुत्थितो रङ्गः" इति शैशिरीयशिक्षानुसारी पाठः, "मृदुश् चैव द्विमात्रश् च" इति याज्ञवल्क्यशिक्षानुसारी पाठश् च सुकरः। अत्र छन्दोनुरोधेन 'निदर्शनम्' इत्यस्य स्थाने याज्ञवल्क्यशिक्षायामिव (श्लो. १९४) 'दर्शनम्' इत्येव पाठः परिग्रहीतुमुचितो दृश्यते। एतत्पद्यसदृशानि पद्यानि शिक्षान्तरेष्वपि प्राप्यन्ते। तथा हि शैशिरीयशिक्षायाम्— "हृदयादुत्थितं रङ्गं कांस्येन समसुस्वरम्। मात्रिकं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम्" इति (श्लो.१०६), याज्ञवल्क्यशिक्षायां च— "नस्त उत्पद्यते रङ्ग कांस्येन समनिस्वनः। मृदुश् चैव द्विमात्रश् च वृष्टिमाऽाँऽ इव दर्शनम्" इति (श्लो.१९४), चारायणीयशिक्षायां च— "हृदयाज् जायते रङ्गः कांस्यवच्चैव निस्वनः। लघुश् चैव द्विमात्रश् च दधन्वेति निदर्शनम्" इति (८।३३, कौ.शि., पृ.८१५), नारदीयशिक्षायां च— "हृदयादुत्तिष्ठते रङ्गः कांस्येन समनिस्वनः। मृदुश् चैव द्विमात्रश् च दधन्वाँ इति दर्शनम्" इति (२।४।८), माण्डूकीयशिक्षायां च— "नासादुत्पद्यते रङ्गः कंसेन समनिस्वनः। मृदुं चैव द्विमात्रं स्याद् वृष्टिमाँ इति निदर्शनम्" इति (श्लो.११४)। एवं च एतस्याऽपि पद्यस्य तात्पर्यं पूर्वपद्यतात्पर्येण समानमेव प्रतीयते। एतेन पद्येन रङ्गस्याऽनुस्वाराऽपेक्षया मृदुत्वं विशेषतया प्रतिपादितम्।

हिन्दी— वक्षःस्थल से ऊपर आते हुए और कांस्यवाद्य के समान ध्वनि वाले रङ्ग को मृदु रूप में और मात्राद्वयकाल में उच्चरित करना

चाहिए। इस का उदाहरण ऋग्वेदसंहिता के "वृत्रं जघन्वाऽाँऽ अप तद् ववार" (१।३२।११) इस वाक्य में आया हुआ "जघन्वाँ" यह प्रयोग है।

विशेष— यह पद्य शिक्षापञ्जिकादि में नहीं है। इस पद्य की रचना भी असमञ्जस है। आचार्य पाणिनि जैसे जाम्बवतीविजय काव्य के कवि और महावैयाकरण की ऐसी रचना नहीं हो सकती है। यहाँ छन्द के अनुरोध से 'निदर्शनम्' के स्थल में 'दर्शनम्' इस पद को रखना उचित दिखाई देता है। इस पद्य के सदृश पद्य तो अन्य शिक्षाओं में भी पाए जाते हैं। वे ऊपर संस्कृत व्याख्या में दिखाए गए हैं। इस पद्य में अनुस्वार की अपेक्षा रङ्ग की मृदुता विशेषतया प्रतिपादित है॥२९॥

[कम्पस्वरोच्चारणवैशिष्ट्यम्]

मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत्।
सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम्॥३०॥

अन्वयः— कम्पम् तु मध्ये कम्पयेत्, उभौ पार्श्वौ समौ भवेत्, कम्पम् सरङ्गम् कम्पयेत्, (अत्र) रथीवेति निदर्शनम् (ज्ञेयम्)।

शब्दार्थः— कम्पम्=कम्पनशीलं स्वरम्, तु=हि, मध्ये=अन्तरा, कम्पयेत्=कम्पनेनोच्चारयेत्, उभौ=द्वौ, पार्श्वौ=प्रान्तौ, समौ=तुल्यौ, भवेत्=भावयेत्=कुर्यात्, कम्पम्=कम्पनशीलं स्वरम्, सरङ्गम्=रङ्गसहितम्, कम्पयेत्=कम्पनेनोच्चारयेत्; (अत्र=एतस्मिन् विषये), रथीवेति=रथीवेत्यादिके ऋग्वेदमन्त्रे (५।८३।३) आगतः सरङ्गः कम्पस्वरः, निदर्शनम्=उदाहरणम् (ज्ञेयम्=बोध्यम्)।

सरलार्थः— कम्पं स्वरमुच्चारणकाले स्वरमध्यभागे कम्पितमिव कृत्वा उच्चारयेत्, मध्यभागात् पूर्वं परं च भागम् उदात्ततया अनुदात्ततया वा तुल्यं कृत्वोच्चारयेत्, यदि क्वचित् कम्पस्वरः सरङ्गो भवति तर्हि सरङ्गमेव स्वरं कम्पयेत्। अत्र निदर्शनं च रथीवेत्यादिके ऋग्वेदमन्त्रे (५।८३।३) आगतः **"वर्ष्याँ३ अह"** इत्यत्र वर्तमानः सरङ्गः कम्पस्वरो वर्तते।

विशेषः— एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकादिषु न परिगृहीतम्। वेदाध्यायिषु लक्षणशास्त्रस्याऽध्ययनस्य न्यूनतया लक्षणशास्त्राध्यायिषु च वेदाध्ययनस्य न्यूनतया शिक्षाग्रन्थाध्ययनाध्यापनसम्प्रदायविच्छेदाच् च लक्ष्यलक्षणसङ्गतेः सम्यग् ज्ञानस्याऽभावाद् एतत् पद्यं नारायणदत्त(नृसिंह)त्रिपाठि-कालीप्रसाद-मिश्र-रुद्रप्रतापावस्थि-गुरुप्रसादशास्त्रि-मधुकरफाटकप्रभृतिभिर् व्याख्याकारैः सम्यग् नैव व्याख्यातम्। उदाहरणसङ्गतिरपि सम्यङ् न प्रदर्शिता। गुरुप्रसाद-शास्त्रिणा पाठान्तरकल्पना च कृता प्रतीयते। उदाहरणं च तैर् न सम्यक् परि-ज्ञातम्। उदाहरणपरिज्ञानाय ऋग्वेदस्था एषा ऋक् परिशीलनीया— "रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर् दूतान् कृणुते वर्ष्याँ३ अह। दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत् पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः" (५।८३।३) इति। तत्रैतस्य पाणिनीय-शिक्षापद्यस्याऽर्थस्याऽवबोधाय शैशिरीयशिक्षायाः शौनकीयशिक्षायाः कौण्डि-न्न्यायनशिक्षायाश् च परिशीलनमुपकारकं भवेत्। तस्मात् तद्वचनान्यत्रोप-स्थाप्यन्ते। तत्र *शैशिरीयशिक्षायाम्*— "मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत्। द्विगुणं वर्णकालाच्च कालः कम्पार्थ इष्यते॥ अनुदात्तमुपादाय स्वरितं ह्यवलम्बयेत्। पुनर् निहतमागच्छेदेष कम्पविधिः स्मृतः॥ क्व१ वोऽश्वा युजानो३ऽस्माभिस् त्वं ही३न्द्रेति निदर्शनम्। सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम्॥ उदात्तः पूर्वभागस्तु परभागो निहन्यते। उदात्तकम्प इत्युक्तः कुत्र-चिच् चापि दृश्यते॥ शची३पतिन् तनू३नपात् स्थानान्न निदर्शनम्" इति (श्लो. ७१–७५)। शौनकीयशिक्षायामपि प्रायेणैतादृशान्येव पद्यानि सन्ति (श्लो.५६–५८)। एतद्विषयेऽधिकं ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये कम्पनिरूपणप्रकरणं द्रष्टव्यम् (पृ.३५०–३५९)। तत्सारश् च— "तुल्ययोः स्वरयोर् मध्ये स्यादण्व्या मात्रया क्व चित्। स्वरान्तरं यदुच्चार्यं तं हि कम्पं प्रचक्षते॥ कम्पयोगात् स्वरः कम्पः कम्पितो वा विकम्पितः। बाह्वृच्ये चाऽऽथर्वणे च ख्यातः सोऽन्यत्र च क्व चित्॥ स्वारो जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टकोऽपि वा। उच्चोदयो वा स्वरितोदयोऽपि स्याद् विकम्पितः॥ प्राक् तस्मादनुदात्तः स्यादुदात्तो वा तथाऽपि च। उक्तेन लक्ष्मणा योगात् सम्भवत्येव

कम्पता॥ पूर्वे नीचेऽपेक्ष्य तं च कम्पितत्वं विभाव्यते। प्रोच्चे तु पूर्वे हेतुः स न कम्पत्वविभावने" इति (३।२८-३२)।

हिन्दी— कम्प स्वर को उच्चारण काल में स्वरमध्यभाग में कम्पित कर के उच्चरित करना चाहिए। मध्यभाग से पूर्व तथा उत्तर के भागों को उदात्त रूप में अथवा अनुदात्त रूप में तुल्य बनाकर उच्चरित करना चाहिए। यदि कम्प स्वर में रङ्ग भी हो तो रङ्गसहित स्वर को कम्पित करके उच्चरित करना चाहिए। इस का उदाहरण 'रथीव' इत्यादि ऋग्वेदमन्त्र में (५।८३।३) आया हुआ "वर्ष्यां३ अह" यह प्रयोग है।

विशेष— यह पद्य शिक्षापञ्जिकादि में नहीं है। लक्ष्य और लक्षण के ज्ञान की परम्परा क्षीण होने से इस पद्यका अर्थ दुर्बोध हो गया है। अतः पूर्व व्याख्याताओं से इस पद्य की अन्यथा व्याख्या की गई है। इस पद्य को ठीकठीक समझने के लिए शैशिरीयशिक्षा, शौनकीयशिक्षा, कौण्डिन्न्यायनशिक्षा इत्यादिग्रन्थों का अनुशीलन उपकारक है। उन ग्रन्थों का कुछ सारांश ऊपर संस्कृतव्याख्या में दिया गया है॥३०॥

[वर्णोच्चारणकौशलमाहात्म्यम्]

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाऽव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥३१॥

अन्वयः— एवम् वर्णाः प्रयोक्तव्याः, अव्यक्ता (वर्णाः) न (प्रयोक्तव्याः), पीडिताः च (वर्णाः) न (प्रयोक्तव्याः)। सम्यग्वर्णप्रयोगेण (प्रयोक्ता) ब्रह्मलोके महीयते।

शब्दार्थः— एवम्=एतेन प्रकारेण, वर्णाः=अकारादयो वर्णाः, प्रयोक्तव्याः=उच्चारणीयाः, अव्यक्ताः=अस्फुटाः, (वर्णाः=अकारादयो वर्णाः), न=नैव, (प्रयोक्तव्याः=उच्चारणीयाः), पीडिताः=परुषीकृताः, च=अपि, (वर्णाः=अकारादयो वर्णाः), न=नैव, (प्रयोक्तव्याः=उच्चारणीयाः)। सम्यग्वर्णप्रयो-

गेण= सुष्ठुवर्णोच्चारणेन, (प्रयोक्ता= उच्चारयिता), ब्रह्मलोके= परमेष्ठिभुवने (ब्राह्मणसमाजे वा), महीयते=पूज्यते।

सरलार्थः— उपरिवर्णितेन प्रकारेण अकारादयो वर्णा वेदमन्त्रस्य गुणने (घोषणे), नित्याध्ययने, जपे, प्रवचने, याज्ञप्रयोगे च उच्चारणीयाः, (शिथिलकरणप्रयोगेण) अव्यक्ता वर्णा नोच्चारणीयाः, (अतिदृढकरणप्रयोगेण) परुषीकृता वर्णा अपि नोच्चारणीयाः। सुष्ठु वर्णोच्चारणेन उच्चारयिता ब्रह्मलोके ब्राह्मणसमाजे वाऽपि सत्कार्यो भवति।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकायां नास्ति। याजुषपाठे तु दृश्यते। तत्रैतत् पद्यं व्याघ्री यथेत्यादिकात् पद्यादनन्तरं पठितमस्ति। यथा सौराष्ट्रिकेत्यादिकं पद्यमन्यत्रैव पठितमस्ति। रङ्गवर्णमित्यादिकानि चत्वारि पद्यानि तु तत्र नैव सन्ति। शिक्षाप्रकाशव्याख्यापाठेऽपि कुतीर्थादागतमित्यादिकस्य प्रकरणस्याऽन्ते यथा व्याघ्रीत्यादिपद्यानन्तरमेव एवं वर्णा इत्यादिकं पद्यं पठितमस्ति। नारदीयशिक्षायामपि **"यथा व्याघ्री हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभिर् न च पीडयेत्। भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्॥ एवं वर्णा प्रयोक्तव्या नाऽव्यक्ता न च पीडिताः। सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते"** इति पाठो दृश्यते (२।८।३०–३१)। तस्माद् एतस्मिन् पद्ये एवमित्यस्य पदस्य 'उच्चारणकरणस्य शिथिलं प्रयोगम् अतिदृढं प्रयोगं च परिहृत्य वर्णानामव्यक्ततां परुषतां चाऽकृत्वा' इत्येवाऽर्थः सुसङ्गतोऽवगम्यते।

हिन्दी— उपरिवर्णित प्रकार से वर्णों का उच्चारण करना चाहिए। वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण नहीं करना चाहिए। वर्णों का कठोर (परुष) उच्चारण भी नहीं करना चाहिए। वर्णों के समीचीन उच्चारण से उच्चारणकर्ता ब्रह्मलोक में (अथवा ब्राह्मणसमाज में) सत्कृत होता है।

विशेष— इस पद्य के 'एवम्' पद से पूर्ववर्णित प्रकार की ओर निर्देश किया गया है। यहाँ 'व्याघ्री यथा' इत्यादि पद्यों से जो उच्चारणप्रकार वर्णित हैं उन सब का ही निर्देश मानना उचित है। इन दो पद्यों के मध्य में 'यथा सौराष्ट्रिका नारी' इत्यादि जो पाँच पद्य आए हैं

वे प्रक्षिप्त मालूम पडते हैं। शिक्षाप्रकाशव्याख्या में इस पद्य के वाद अधोलिखित पद्य आया है–

अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।
शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद् वृत्तिं विलम्बिताम्॥

(अभ्यास के लिए द्रुता वृत्ति, प्रयोग करते समय मध्यमा वृत्ति और शिष्यों को उपदेश देने के अवसर में विलम्बिता वृत्ति से शब्दों का उच्चारण करना चाहिए।)

याजुष पाठ में यह बाइसवाँ पद्य है। यह पद्य याज्ञवल्क्यशिक्षा में (श्लो.५४), नारदीयशिक्षा में (१।६।२१) और ऋग्वेदप्रातिशाख्य में भी (१३।४९) है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में यह पद्य उव्वट से अव्याख्यात होने से प्रक्षिप्त मालूम पडता है। अथवा यह पद्य उव्वट की व्याख्या में ग्रन्थान्तर से उद्धृत पद्य है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में यह विषय 'तिस्रो वृत्तीरुपदिशन्ति' (१३।४६) इत्यादि सूत्रों में आ चुका है। उन सूत्रों के स्पष्टीकरण के लिए ही उव्वट से 'अभ्यासार्थे' इत्यादि दो पद्य उद्धृत किए गए मालूम पडते हैं॥३१॥

[अधमपाठकलक्षणम्]

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश् च षडेते पाठकाऽधमाः॥३२॥

अन्वयः– गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः अनर्थज्ञः अल्पकण्ठः च एते षट् पाठकाधमाः (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः– गीती= गायन्निव पठन् (गीतस्वरेण पठन्), शीघ्री= द्रुतम् पठन्, शिरःकम्पी=शिरःकम्पनयुक्ततया पठन्, तथा=तद्वत्, लिखितपाठकः= लिखितस्य ग्रन्थस्य पठिता, अनर्थज्ञः= अर्थज्ञानरहितः, अल्पकण्ठः= अल्पसामर्थ्यगलः, च= अपि एते= अत्र निर्दिष्टाः, षट्= रसमिताः, पाठकाधमाः= वाचकेषु निकृष्टाः (ज्ञेयाः=बोध्याः)।

सरलार्थः– गायन्निव पठन्, अतिद्रुततया पठन्, शिरःकम्पनयुक्ततया पठन्, गुरूच्चारणानुच्चारणरहितम् अनभ्यस्तं लिखितं वेदादिकम् पठन्, अर्थ-ज्ञानशून्यतया दशरा-मशरा इति न्यायेन पठन्, शुष्ककण्ठत्वन्यूनप्राणत्वाऽल्प-सामर्थ्यत्वादिदोषयुक्तकण्ठश्चेति षड्विधाः पाठकाः पाठकेषु अधमा ज्ञेयाः।

व्याख्या– एतत् पद्यं शिक्षापञ्जिकादिषु नास्ति। सायणेन ऋग्वेद-व्याख्याभूमिकायां तु एतत् पद्यमुल्लिखितम्। शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.९८), याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.१९८), सर्वसम्मतशिक्षायाम् (श्लो.११४ [३।१००]) चैतत् पद्यं पठ्यते। अत्र लिखितपाठको निन्दितः। स च मुख्यतया लिखितस्य वेदस्य पाठकोऽवगम्यते। वेदो हि नियमानुसारं सदाचारसम्पन्नात् शुद्धकुलीनाद् विधिवदधीतवेदकाद् गृहस्थाद् ब्राह्मणाद् गुरोरधिकारसम्पन्नेन सदाचारिणा शुद्धकुलीनेन त्रैवर्णिकेन गुरूच्चारणानूच्चारणं कृत्वा गुरुसन्निधौ गुरुसंश्रवे समुपविश्याऽभ्यस्य गृहीत्वा पठनीयः; एवमेव **"वेदꣳ समाप्य स्नायात्"** इत्यादिभिर् वचनैः पारस्करगृह्यसूत्रकारादिभिर् विहितम् (पारस्करगृह्यसूत्रे २।६।१)। एतदेव **"स्वाद्ध्यायोऽद्ध्येतव्व्यः"** इति श्रुतेः (मा.वा.शतपथब्राह्मणे ११।५।६।३) अप्यनुकूलम्। अतथाकारी च निन्द्यते। तथा हि नारदीयशिक्षायाम्– **"पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाऽधीतं गुरुसन्निधौ। न भ्राजते सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः"** इति (२।८।१९)। भविष्यपुराणे च– **"वेदानां पुस्तकं यच्च लिखित्वा तन् न वाचयेत्। तथा तत्रोदितान् मन्त्रान् लिखित्वा तन् न वाचयेत्"** इति (२।१।७।४८–४९) वेदस्य लिखित्वा पठनं निषिद्धम्। महाभारते हि वेदानां लेखनमात्रमपि निन्दितम्, तथा हि– **"वेदविक्रयिणश् चैव वेदानां चैव दूषकाः। वेदानां लेखकाश् चैव ते वै निरयगामिनः"** इति (अनुशासनपर्वणि २३।७२)। कुमारिलभट्टेन चोक्तम्– **"यथैवाऽन्यायविज्ञाताद् वेदाल् लेख्यादिपूर्वकात्। शूद्रेणाऽधिगताद् वापि धर्मज्ञानं न सम्मतम्"** (तन्त्रवार्तिके आनन्दाश्रमसंस्करणे १।३।७, पृ.१२३) इति। एवं चात्र न स्वलिखितस्तोत्रपाठक एव निन्दितः, किन्तु वेदं गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणपूर्वकं कण्ठस्थमकृत्वा पुस्तकप्रत्ययाल् लिखित-वेदस्य पाठको मुख्यतया निन्दितोऽवगम्यते। अतोऽत्र पण्डितरुद्रप्रतापावस्थि-प्रभृतिभिः कृता व्याख्याऽपर्याप्ताऽवसीयते।

हिन्दी— गाने की तरह पढने वाला, ज्यादा शीघ्रता से पढने वाला, शिर हिलाहिलाकर पढने वाला, अनभ्यस्त अकण्ठस्थीकृत वेदादिशास्त्र को लेखन के आधार में पढने वाला, अर्थज्ञान के विना दशरा-मशरा कर के पढने वाला, और शुष्ककण्ठत्व-न्यूनप्राणत्वादि-दोषयुक्त रूप में पढने वाला– ये छह प्रकार के पाठक पाठकों में अधम हैं।

विशेष— इस पद्य में 'लिखितपाठक' पद से मुख्य रूप में वेद को लेखन के आधार में पढने वाले को लेना समुचित है, क्यों कि नारदीयशिक्षा, भविष्यपुराण, महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में वेद को लिखकर पढना मना किया गया है। स्थलनिर्देशसहित सम्बद्ध वचन ऊपर संस्कृतव्याख्या में दिए गए हैं। लिखितपाठक पद से केवल स्वलिखित-स्तोत्र-पाठक को लेना समुचित नहीं लगता है।

"वेद६ समाप्य्य स्नायात्" (पारस्करगृ.सू.२।६।१) इस सौत्र विधि ने गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूप अध्ययन से स्वशाखावेद प्राप्त करने का विधान किया है। अतः वैदिक परम्परा में गुरुमुखोच्चारणानूच्चारण रूप से अधीत वेदमन्त्र के ही प्रयोग से इष्ट अदृष्ट उत्पन्न होता है, हस्तलिखित पुस्तकादि से पठित वेदमन्त्र के प्रयोग से इष्ट अदृष्ट उत्पन्न नहीं होता है, ऐसी मान्यता है। यह बात मीमांसकशिरोमणि कुमारिल भट्ट ने तन्त्रवार्तिक में स्पष्ट की है (१।३।७)। इस वस्तुस्थिति को समझने से ही इस पद्य के **"लिखितपाठकः"** इस पद का मर्म सही रूप में ज्ञात होता है।

इसी वैदिकसिद्धान्त को ध्यान में रखकर माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायी निरग्निक द्विजों के लिए स्नानसन्ध्योपासनादि नित्यसदाचारकर्म, हृदयालम्भन-पुंसवनादि संस्कारकर्म और श्राद्धकर्म के लिए आवश्यक मन्त्रों का सङ्ग्रह स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब ने प्रकाशित किया है। सम्पूर्ण मन्त्रब्राह्मणकल्पसूत्रात्मक स्वशाखावेद के अध्ययन में असमर्थ होने पर भी ब्राह्मणों को इस प्रकार भी आवश्यक मन्त्रों का गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणपूर्वक अध्ययन करना धर्म की रक्षा की दृष्टि से

अत्यावश्यक है। इसी लिए **वैदिक-मन्त्र-सङ्ग्रह** का प्रणयन और प्रकाशन किया गया है (२०५२ वै.)॥३२॥

[पाठकगुणविचारः]

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस् तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥३३॥

अन्वयः— माधुर्यम् अक्षरव्यक्तिः पदच्छेदः तु सुस्वरः धैर्यम् लयसमर्थम् च एते षट् पाठका गुणाः (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः— माधुर्यम्= सुश्रवत्वम्, अक्षरव्यक्तिः= वर्णानां स्पष्टता, पदच्छेदः=अर्थानुगतः पदविभागः, तु=हि, सुस्वरः=शोभनः स्वरः, धैर्यम्=स्थैर्यम्, लयसमर्थम्= लययुक्तत्वम्, च= अपि, एते= अत्र निर्दिष्टाः, षट्= रसमिताः, पाठकाः=पाठकसम्बद्धाः, गुणाः=शोभना धर्माः, (ज्ञेयाः=बोध्याः)।

सरलार्थः— मधुरत्वम्, वर्णानामुच्चारणे स्पष्टत्वम्, पदच्छेदः, शोभनः स्वरः, धैर्यम्, लययुक्तत्वं चेति षट् पाठकसम्बद्धा गुणाः ज्ञेयाः।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नास्ति। सायणेन ऋग्वेदव्याख्याभूमिकायां तूल्लिखितम्। पाठगुणादिविषयेऽपि शैशिरीयशिक्षादिषु शिक्षाग्रन्थेषु बहु प्रपञ्चितम्। तत्सङ्ग्रहः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सामाध्याये द्रष्टव्यः (पृ.५५१–५६०)।

हिन्दी— मधुरता, वर्णों की स्पष्टता, पदविभाग, सुस्वरता, स्थिरता, लययुक्तता, ये छह पाठकसम्बन्धी गुण जानने चाहिए।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकादि में नहीं है। सायण ने ऋग्वेद-व्याख्याभूमिका में इस पद्य का उल्लेख किया है। पाठकगुणादि विषय का विस्तार संस्कृत में कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के सामाध्याय में (पृ.५५१–५६०) द्रष्टव्य है॥३३॥

[पाठप्रकारविशेषाणां निषेधः]

शङ्कितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम्॥३४॥

उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन् न दीनं न तु सानुनास्यम्॥३५॥

अन्वयः— शङ्कितम् भीतम् उद्घुष्टम् अव्यक्तम् अनुनासिकम् काकस्वरम् शिरसिगम् तथा स्थानविवर्जितम् (वर्णम् न वदेत्)॥ उपांशु दष्टम् त्वरितम् निरस्तम् विलम्बितम् गद्गदितम् प्रगीतम् निष्पीडितम् ग्रस्तपदाक्षरम् च (वाक्यम्) न वदेत्। दीनम् सानुनास्यम् तु (वाक्यम्) न (वदेत्)।

शब्दार्थः— शङ्कितम्= शङ्कायुक्तम्, भीतम्= भययुतम्, उद्घुष्टम्= अत्युच्चैः प्रयुक्तम्, अव्यक्तम्= अस्पष्टम्, अनुनासिकम्= निरनुनासिकतयोच्चारणीयमपि अनुनासिकरूपेणोच्चारितम्, काकस्वरम्= काकवाशितवत् कटुनादम्, शिरसिगम्=अतितारम्, तथा=तद्वत्, स्थानविवर्जितम्=स्वस्थानविच्युतम्, (वर्णम्= अकारादिकं वर्णम्, न= न हि, वदेत्= उच्चारयेत्)॥ उपांशु=अनिर्गतशब्दमन्याऽश्राव्यम्, दष्टम्=दन्तपङ्क्तिविश्लेषरहितम्, त्वरितम्= अतिशीघ्रम्, निरस्तम्=अम्बूकृतम्, विलम्बितम्=अतीव मन्दगतिकम्, गद्गदितम्= श्लथत्कण्ठम्, प्रगीतम्= गानस्वरयुतम्, निष्पीडितम्= अतीव दृढेन स्थानकरण-संयोगेनोच्चारितम्, ग्रस्तपदाक्षरम्= एकेन पदेनाऽन्यस्य पदस्य एकेनाऽक्षरेणाऽन्यस्याऽक्षरस्याऽतिक्रमणेनाऽऽच्छादनेन च युतम्, च= अपि, (वाक्यम्= सुप्तिङन्तचयम्), न=न हि, वदेत्= उच्चारयेत्। दीनम्= निरुत्साहस्वरम्, सानुनास्यम्=सर्वांशे आनुनासिक्येन युक्तम्, तु= च, (वाक्यम्= कारकान्वितक्रियाशब्दम्), न=न हि, (वदेत्=उच्चारयेत्)।

सरलार्थः— शङ्कायुक्तं भययुक्तम् अत्युच्चैः प्रयुक्तम् अस्पष्टम् अनुनासिकीकृतं काकवाशितवत् कटुनादम् अतितारं स्वस्थानादन्यत उच्चारितं च

वर्णं न वदेत्॥ अन्याऽश्राव्यं दन्तपङ्क्तिविश्लेषरहितत्वेनोच्चारितम् अतिशीघ्रं सनिष्ठीवम् अतिमन्दगतिं श्लथत्कण्ठस्वरं गानस्वरयुतम् अतीवदृढकरण-प्रयोगेणोच्चारितं लुप्तपदवर्णं च वाक्यं न वदेत्। निरुत्साहस्वरं सर्वांशे आनु-नासिक्येन युक्तं वाक्यं च न वदेत्।

विशेषः— शिक्षाशास्त्रे प्रतिपादनीयेषु हेयेषु उच्चारणदोषेषु पाठकगतो-च्चारणदोषाः, वर्णोच्चारणदोषाः, पदोच्चारणदोषाः, वाक्योच्चारणदोषाः इति अनेकधा दोषा भवन्ति। वर्णोच्चारणदोषेषु च स्वरव्यञ्जनोभयगतदोषाः, स्वर-गतदोषाः, व्यञ्जनगतदोषाश् च भवन्ति। एतेषां विवरणं कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायां बलाध्याये वर्णोच्चारणदोषविवेकाधिकारे (पृ.५३८-५५०), सामा-ध्याये हेयोच्चारणनिरूपणे (पृ.५५६-५५८), पाठकदोषनिरूपणे (पृ.५६०), पदोच्चारणदोषनिरूपणे वाक्योच्चारणदोषनिरूपणे च (पृ.५८६-५९०) द्रष्टव्यम्। अत्र तु शङ्कितं भीतमित्यादिके पद्ये सामान्यतया वर्णोच्चारणदोषाः, उपांशु-दष्टमित्यादिके पद्ये च वाक्योच्चारणदोषा वर्णिताः प्रतीयन्ते। अथवा सामान्या एव दोषा उभयोः पद्ययोरुक्ता मन्तव्याः। एते द्वे पद्ये पञ्जिकादिषु नैवोपात्ते। उपांशुदष्टमित्यादिकं पद्यं तु सायणेन ऋग्वेदव्याख्याभूमिकायामुल्लिखितम्। याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.२६-२८) नारदीयशिक्षायां च (१।३।११-१२) शङ्कितादयश् चतुर्दश पाठदोषा गीतिदोषा वा प्रदर्शिताः। तथाहि— "**शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तं सानुनासिकम्। काकस्वरं शीर्षगतं तथा स्थानविवर्जितम्॥ विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्। व्याकुलं तालुहीनं च पाठ(गीति)-दोषाश् चतुर्दश**" इति (या.शि., श्लो.२६-२८)। दोषवदुच्चारणे हानेर् दिशः प्रदर्शनं च "**उपांशु त्वरितं चैव योऽधीते वित्रसन्नपि। अपरूपसहस्राणां सन्देहे स प्रवर्तते**" इति कृतं याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.१६२), नारदीयशिक्षायाम् (२।८।१८), माण्डूकीयशिक्षायां च (श्लो.१६७)। अमरकोशेऽपि प्रथमकाण्डे शब्दादिवर्गे दोषवन्ति उच्चारणानि बहून्येवोल्लिखितानि दृश्यन्ते। "**निरस्तं त्वरितोदितम्**" इति च तत्र दृश्यते (१।६।२०)। मेदिनिकरश् च "**निरस्तस्त्रिषु निष्ठ्यूते प्रेषितेषौ द्रुतोदिते। सन्त्यक्ते च प्रतिहते**" (१६।११८-११९) इति वदति। अतोऽत्र निरस्तमिति पुनरुक्तिपरिहाराय सनिष्ठीवमुच्चारणं बोद्धव्यं प्रतीयते।

हिन्दी— सन्देहयुक्त, भययुक्त, अत्युच्चध्वनियुक्त, अस्पष्ट, अनुनासिकीकृत, कौवे की स्वर की तरह कटुस्वरयुक्त, अतितारस्वरयुक्त तथा स्वस्थान से भिन्न स्थान से उच्चरित वर्ण नहीं बोलना चाहिए। मुह से शब्द बाहर निकाले विना, दन्तपङ्क्तियों को खोले विना, ज्यादा शीघ्रता से, थूक के छीटे उडाते हुए, अत्यन्त मन्दगति में, गद्गदकण्ठ होकर, गाना जैसा बनाकर, जिह्वाको ज्यादा दृढता से प्रयुक्त कर के तथा पद को और वर्ण को लुप्त कर के भी वाक्य नहीं बोलना चाहिए। निरुत्साह होकर और सम्पूर्ण वाक्य को अनुनासिक बनाकर भी वाक्य नहीं बोलना चाहिए।

विशेष— इन पद्यों में उक्त उच्चारणदोषों में अनुनासिकीकृत बना के बोलना और त्वरित गति में बोलना पुनरुक्त दिखाई देते हैं। हम ने प्रथम अनुनासिकीकृत को वर्णगत और द्वितीय को वाक्यगत मानकर इस पुनरुक्तिदोष को हटाने का प्रयास किया है। निरस्त पद का अर्थ अमरकोश में **"निरस्तं त्वरितोदितम्"** (१।६।२०) कहकर त्वरितोदित बताया गया है। इस से **"त्वरितं निरस्तम्"** में पुनरुक्ति दिखाई देती है। निरस्त का कोई भिन्न अर्थ मानने पर यह दोष नहीं होगा। मेदिनिकर के कोष में **"निरस्तस्त्रिषु निष्ठ्यूते प्रेषितेषौ द्रुतोदिते। सन्त्यक्ते च प्रतिहते"** (१६।११८-११९) कहा गया है। अतः मेदिनिकर के कोष में आए हुए निष्ठ्यूत शब्द का अमरकोष के **"अम्बूकृतं सनिष्ठीवम्"** (१।६।२०) के अनुसार 'थूक के छीटे उडाते हुए बोला गया वचन' अर्थ मानना सम्भव दिखाई देता है। अतः प्रकृत पद्य में हमने 'निरस्तम्' का पर्याय "अम्बूकृतम्" दिया है और हिन्दी में उसका अर्थ 'थूक के छीटे उडाते हुए बोला गया वाक्य' माना है ॥३४-३५॥

[श्रौतसोमयागेषु त्रिषु सवनेषु वाचः स्थानविशेषणां प्रयोगस्य प्रकाराः]

प्रातः पठेन् नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।
माध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन ॥३६॥

तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच् च सदा प्रयोज्यम्।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन॥३७॥

अन्वयः— प्रातः नित्यम् उरःस्थितेन शार्दूलरुतोपमेन स्वरेण पठेत्। माध्यन्दिने (नित्यम्) कण्ठगतेन चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन (स्वरेण) च एव (पठेत्)॥ तृतीयम् सवनम् तु तारम् विद्यात्। तच् च सदा शिरोगतम् मयूर-हंसान्यभृतस्वराणाम् तुल्येन शिरःस्थितेन नादेन प्रयोज्यम्।

शब्दार्थः— प्रातः=प्रातःसवने, नित्यम्=सदा, उरःस्थितेन=वक्षःस्थलगतेन, शार्दूलरुतोपमेन=व्याघ्रध्वनिसदृशेन, स्वरेण=ध्वनिविशेषेण, पठेत्=उच्चारयेत्। माध्यन्दिने=माध्यन्दिनसवने, (नित्यम्=सदा), कण्ठगतेन=गलस्थितेन, चक्राह्व-संकूजितसन्निभेन= चक्रवाकवाशितसदृशेन, (स्वरेण= ध्वनिविशेषेण), च= अपि, एव=हि, (पठेत्=उच्चारयेत्)॥ तृतीयम्=अग्निसङ्ख्यापूरणम्, सवनम्= सोमसवनप्रयोगम्, तु=हि, तारम्=उच्चतरम्, विद्यात्=जानीयात्। तत्=तृतीय-सवनम्, च=अपि, सदा=नित्यम्, शिरोगतम्=उच्चतमस्थानस्थितम्, मयूर-हंसान्यभृतस्वराणाम्= बर्हिण-चक्राङ्ग-कोकिलशब्दानाम्, तुल्येन= सदृशेन, शिरःस्थितेन=शीर्षस्थानगतेन, नादेन=स्वरेण, प्रयोज्यम्=उच्चार्यम्॥३७॥

सरलार्थः— सोमयागेषु प्राभातिके सवने सदा उरःस्थितेन व्याघ्रध्वनि-सदृशेन स्वरेण शस्त्रादिकं पठेत्। माध्यन्दिने सवने सदा कण्ठगतेन चक्रवाक-कूजिततुल्येन स्वरेण शस्त्रादिकं पठेत्॥ तृतीयं सवनं तु उच्चस्वरं विद्यात्। तत्र शस्त्रपाठादिषु उच्चतमस्थानगतस् तारः स्वरः मयूर-हंस-कोकिल-स्वरतुल्येन शिरःस्थितेन नादेन उच्चारणीयः।

व्याख्या— एते पद्ये पञ्जिकादिषु नोपात्ते। किन्तु एतादृशे पद्ये चारायणी-यशिक्षायाम् (४।७,८; कौ.शि., पृ.८१०), माण्डूकीयशिक्षायां च (श्लो.४१-४२) स्तः। एते पद्ये **"शिक्षा चैवं वक्ष्यति"** इत्युक्त्वा तैत्तिरीयप्रातिशाख्य-व्याख्याने त्रिभाष्यरत्ने (२३।१०-१२) सोमयार्येणोद्धृते च दृश्येते। अत्र केचन उरःस्थानकादिस्वरप्रयोगं प्रातःकालादिकालविशेषमात्रेण सम्बद्धं मन्यन्ते।

वस्तुतस्तु उरःस्थानकादिस्वरप्रयोगः सोमयागानाम् प्रातःसवनादिभिः सवनविशेषैः सम्बद्धोऽवगम्यते। तत्र सोमसवनेषु स्वरविशेषप्रयोगव्यवस्था च ऐतरेयिब्राह्मणे– "यदा वा एष प्रातरुदेत्यथ मन्द्रं तपति, तस्मान् मन्द्रया वाचा प्रातःसवने शंसेत्। अथ यदाऽभ्येत्यथ बलीयस् तपति, तस्माद् बलीयस्या वाचा मध्यन्दिने शंसेत्। अथ यदाऽभितरामेत्यथ बलिष्ठतमं तपति, तस्माद् बलिष्ठतमया वाचा तृतीयसवने शंसेत्" इति [३।४४ (१४।६)], कात्त्यायनश्रौतसूत्रे च– "प्रातःसवने चोच्चैः कर्म्माणि, मद्ध्यमेन माद्ध्यन्दिने, उत्तमेन तृतीयसवने" इति (९।६।१७–१९), शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये च– "सवनक्क्रमेणोरःकण्ठभ्रूमद्ध्यानि" इति (१।३०) प्रतिपादिता। नाट्ये च तारादिप्रयोगनियमः "शारीर्यमिथ वीणायां त्रिभ्यः स्थानेभ्य एव तु। उरसः शिरसः कण्ठात् स्वरः काकुः प्रवर्तते॥ आभाषणं च दूरस्थे शिरसा सम्प्रयोजयेत्। नाऽतिदूरे च कण्ठेन ह्युरसा चैव पार्श्वतः" इति भरतनाट्यशास्त्रे (१७।१०६, १०८) प्रतिपादितः। एवं च तारादीनां लौकिकोऽपि प्रयोगोऽवगम्यत एव। तथाप्यत्र यज्ञिय एव प्रयोगो वर्णितोऽवसीयते सवन-शब्दप्रयोगात्।

हिन्दी– प्रातःसवन में नित्य ही बाघ के गर्जन के समान उरःस्थित गम्भीर स्वर से शस्त्रादि वाक्य पढे। माध्यन्दिन (=बीच के) सवन में नित्य ही चकवे के ध्वनि के समान कण्ठस्थित स्वर से शस्त्रादि वाक्य पढे। तृतीय सवन को (तृतीय सवन के शस्त्रादि वाक्यों को) तार स्वर वाला जाने। उसमें शस्त्रादि वाक्य पढने में उच्चतम स्थान में स्थित उस तार स्वर को मयूर-हंस-कोकिलों के स्वरों के समान ही शिरःस्थित स्वर से प्रयुक्त करे।

विशेष– ये दो पद्य पञ्जिकादि में नहीं पाए जाते हैं। किन्तु ऐसे पद्य चारायणीयशिक्षा में (४।७,८; कौ.शि., पृ.८१०) और माण्डूकीयशिक्षा में भी (श्लो.४१–४२) पाए जाते हैं। तैत्तिरीयप्रातिशाख्य के व्याख्याता त्रिभाष्यरत्नकार सोमयार्य ने भी इन पद्यों को उद्धृत किया है (२३।१०–१२)। इन पद्यों में कतिपय व्याख्याताओं के मत में प्रातःकालादि सामान्य काल में स्वरविशेष के प्रयोग का विधान है। किन्तु इन पद्यों में वैदिक

सोमयागों के प्रातःसवनादि सवनों में शस्त्रादिवाक्यों के उच्चारण में प्रयोज्य स्वरविशेष का ही वस्तुतः विधान है। यह बात सवन शब्द के प्रयोग से स्पष्ट हो जाती है। इस विषय को संस्कृत व्याख्या में उद्धृत ऐतरेयिब्राह्मण के और कात्यायनश्रौतसूत्रादि के वाक्यों से स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। शस्त्र शब्दका इस प्रकरण में अर्थ देवताप्रशंसनपरक ऋग्वेदमन्त्र है। **सोमयाग** वैदिक यज्ञविशेष का नाम है, जिस में सोमलता को विधिवत् कूटकर उस से रस निकालके ग्रहनामक पात्र में रखकर स्तोत्र-शस्त्र-प्रयोगपूर्वक होमा जाता है। सोमरस निकालने को ही सवन कहते हैं। प्रातःसवन एक बहूत लम्बेचौडे कर्मसमुदाय का नाम है। माध्यन्दिन-सवन और तृतीयसवन भी ऐसे ही कर्मसमुदायविशेष के नाम हैं। तृतीयसवन को प्राचीन वैदिक वाङ्मय में कहीं भी सायंसवन नहीं कहा गया है। अतः तृतीयसवन को सायंसवन कहना उचित नहीं है।

सोमयाग के उल्लेख के प्रसङ्ग में गृह्य-श्रौत कर्मों के क्रम का सामान्य परिचय प्राप्त करने के इच्छुक लोगों की सुविधा के लिए कुछ बात यहाँ पर नीचे दी जाती है।

(गृह्यश्रौतकृत्यसेवनक्रमविशेष)

वैदिक सनातन वर्णाश्रमधर्म में इस में प्रतिबिम्बित गम्भीर तत्त्वदर्शन को और शाश्वत प्राकृत पक्षों को अच्छी तरह समझने वाला निर्धन ब्राह्मण संस्कारपालन, शिखासूत्रधारण, स्नान-सन्ध्योपासन, ब्रह्मयज्ञ-तर्पण, भक्ष्याऽभक्ष्य-पेयाऽपेय-स्पृश्याऽस्पृश्य-कार्याऽकार्य-गम्याऽगम्य-गन्तव्याऽगन्तव्यादि के शास्त्रोक्त नियमों से युक्त सदाचार का पालन और यथाशक्ति वेदाभ्यास इतने से ही कृतकृत्य होता है। कुछ धन रहने पर विवाह, पुत्त्रोत्पादन तथा लौकिकाग्नि में पञ्चमहायज्ञान्तर्गत देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञ-मनुष्ययज्ञों का भी प्रतिदिन सम्पादन ब्राह्मण के लिए शास्त्र में आवश्यक माना जाता है। कुछ अधिक धन रहने पर अनुकल्पकाग्नि में सायम्प्रातर् अग्निपरिचरण (होम), पिण्डपितृयज्ञ, पक्षादिकर्म, आग्रयण (नवान्नप्राशनकर्म) भी ब्राह्मण के लिए शास्त्र में आवश्यक माना

गया है। उस से भी अधिक धन तथा जनबल और शरीरबल होने पर गृह्य अग्नि का आधान और उसका नित्य निरन्तर संरक्षण तथा उसमें ही सायम्प्रातर् अग्निपरिचरण, नित्य पञ्चमहायज्ञसम्पादन, पिण्ड-पितृयज्ञ, पक्षादिकर्म और आग्रयण (नवान्नप्राशनकर्म) भी शास्त्र में ब्राह्मण के लिए आवश्यक माने गए हैं। गृह्याग्नि का आधान करने वाले ब्राह्मण के लिए आधान के प्रथम वर्ष में सोलह महीनों के अन्दर ही गृह्य-सूत्रोक्त श्रवणाकर्म, इन्द्रयज्ञ, आश्वयुजीकर्म, आग्रहायणीकर्म, स्रस्तरा-रोहणकर्म, अष्टका, अन्वष्टका, शूलगव, गोयज्ञ, वृषोत्सर्ग और पायस-श्रपणकर्म को भी शिष्टों ने अत्यावश्यक माना है। उक्त गृह्यकर्म सम्पन्न करने पर ही ब्राह्मण श्रौत अग्न्याधान का अधिकारी होता है। श्रौत अग्नि का आधान करने पर भी पर्याप्त धनबल-जनबल न होने पर ब्राह्मण के लिए केवल सायम्प्रातर् अग्निहोत्र, शुक्लपक्षों के अन्त में पूर्णमासयाग, कृष्णपक्षों के अन्त में पिण्डपितृयज्ञ और दर्शयाग तथा शरद्ऋतुओं में व्रीह्याग्रयणेष्टि और वसन्त ऋतुओं में यवाग्रयणेष्टि ही शास्त्र में आवश्यक माने गए हैं। आवश्यक जनबल-धनबल होने पर तो श्रौत अग्नि का आधान करने वाले ब्राह्मण के लिए कम से कम एक वर्ष चातुर्मास्य यागों का अनुष्ठान करना और प्रत्येक वर्ष उत्तरायण के आदि में और दक्षिणा-यन के आदि में अथवा उत्तरायण के आदि में ही निरूढपशुबन्धयाग करना श्रौतसूत्रों में और मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में भी आवश्यक माना गया है। प्रतिवर्ष वसन्त ऋतुओं में अग्निष्टोमादि सोमयाग करने में समर्थ धनबल-जनबल-शरीरबलसम्पन्न सुसमृद्ध ब्राह्मण के लिए ही श्रौतसूत्रों में और मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृत्यादि ग्रन्थों में सोमयाग आवश्यक माना गया है। अत एव सोमयाग का शास्त्रानुसार न्याय्य रूप में यथाविधि अनुष्ठान विविध प्रतिकूलताओं की उत्पत्ति और वृद्धि के कारण से अर्वाचीन काल में अत्यन्त विरल होता जा रहा है। अर्वाचीन काल में दक्षिणभारत में सोमयाग के अनुष्ठान की परम्परा विशेष रूप से चली आ रही दिखती है। तथापि वहाँ भी विविध समस्याएँ खडी हो रही हैं।

अब तो सोमयाग अदृश्य सा हो गया है। इस लिए लौकिक ख्यातिसम्पन्न विद्वानों में भी सोमयाग के विषय में यथार्थ ज्ञान मात्र भी अत्यन्त विरल हो गया है। इस लिए इस सम्बन्ध में विद्वानों से भी त्रुटि हो जाती है। इस विषय में अध्येताओं में भी विशेष जागरूकता और विवेचनशीलता आवश्यक है। सभी लोगों को वैदिक यज्ञपरम्परा के महत्त्व को अवश्य समझना चाहिए॥३६-३७॥

[आस्यप्रयत्नाः (आभ्यन्तरप्रयत्नाः)]

अचोऽस्पृष्टा यणस् त्वीषन् नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधाऽनुप्रदानतः॥३८॥

अन्वयः— अचः अस्पृष्टाः, यणः तु ईषत् (स्पृष्टाः), शलः नेमस्पृष्टाः स्मृताः, शेषाः हलः स्पृष्टाः प्रोक्ताः। अनुप्रदानतः निबोध।

शब्दार्थः— अचः=स्वराः, अस्पृष्टाः=स्थाने करणस्य अस्पर्शनेनैव उच्चारिताः (विवृताः), यणः=अन्तस्थाः, ईषत्=किञ्चित्, (स्पृष्टाः=स्थाने करणस्य स्पर्शनेन उच्चारिताः), शलः=ऊष्माणः, नेमस्पृष्टाः=अर्धस्पृष्टाः, स्मृताः=स्मृत्याऽवगताः, शेषाः=अवशिष्टाः, हलः=व्यञ्जनानि, स्पृष्टाः=स्थाने करणस्य स्पर्शेन उच्चारिताः, प्रोक्ताः=प्रकथिताः। अनुप्रदानतः=बाह्यप्रयत्नतः, निबोध=जानीहि।

सरलार्थः— स्वराः विवृताः, अन्तस्था ईषत्स्पृष्टाः, ऊष्माणः अर्धविवृताः स्मृताः, अवशिष्टा वर्णाः स्पृष्टाः प्रोक्ताः। अथ बाह्यप्रयत्नतो वर्णभेदान् जानीहि।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु सर्वत्रोपात्तमस्ति। पूर्वं "स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नाऽनुप्रदानतः" इति (श्लो.१०) ये वर्णविभागहेतवः प्रदर्शितास्तेषु स्वर-काल-स्थानैः कृता वर्णविभागाः प्रदर्शिताः। स्थानकृतवर्णविभागप्रदर्शनानन्तरम् उच्चारणगुणदोषादिकं च प्रतिपादितम्। अथाऽत्र प्रयत्नकृतो वर्णविभागः प्रदर्श्यते। यद्यपि स्थानप्रकरणे ऐकारौकारयोः एकारौंकारयोश् च द्विस्थानकताया उपपादने तत्र मात्राविशेषनिवेशविशेषस्य प्रदर्शने विवृतत्व-

संवृतत्वयोश्चोल्लेखे प्रसङ्गात् **"संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्"** इति (श्लो.२०) **"स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्। तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च"** (श्लो.२१) इति चोक्तम्, तथापि तत् सर्वं प्रसङ्गादुक्तमिति तत्र न सर्वे आभ्यन्तरप्रयत्नकृता वर्णविभागाः प्रदर्शिताः। अत्र तु स्वप्रकरणे सर्वे आभ्यन्तरप्रयत्नकृता वर्णविभागाः प्रदर्श्यन्ते। अतोऽत्र आंशिकी पुनरुक्तिरागताऽस्ति। तत्र ऊष्मणां विवृतं करणमुक्तम्, अत्र तु नेमस्पृष्टमिति कश्चन मतभेदोऽपि दृश्यते। तत्र सूत्रकाराचार्यपाणिनिमतेनोक्तम्, अत्र भाष्यकाराचार्यपतञ्जलिमतेनोक्तमिति च प्रतीयते। अत्र स्वराणामस्पृष्टत्वस्य ऊष्मणां नेमस्पृष्टत्वस्य चोक्तिः वस्तुस्थित्यनुसारिणी नास्ति, स्वराणां विवृतत्वस्य ऊष्मणामीषदविवृतत्वस्य च उच्चारणगतवस्तुस्थित्यनुकूलत्वात्। **"यणस्त्वीषत्"** इति कथनमपि नाऽतिमनोहरम्, तत्र अस्पृष्टा इति पदस्य नेमस्पृष्टा इति पदस्य वाऽन्वयस्याऽसम्भवेनाऽध्याहारस्याऽऽवश्यकत्वात्। एते दोषाश् छन्दोनुरोधेनाऽऽगताः प्रतीयन्ते। गद्यसूत्ररूपेषु शिक्षाग्रन्थेषु एतस्य विषयस्य वस्तुस्थित्यनुकूलं समुचिततरं प्रतिपादनं प्राप्यते। तथाहि— **"स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः, ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः, ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः, विवृतकरणाः स्वराः, तेभ्य ए ओ विवृततरौ, ताभ्यामै औ, (ताभ्यामप्याकारः) संवृतोऽकारः"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे। एवमेव प्रायेण पाणिनीयशिक्षासूत्रेऽपि। **"स्पृष्टं करणं स्पर्शानाम्, ईषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम्, विवृतमूष्मणाम्, ईषदित्येवानुवर्तते, स्वराणां विवृतम्, ईषदिति निवृत्तम्"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्यव्याख्याते शिक्षासूत्रग्रन्थप्रकरणेऽपि (पा.व्या.भा.१।१।१०)। अत्र **"नेमस्पृष्टाः शरः स्मृताः"** इति पञ्जिकापाठः। एतत्पाठे शषसानामेव ईषद्विवृतत्वं हकारस्य तु विवृतत्वमिति प्रतिपिपादयिषितमिति गम्यते। दृश्यते च ऋग्वेदप्रातिशाख्यादिषु अपि वस्तुस्थित्यनुकूल एष विचारः। किन्त्वत्र शषसानामेव ईषत्स्पृष्टत्वे उक्ते **"शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ताः"** इत्युक्तत्वाद् हकारस्याऽपि स्पृष्टत्वमुक्तं भवतीत्येष पाठो वस्तुस्थित्यनुकूलो नाऽवतिष्ठते। **वर्णानामुच्चारणे स्थाने करणेन स्पृष्टे स्पृष्टत्वम्, ईषत्स्पृष्टे ईषत्स्पृष्टत्वम्, करणे स्थानाद् दूरं गत्वा स्थिते विवृतत्वम्,**

स्थानस्य समीपमेव गत्वा स्थिते ईषद्विवृतत्वम्, समीपतरं गत्वा स्थिते संवृतत्वं बोध्यम्। एतच्च आपिशलीयशिक्षासूत्रादिषु स्पष्टतया प्रतिपादितम्। वर्णानामाभ्यन्तरप्रयत्नानां विषयेऽधिकतरं प्रतिपादनं द्रष्टुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया बलाध्याये आभ्यन्तरप्रयत्नभेदनिरूपणम् (पृ.५१९), वर्णविशेषाणामाभ्यन्तरप्रयत्नानां निरूपणं च (पृ.५२७–५३७) द्रष्टव्यम्। तत्र हि एतस्य विषयस्य सर्वशिक्षाग्रन्थवचनप्रदर्शनपूर्वकं सविस्तरं विवेचनसहितं प्रतिपादनं कृतमस्ति।

हिन्दी— स्वर (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) अस्पृष्ट, यण् (य व र ल) ईषत्स्पृष्ट, और शल् (श ष स ह) अर्धस्पृष्ट माने गए हैं। अवशिष्ट हल् (ककारादि मकारान्त वर्ण) स्पृष्ट बताए गए हैं। अब बाह्यप्रयत्न से वर्णविभाग को समझो।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकादि में भी है। पहले स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदान (बाह्यप्रयत्न) के आधार में वर्णों का विभाग होने की बात कही गई थी (श्लो.१०)। उनमें स्वर, काल और स्थान से होने वाले वर्णविभाग बताए गए। स्थान-प्रकरण के बाद उच्चारणगुणदोष-प्रकरण भी आ गया। यहाँ आभ्यन्तर प्रयत्न से होने वाले वर्णविभाग बताए जा रहे हैं। स्थानप्रकरण में ऐकार, औकार, एकार तथा ओकार की द्विस्थानकता को समझाने के लिए उनमें मात्रानिवेशविशेष दिखाया गया और मात्राओं के विवृतत्व-संवृतत्व भी बताए गए थे। इसी सन्दर्भ में प्रसङ्गात् आभ्यन्तर प्रयत्न की भी चर्चा हुई थी। तथापि वहाँ वह विषय अपूर्ण रूप में ही प्रतिपादित हुआ था। यहाँ आभ्यन्तरप्रयत्नकृत प्रायः सभी वर्णविभाग दिखाए गए हैं। इन दो प्रतिपादनों में कुछ विरोध भी है। वहाँ ऊष्मवर्णों को (श ष स ह को) विवृत कहा गया था, यहाँ नेमस्पृष्ट कहा गया है। सूत्रकार पाणिनि के मत में ऊष्मवर्ण विवृत हैं; इस लिए उन्हों ने "नाज्झलौ" सूत्र (अष्टा.१।१।१०) बनाया है। भाष्यकार ऊष्मवर्ण को ईषद्विवृत मानते हैं। उस प्रकरण में ह्रस्व अकार को संवृत और दीर्घ अकारको विवृत बताया गया था (श्लो.२०)। इस प्रकरण में यह बात छूटी है।

व्याकरण में केवल प्रक्रियालाघव के लिए अकार को भी विवृत माना गया है। वास्तव में तो प्रयोगदशा में अकार को संवृत ही कहा गया है। स्वरों को अस्पृष्ट कहने से विवृत कहना और ऊष्मवर्णों को नेमस्पृष्ट कहने से ईषद्विवृत कहना ही उच्चारणप्रक्रियागत वस्तुस्थिति का अधिक अनुकूल है। इस विषय में अधिक विवेचन के इच्छुक पाठक कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के बलाध्याय में प्रयत्न-प्रकरण को विवेचनात्मक दृष्टि से देखें (पृ.५१६-५३७)॥३८॥

[अनुप्रदानम् (बाह्यप्रयत्नाः, स्वरयन्त्रप्रयत्ना वा)]

अमोऽनुनासिका अह्रो नादिनो ह-झषः स्मृताः।
ईषन्नादा यण्-जशस् तु श्वासिनस् तु खफादयः॥३९॥

ईषच्छ्वासाँश् चरो विद्याद् गोर् धामैतत् प्रचक्षते।
दाक्षीपुत्त्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि॥४०॥

अन्वयः— अह्रः अनुनासिकाः अमः ह-झषः नादिनः स्मृताः। यण्-जशः तु ईषन्नादाः (स्मृताः)। खफादयः तु श्वासिनः (स्मृताः)। चरः ईषच्छ्वासान् विद्यात्। एतत् गोः धाम प्रचक्षते। येन इदम् भुवि व्याहृतम् (सः) दाक्षीपुत्त्रः पाणिनेयः (अस्ति)।

शब्दार्थः— अह्रः=हकाररेफवर्जिताः, अनुनासिकाः=मुखनासिकावचना अपि, अमः=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ य व ल ञ म ङ ण न इत्येते वर्णाः, ह-झषः=हकारो झ भ घ ढ धाश् च, नादिनः=नादवन्तः, स्मृताः=स्मृत्याऽवगताः। यण्-जशः= य व र लाः ज ब ग ड दाः, तु= च, ईषन्नादाः= अल्पनादवन्तः, (स्मृताः= स्मृत्याऽवगताः)। खफादयः= ख फ छ ठ थाः, तु= हि, श्वासिनः= श्वासवन्तः, (स्मृताः= स्मृत्याऽवगताः)। चरः= च ट त क प श ष सान्, ईषच्छ्वासान्=अल्पश्वासवतः, विद्यात्= जानीयात्। एतत्=अत्र प्रोक्तं शास्त्रम्, गोः=वाचः, धाम=स्थानम्, प्रचक्षते=कथयन्ति। येन=एतत्कार्यकर्तृत्वेन बुद्धौ

स्थितेन, इदम्= एतत् शास्त्रम्, भुवि= पृथिव्याम्, व्याहृतम्= प्रोक्तम्, (सः= एतत्-कार्यकर्ता), दाक्षीपुत्रः=दाक्षीसुतः, पाणिनेयः=पाणिनिः (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः— हकाररेफवर्जिताः विकल्पेन अनुनासिका नित्यमनुनासिकाश् च अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ य व ल ञ म ङ ण नाः, हकारः, झ भ घ ढ धाश् च नादवन्तः स्मृताः, य व र लाः ज ब ग ड दाश्च अल्पनादवन्तः स्मृताः, ख फ छ ठ थास्तु श्वासवन्तः स्मृताः। च ट त क प श ष सान् ईषच्छ्वासान् जानीयात्। सुधियः एतत् शास्त्रं वाचः स्थानं वदन्ति। येन इदं शास्त्रं भुवि प्रोक्तं स दाक्षीपुत्रः पाणिनिः अस्ति।

विशेषः— एते पद्ये पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां याजुषपाठे चोपात्ते। अत्र के चन **"यमोऽनुनासिकाः"** इति पाठं मन्यन्ते। युगलकिशोरपाठकसम्पादिते शिक्षासङ्ग्रहेऽयम् पाठ उपात्तः। अन्ये **"ञमोऽनुनासिकाः"** इति पाठं मन्यन्ते। अयं पाठो रुद्रप्रतापावस्थिप्रभृतिभिः परिगृहीतः। अयं पाठः पञ्जिकायामपि मुख्यपाठत्वेन गृहीतः। किन्तु पञ्जिकायाम् **"अमोऽनुनासिकाः"** इति पाठोऽपि पाठान्तरत्वेन परिगृहीतो व्याख्यातश् च। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां तु **"अमोऽनुनासिकाः"** इत्येव पाठ उपात्तः। लघुशब्देन्दुशेखरे बृहच्छब्देन्दुशेखरे च नागोजिभट्टेनाऽपि अयमेव पाठो गृहीतो दृश्यते। **नारायणदत्तत्रिपाठिना कालीप्रसादमिश्रेण गुरुप्रसादशास्त्रिणाऽपि** अयमेव पाठोऽनुसृतः। यद्यपि बहुभिः शिक्षाकारैर् व्यञ्जनेष्वेव बाह्यप्रयत्न उल्लिखितस् तथाऽपि कैश्चित् स्वरेष्वपि स उक्त एव; छान्दोग्यश्रुतिसम्मतश् चाऽयं विषयः (छा.उ.२।२२।५), पाणिनीयव्याकरणभाष्यकारेणाऽपि स्वीकृतश् च (द्र.– पा.व्या.भा.७।१।३९)। तद्विवरणं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां बलाध्याये वर्णविशेषाणां स्वरयन्त्रजयत्नस्य निरूपणे प्रस्तुतं द्रष्टव्यम् (पृ.५२१-५२३)। **"अमोऽनुनासिकाः"** इति पाठे च स्वराणामपि बाह्यप्रयत्नः सङ्गृहीतो भवति। अनेन वचनेन अनुनासिका अननुनासिकाश्च स्वरा नादवन्त इत्यपि उक्तं भवति। **"ञमोऽनुनासिका न ह्रौ"** इति पाठे **"न ह्रौ"** इति कथनं सुसङ्गतं न भवतीति च बोध्यम्, शषसानामपि सर्वथाऽननुनासिकानां सत्त्वात्। अत्र नादग्रहणेन संवारघोषावपि उपलक्षितौ

भवतः। एवं च स्वरादयः संवार-नाद-घोषवन्तो ज्ञेयाः। एवं श्वासग्रहणेन विवारा-ऽघोषावपि उपलक्षितौ भवतः। एवं च खफादयो विवार-श्वासा-ऽघोष-प्रयत्नका ज्ञेयाः। संवारादिरूपं च **"गलबिलस्य विवृतत्वाद् विवारः, संवृतत्वात् संवारो जायते, तौ संवारविवारौ, तत्र यदा कण्ठबिलं संवृतं भवति तदा नादो जायते, विवृते कण्ठबिले श्वासो जायते, तौ श्वासनादावनुप्रदानमित्याचक्षते, अन्ये तु ब्रुवतेऽनुप्रदानमनुस्वानो घण्टानिर्ह्रादवत्, तत्र यदा स्थानाभिघातजे ध्वनौ नादोऽनुप्रदीयते तदा नादध्वनिसंसर्गाद् घोषो जायते, यदा श्वासोऽनुप्रदीयते तदा श्वासध्वनिसंसर्गादघोषः, सा घोषवदघोषता"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे प्रतिपादितमाधुनिकभाषाविज्ञानेनाऽपि समर्थितमवगन्तव्यम्। एतद्विषयेऽधिकतरं ज्ञानमिच्छद्भिः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां बलाध्याये स्वरयन्त्रजप्रयत्नभेदप्रतिपादनप्रकरणम् (पृ.५१६–५१८), वर्णाध्याये वर्णोत्पत्तिशारीरप्रकरणं च (पृ.१६८–१७४) द्रष्टव्यम्। **"ईषन्नादा यणश् चैव"** इति लघुशब्देन्दुशेखरे **नागोजिभट्टः**। केचन **"यणो जश्च"** इति पठन्ति। अन्ये पुनः **"यण् जशः"** इति च्छन्दोभङ्गेन पठन्ति। **"यण् जशस्तु"** इति पञ्जिकासम्मतः पाठः। **"दाक्षीपुत्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि"** इति याजुषपाठानुकूलः पाठः। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायामपि "पाणिनेय इति पाठे शुभ्रादित्वं कल्प्यम्" इत्युक्तम्। अन्ये तु **"दाक्षीपुत्रपाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि"** इति पठन्ति। तत्पक्षे वाक्ययोजना दुष्करा। गुरुणाऽध्याहारेणैव वाक्ययोजना कर्तुं शक्या। अत्र शिक्षावाक्ये नादीषन्नादभेदः श्वासीषच्छ्वासभेदश् च सूक्ष्मेक्षिकया कृतोऽवगम्यते। **"अमोऽनुनासिका अह्लः"** इति वचनाद् यवलानां नादित्वे प्रोक्तेऽपि तदपवादतया यणः (य व र लाः) ईषन्नादा वक्तुं शक्या एव प्रतीयन्ते।

हिन्दी– हकार और रेफको छोडकर (विकल्प से) अनुनासिक (तथा नित्य अनुनासिक) अम् प्रत्याहार के (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ य व ल ञ म ङ ण न) वर्ण, हकार और झ भ घ ढ ध नाद वाले वर्ण माने गए हैं। यण् (य व र ल) और जश् (ज ब ग ड द) अल्पनाद वाले वर्ण माने गए हैं। ख फ छ ठ थ श्वास वाले वर्ण माने गए हैं। चर् (च ट त क

प श ष स) वर्णों को अल्पश्वास वाले जाने। इस शास्त्र को वाणी का स्थान कहते हैं। जिन्होंने इस शास्त्र का लोक में प्रवचन किया वे दाक्षी के पुत्र आचार्य पाणिनि हैं।

विशेष– ये पद्य पञ्जिकादि में भी हैं। यहाँ कोई **"यमोऽनुनासिकाः"** पढते हैं, कोई **"ञमोऽनुनासिकाः"** पढते हैं, कोई **"अमोऽनुनासिकाः"** पढते हैं। इन पाठों में **"अमोऽनुनासिकाः"** यह पाठ अधिक सङ्गत दिखाई देता है। इस पाठ में स्वरों का भी बाह्य प्रयत्न यहाँ सङ्गृहीत हो जाता है। स्वरों का बाह्य प्रयत्न छान्दोग्योपनिषद् में भी सूचित है (द्र.- छा.उ.२।२२।५) और पाणिनीयव्याकरणभाष्य में भी स्वीकृत है (द्र.- पा.व्या.भा.७।१।३९)। इस बात का विशेष विवरण कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में द्रष्टव्य है (पृ.५२१-५२३)। स्वरों का प्रयत्न यहाँ नाद कहा गया है। नाद कहने से संवार और घोष भी उपलक्षित होते हैं। इस से स्वरों का बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष हुए। इसी प्रकार श्वास कहने से विवार और अघोष भी उपलक्षित होते हैं। इस से ख-फादि के बाह्य प्रयत्न विवार श्वास अघोष हुए। संवारादि क्या हैं इस विषय को आपिशलीयशिक्षासूत्र में स्पष्ट किया गया है, जो आधुनिक ध्वनिविज्ञान से भी समर्थित है। आपिशलीयशिक्षा-सूत्र का सम्बद्ध वचन ऊपर संस्कृतव्याख्या में दिया गया है। इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में दिए गए पाणिनीयशिक्षासूत्र में भी नाभितलप्रकरण में यह विषय देखा जा सकता है। इस विषय में अधिक विवरण के इच्छुक पाठक संस्कृत में कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में वर्णाध्याय के वर्णोत्पत्तिशारीर प्रकरण को (पृ.१६८-१७४) और बलाध्याय के स्वरयन्त्रजप्रयत्नभेद-प्रतिपादनप्रकरण को (पृ.५१६-५१८) देखें। **"दाक्षीपुत्त्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि"** यह पाठ याजुष पाठ का अनुकूल है, और शिक्षाप्रकाश-व्याख्या में भी स्वीकृत मालूम पडता है। यहाँ पाणिनि को 'पाणिनेय' कहा गया है। पाणिनि दाक्षी के पुत्त्र हैं। अतः दाक्षीपुत्त्र कहा गया है। पाणिनि मुनि के सङ्क्षिप्त परिचय के लिए इसी ग्रन्थ की भूमिका में 'पाणिनि मुनि का सङ्क्षिप्त परिचय' नाम का प्रकरण देखें॥३९-४०॥

वर्णपटल

<table>
<tr><td rowspan="2">स्वर</td><td>समानाक्षर</td><td colspan="7">अ आ अ३ इ ई इ३ उ ऊ उ३ ऋ ॠ ऋ३ ऌ ॡ ऌ३</td><td rowspan="2">घोषवान्</td></tr>
<tr><td>सन्ध्यक्षर</td><td colspan="7">ए ऐ ओ औ</td></tr>
<tr><td rowspan="12">व्यञ्जन</td><td>अयोगवाह</td><td colspan="8">अं अः :क :प हुँ (हँ)
कुँ (कँ् चँ् टँ् तँ् पँ्) खुँ (खँ् छँ् ठँ् थँ् फँ्)
गुँ (गँ् जँ् डँ् दँ् बँ्) घुँ (घँ् झँ् ढँ् धँ् भँ्)</td></tr>
<tr><td rowspan="11">योगवाह</td><td colspan="2" rowspan="2"></td><td colspan="2">अघोष</td><td colspan="3">घोषवान्</td><td>स्थान</td></tr>
<tr><td>अल्पप्राण</td><td>महाप्राण</td><td>अल्पप्राण</td><td>महाप्राण</td><td>अल्पप्राण</td><td></td></tr>
<tr><td rowspan="5">स्पर्श</td><td>कवर्ग</td><td>क</td><td>ख</td><td>ग</td><td>घ</td><td>ङ</td><td>जिह्वामूल♦ / कण्ठ●</td></tr>
<tr><td>चवर्ग</td><td>च</td><td>छ</td><td>ज</td><td>झ</td><td>ञ</td><td>तालु</td></tr>
<tr><td>टवर्ग</td><td>ट</td><td>ठ</td><td>ड</td><td>ढ</td><td>ण</td><td>मूर्धा</td></tr>
<tr><td>तवर्ग</td><td>त</td><td>थ</td><td>द</td><td>ध</td><td>न</td><td>दन्त</td></tr>
<tr><td>पवर्ग</td><td>प</td><td>फ</td><td>ब</td><td>भ</td><td>म</td><td>ओष्ठ</td></tr>
<tr><td colspan="2">अन्तस्था अल्पप्राण</td><td colspan="2">य
(तालव्य)</td><td colspan="2">र
(मूर्धन्य)</td><td>ल
(दन्त्य)</td><td>व
(दन्तोष्ठ्य)</td></tr>
<tr><td colspan="2">ऊष्मा महाप्राण</td><td colspan="2">श
(तालव्य)</td><td colspan="2">ष
(मूर्धन्य)</td><td>स
(दन्त्य)</td><td>ह
(कण्ठ्य)</td></tr>
<tr><td colspan="3">लिपिविशेष</td><td colspan="2">ख
(ज)</td><td colspan="2">क्ष
(क्ष)</td><td>ज्ञ
(ज्ञ)</td><td>त्र
(त्र)</td></tr>
</table>

♦ जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः ।—पा.शि.श्लो.१८।

● अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ।—पा.शि.सू.१।२।

स्थानपरिचय के लिए सहायक चित्र

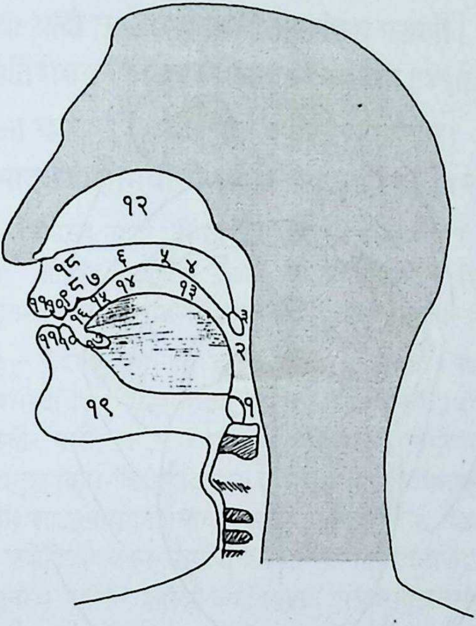

१–२. कण्ठ
३. काकलक
४. कोमलतालु
५. मूर्धा
६. तालु
७. बर्स्व (वर्त्स)
८. दन्तवेष्ट
९. दन्तमूल
१०. दन्त
११. ओष्ठ
१२. नासासुरङ्गा
१३. जिह्वामूल
१४. जिह्वामध्य
१५. जिह्वोपाग्र
१६. जिह्वाग्र
१७. मूर्धन्य श्रुति के उच्चारण के समय मूर्धा में छूने वाली जिह्वा का उलटा भाग
१८. ऊर्ध्वहनु
१९. अधोहनु

करणपरिचय के लिए सहायक चित्र

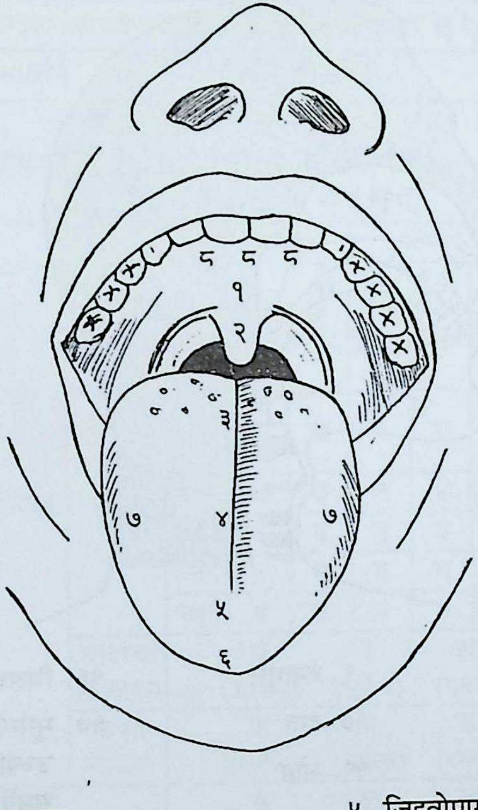

१. कोमलतालु
२. काकलक
३. जिह्वामूल
४. जिह्वामध्य
५. जिह्वोपाग्र
६. जिह्वाग्र
७. जिह्वाप्रान्त
८. दन्ताग्र

[वेदपुरुषाङ्गपरिचयः, साङ्गवेदाध्ययनमाहात्म्यं च]

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर् निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥४२॥

अन्वयः— वेदस्य पादौ तु छन्दः, अथ हस्तौ कल्पः पठ्यते, चक्षुः ज्योतिषामयनम्, श्रोत्रम् निरुक्तम् उच्यते, वेदस्य घ्राणम् तु शिक्षा, मुखम् व्याकरणम् स्मृतम्, तस्मात् साङ्गम् एव (वेदम्) अधीत्य ब्रह्मलोके महीयते।

शब्दार्थः— वेदस्य= आम्नायस्य, पादौ= चरणौ, छन्दः= पाठ्यवस्तुगत-स्वरपरिमाणावच्छेदविशेषनियमबोधकं शास्त्रम् पिङ्गलादिप्रणीतम्, अथ= अनन्तरम्, हस्तौ= करौ, कल्पः= शाखान्तरस्थोपसंहरणीयगुणोपसंहारपूर्वकं श्रौतगृह्य-यज्ञाद्यनुष्ठानक्रम-विशेषादिकस्य ब्राह्मणग्रन्थगतविधिवाक्याद्यनुसारेण कल्पकं शास्त्रम् शाङ्खायनकात्यायनलाट्यायनादिप्रणीतम्, पठ्यते=उच्यते, चक्षुः=नयनम्, ज्योतिषामयनम्=सूर्यादीनां ज्योतिषां गतेर् विज्ञानेन कालानुपूर्व-यज्ञानुविधानज्ञानस्य साधनं शास्त्रं ज्योतिषाख्यं पञ्चसंवत्सरमयमित्यादिकं लगधादिप्रोक्तम्[1], श्रोत्रम्= श्रवणम्, निरुक्तम्=व्याकरणेन व्याकर्तुमशक्यस्य

---

१. लगधप्रोक्त **'पञ्चसंवत्सरमयम्'** इत्यादि ३४०० वर्ष प्राचीन माने गए और दृक्सिद्ध अयनों के और पूर्णिमा-अमावास्याओं के मुख्य आधार में यज्ञकाल का निरूपण करने वाले वेदाङ्गज्योतिष के और महान् असुर मयद्वारा प्रचारित तथा यवन-कालविचार से (ग्रीककालविचार से) प्रभावित और १५०० वर्ष प्राचीन माने गए तथा वेद-वेदाङ्गों में अनुल्लिखित आयातित मेष-वृषादि निरयण राशियों को और वेद-स्मृति-पुराणोक्त कृत्तिकादि नक्षत्रप्रणाली को छोडकर अश्विन्यादि नक्षत्र प्रणाली को लेकर चलने वाले तथा अनेक अवैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रचलित सूर्यसिद्धान्त इत्यादि अर्वाचीन ज्योतिषग्रन्थों के

पदपदार्थसम्बन्धस्य निरूपणाय सिद्धान्तरूपाणां नियमानां प्रतिपादकं तेषां प्रयोगाणां प्रदर्शकं देवतावाचकपदपदार्थसम्बन्धस्य निरूपकं वैदिकदेवविद्यारूपं च शास्त्रं यास्कप्रणीतम्, उच्यते= कथ्यते, वेदस्य= आम्नायस्य, घ्राणम्= नासिका, तु= हि, **शिक्षा**= वर्ण-स्वर-मात्रा-स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानरूपबल-साम-सन्तानादिप्रतिपादकं शास्त्रम् प्रातिशाख्यादिरूपं शौनकादिप्रणीतम्, मुखम्= लपनम् (आस्यम्), **व्याकरणम्**= वाक्यतदर्थसम्बन्धज्ञानस्य स्फुटप्रकृतिप्रत्ययादिकल्पनपूर्वकैः पदतदर्थसम्बन्धज्ञापनादिभिरुपकारकं शास्त्रं शब्दानुशासनापरपर्यायं शाकटायनादिप्रणीतम्, स्मृतम्= स्मृत्याऽवगतम्, तस्मात्= ततः, साङ्गम्= अङ्गैः सहितम्, एव= हि, (वेदम्= आम्नायम्), अधीत्य= पठित्वा, ब्रह्मलोके= परमेष्ठिभुवने (ब्राह्मणसमाजे वा), महीयते= पूज्यते।

सरलार्थः— वेदस्य पादौ छन्दःशास्त्रम् उच्यते, वेदस्य हस्तौ कल्पशास्त्रं कथ्यते, वेदस्य चक्षुः ज्योतिषम् उच्यते, वेदस्य श्रोत्रं निरुक्तशास्त्रं निगद्यते, वेदस्य नासिका शिक्षा उच्यते, वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमेव वेदमधीत्य अध्येता ब्रह्मलोके पूज्यते।

विशेषः— चत्वारिंशपद्यपर्यन्तेन ग्रन्थेन वर्णाः, तेषां स्वरतः कालतः स्थानात् आभ्यन्तरप्रयत्नाद् बाह्यप्रयत्नाच्च कृता विभागाश्च कतिपयैः प्रसक्तानुप्रसक्तविषयैः सह प्रतिपादिता इति समाप्तो मुख्यः शिक्षाग्रन्थः। छन्दःपादौ-

---

मतों में महान् भेद होने से वैदिक धर्म में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की ही विशेष माननीयता सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय की अनुसन्धानपत्रिका सारस्वती सुषमा में (५० वर्ष, ३-४ अङ्क, मार्गशीर्ष-फाल्गुनपूर्णिमा, २०५२, पृ.२४९-२६४) प्रकाशित 'वेदाङ्गज्योतिषं युगवर्षायनर्तुमासाधिमासादिगणना च' नाम के प्रस्तुतव्याख्याकारकृत निबन्ध में और प्रस्तुत व्याख्याकार के ही कौण्डिन्न्यायनव्याख्यानयुक्त वेदाङ्गज्योतिष (२००५ क्रै.) की भूमिका में तथा **भारतवर्षीय ज्योतिष के ज्वलन्त प्रश्न और वेदाङ्गज्योतिष** नाम के ग्रन्थ में भी दिखाई गई है। अतः वेदाङ्गशिक्षा के प्रसङ्ग में वेदाङ्गज्योतिष के रूप में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का उल्लेख ही विशेष आदरणीय है।

त्वित्यादिकस्तु शिक्षामाहात्म्यादिपरिशिष्टविषयप्रतिपादकः खिलग्रन्थः प्रतीयते। तत्र च शिक्षादिवेदाङ्गमाहात्म्यम्, हस्तस्वरप्रक्रिया, पदे स्वरस्थितिः, मात्राकालस्पष्टीकरणम्, सुसम्प्रदायप्रशंसा-कुसम्प्रदायनिन्देत्यादिका विषया वर्णिताः। छन्दःपादौत्वित्यादिकौ श्लोकौ शौनकीयचरणव्यूहसूत्रे, कात्यायनचरणव्यूहसूत्रे च यजुर्वेदखण्डे पठ्येते। एतौ श्लोकावत्र तत एव सङ्गृह्याऽऽहृतौ प्रतीयेते। शैशिरीयशिक्षायां तु– **"छन्दः पादौ ज्योतिषं नेत्रयुग्मं हस्तौ कल्पः श्रोत्रयुग्मं निरुक्तम्। शिक्षा घ्राणं व्याकरणं तथाऽऽस्यं वेदाऽऽत्मने विष्णवेऽस्मै नमोऽस्तु॥ विष्णुं षडङ्गेन्द्रियमादिदेवं वेदात्मानं पुरुषं विश्वरूपम्। सञ्चिन्त्य देवं पठते द्विजो यः स याति विष्णोः परमं पदं तत्"** इति प्रोक्तम् (श्लो.१६५-१६६)।

वेद-स्वरूपा-ऽर्थ-प्रयोग-रहस्य-ज्ञानाय चोक्तानि वेदाङ्गानि वेदोपाङ्गानि चाऽऽवश्यकानि। अत एव तेषामपि ब्रह्मयज्ञेऽध्ययनं भवति। अत एव तेषामपि धर्मे मोक्षे च अन्यस्मृतिपुराणाद्यपेक्षयाऽधिकतरं प्रामाण्यं भवति। तानि वेदाङ्गानि वेदोपाङ्गानि च मुख्यानि शिक्षादीनि सन्ति। तत्र शिक्षादीनां वेदाङ्गानां स्वरूपं प्रयोजनं चाऽधोलिखितं विशेषेण ज्ञेयमस्ति। तत्र–

(१) शिक्षा नाम वर्ण-स्वर-मात्रा-स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानरूपबल-सामसन्तानादिप्रतिपादकं शास्त्रम्। तत्र च मुख्यरूपेण तत्तच्छाखासम्बद्धाः प्रातिशाख्यग्रन्था गृह्यन्ते। अन्येऽपि शौनकशिक्षा-शैशिरीयशिक्षा-पाणिनीयशिक्षा-याज्ञवल्क्यशिक्षा–व्यासशिक्षा–नारदीयशिक्षा–माण्डूकीयशिक्षादयोऽपि ग्रन्थाः शिक्षाशास्त्रग्रन्था एव।

(२) कल्पो नाम शाखान्तरस्थोपसंहरणीयगुणोपसंहारपूर्वकं श्रौत-स्मार्तयज्ञाद्यनुष्ठानक्रमविशेषादिकस्य ब्राह्मणग्रन्थगतविधिवाक्याद्यनुसारेण कल्पकं शास्त्रमस्ति। कल्पशास्त्रे च तत्तच्छाखासम्बद्धाः श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-श्रौतगृह्यपरिशिष्टादयो ग्रन्था अन्तर्भवन्ति।

(३) व्याकरणं नाम वाक्यतदर्थसम्बन्धज्ञानस्य स्फुटप्रकृतिप्रत्ययादिकल्पनपूर्वकैः पदतदर्थसम्बन्धज्ञापनादिभिरुपकारकं शास्त्रं शब्दानुशासना-

परपर्यायम्। एतस्मिन् शास्त्रे चाऽधुना पाणिनिप्रणीतं कात्यायनपरिष्कृतं पतञ्जलिव्याख्यातं व्याकरणं वेदाङ्गतया शिष्टैः परिगृहीतमस्ति।

(४) **निरुक्तं** नाम व्याकरणेन व्याकर्तुमशक्यस्य पदपदार्थसम्बन्धस्य निरूपणाय सिद्धान्तरूपाणां नियमानां प्रतिपादकं तेषां नियमानां प्रयोगाणां प्रदर्शकं वैदिकदेवतावाचकपदपदार्थसम्बन्धस्य निरूपकं वैदिकदेवविद्यारूपं च शास्त्रम्। तत्र चेदानीं पञ्चाध्यायात्मकनिघण्टुसहितं द्वादशाध्यायात्मकमध्यायद्वयात्मकपरिशिष्टसहितं यास्ककृतं निरुक्तं वेदाङ्गतया स्वीक्रियते।

(५) **छन्दश्शास्त्रं** नाम पाठ्यवस्तुगतस्वरपरिमाणावच्छेदविशेषनियमबोधकं शास्त्रम्। तत्र चेदानीं पिङ्गलप्रणीतं छन्दःसूत्रं वेदाङ्गतया परिगृह्यते शिष्टैः।

(६) **ज्योतिषं** नाम सूर्यादीनां ज्योतिषां गतेर् विज्ञानेन कालानुपूर्वयज्ञानुविधानज्ञानस्य साधनं शास्त्रम्। तत्र चेदानीम् आर्चज्योतिषरूपेण याजुषज्योतिषरूपेण च प्रसिद्धः **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादिको लगधप्रोक्तो **वेदाङ्गज्योतिषमिति** व्यवह्रियमाणो ग्रन्थो मुख्यरूपेण वेदाङ्गज्योतिषशास्त्रग्रन्थत्वेन स्वीकृतोऽस्ति।

"प्रतिपदमनुपदं छन्दोभाषा धर्मो मीमांसान्यायस् तर्क इत्युपाङ्गानि" इति चरणव्यूहसूत्रे गणितानामुपाङ्गानां मध्ये **धर्ममीमांसाशास्त्रं ब्रह्ममीमांसाशास्त्रं** च विशेषतो ब्रह्मयज्ञे शिष्टैः समादरेणाऽध्येतव्ये स्वीक्रियेते।

तत्र तत्तच्छाखावेदवर्णस्वराद्युच्चारणविषये तत्तच्छाखाप्रातिशाख्यादयः शिक्षाग्रन्थाः, श्रौतगृह्यकर्मसु तत्तच्छाखाकल्पसूत्ररूपाः श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-श्रौतगृह्यपरिशिष्टग्रन्थाः, सर्वशाखासाधारणेषु व्याकरणसम्बद्धविषयेषु पाणिनीयव्याकरणम्, पद-वाक्य-देवतादिरूपाणां दुरूहवेदार्थसम्बद्धानां विषयाणां प्रतिपादने यास्ककृतं निरुक्तम्, सर्वशाखासाधारणवैदिकच्छन्दसां विषये पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्, अग्न्याधान-दर्शपूर्णमासयाग-चातुर्मास्ययाग-निरूढपशुबन्धयागा-ऽग्निष्टोमसोमयागादीनां श्रौतकर्मणाम् अन्नप्राशनचूडाकरणोपनयन-विवाहादीनां गृह्यकर्मणां च कृते युग-वर्षा-ऽयन-ऋतु-मासा-ऽधिमास-पक्ष-

तिथिरूपाणां कालानां निरूपणे लगधप्रोक्तं पञ्चसंवत्सरमयमित्यादिकं वेदाङ्ग-ज्योतिषम्, वेदकल्पस्मृतिविहितकर्मणां सुसमन्विते सर्वशाखासाधारणे निरूपणे जैमिनीयधर्ममीमांसासूत्रम्, उपनिषदां सुसमन्वितस्याऽर्थस्य निरूपणे बादराय-णीयब्रह्ममीमांसासूत्रं च वैदिकैः प्रमुखप्रमाणतया स्वीक्रियन्ते। उक्तानां ग्रन्थाना-मुक्तेषु विषयेषु प्रमुखप्रमाणतया अस्वीकरणं तु नास्तिकत्वं जैनबौद्धतुल्यतया वैदिकपरम्परायां विद्रोहस्योद्भावनं चैवेति निश्चीयते। एतस्य विषयस्य सम्य-गाकलने दृश्यमानं पुराणानामाधुनिकानां च गुरु-पुरोहित-पण्डितादीनामसामर्थ्यं तु शोच्यमेवाऽस्ति। ब्रह्मयज्ञेऽध्येतव्यानां ग्रन्थानां परिचयस्याऽभावात्, ब्रह्म-यज्ञस्य मुख्यस्य स्वरूपस्याऽज्ञानात्, ब्रह्मयज्ञस्याऽकरणात्, पाश्चात्त्यप्रवर्तित-संस्कृतशिक्षाप्रणाल्या अनुसरणात्, आर्षवेदवेदाङ्गशिक्षाप्रणाल्या विलोपनाच् च आधुनिका निकटभूतकालस्थाश् च लोके ख्यातिं गता महान्तो विद्वांसः पण्डिताश् चाऽपि तादृशे शोच्यभावे प्राप्ता अवगम्यन्ते। एतादृशी स्थितिश् च कलेः प्रारम्भात् प्रभृत्येव शनैःशनैर् वर्धमाना, भारतवर्षे मुसलबाणानां राज्यस्य प्रारम्भात् प्रभृति तु भृशं वृद्धा, निकटभूतकाले प्रारब्धात् पाश्चात्त्यशिक्षा-संस्कृतीनामत्यधिकात् प्रचारात् प्रभृति तु चरमोत्कर्षं प्राप्ता प्रतीयते। अतश् च विद्वद्भिः सावधानैर् भाव्यम्, तादृश्याः स्थितेरपाकरणाय प्रयतनीयं च।

वेदाङ्गेषु च मुख्यतया शिक्षाकल्पयोः स्वशाखावेदमन्त्र-ब्राह्मणा-नुगामिनोर् अध्ययन-धर्मकृत्यप्रयोगादिषु विशिष्टं स्थानं भवति। धर्मकृत्यप्रयोगः स्वशाखानुसारमेव कर्तव्यः तत्राऽधोऽलिखितं कातीयमन्त्रभ्रान्तिहरसूत्रवचनं सम्यगाकलनीयं वर्तते च—

अनाद्यनन्ता वै वेदा बह्वाचारप्रदर्शकाः।
वेदविद्भिरतः कल्पाः प्रोक्तास् तत्त्वप्रदर्शकाः॥
सर्वे स्ववेदकल्पोक्तं कर्म कुर्युरतन्द्रिताः।
मन्त्रद्रव्यादिषु स्वत्वादधिकारोऽन्यथा न हि॥
ज्ञानतः सर्ववेदेषु स्वकल्पेष्वधिकारिणः।
प्रामाण्यमादौ ज्ञात्वैव श्रुतिकल्पस्मृतीषु च॥

बलाबलं च तत्राऽपि विरोधात् स्वत्वदर्शनात्।
वेदाः प्रमाणमङ्गानि परिशिष्टाः ससाधनाः॥
स्मृतयश्च पुराणानि तेषां स्वत्वे विशेषतः।
श्रुत्योर् विरोधे स्वत्वादौ स्वश्रुतिश् च बलीयसी॥
मन्त्रचोदनयोर् मन्त्रः प्रयोगित्वाद् बलं यतः।
श्रुतिकल्पविरोधे तु श्रुतिर् वै कल्पसाधनात्॥
विरोधे कल्पकल्पयोः स्वकल्पः स्वश्रुतिक्रमात्।
कल्पस्मृतिनिरोधे तु कल्प एव प्रयोगितः॥
स्मृत्योर् विरोधे सम्प्राप्ते स्वस्मृतिः कल्पसाधनात्।
स्मृतिर् बलीयसी ज्ञेया द्वैधे स्मृतिपुराणयोः॥
स्मृतीनां श्रुतिमूलत्वात् पुराणं स्मृतिसाधनम्।
एवं बलाबलं ज्ञात्वा श्रुतिकल्पस्मृतीषु च॥
कर्माणि फलयुक्तानि कुर्युः कर्मविदोऽनिशम्।
ज्ञात्वा कर्माणि यः कुर्यात् साङ्गानि विधिपूर्वकम्॥
फलं ब्रह्मार्पणं कृत्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति।

—इति मन्त्रभ्रान्तिहरसूत्रे, श्लो.९९–१०९।

एवं च वेद-वेदाङ्गसम्बन्धविशेषः सम्यगाकलनीयो विद्वद्भिः।

प्रसिद्धवेदाङ्गक्रमानुसारं त्वेतयोः पाणिनीयशिक्षाश्लोकयोः पाठ एवं प्रतिसंस्करणीयो दृश्यते—

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ *कल्पस्* तु पठ्यते।
मुखं *व्याकरणं* प्रोक्तं *निरुक्तं* श्रोत्रमुच्यते॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य *ज्योतिषं* चक्षुरिष्यते।
वेदं साङ्गमधीत्याऽतो ब्रह्मलोके महीयते॥ इति।

हिन्दी-- वेदपुरुष का चरणद्वय छन्दःशास्त्र कहा जाता है, और हस्तद्वय कल्पशास्त्र कहा जाता है, नेत्रद्वय ज्योतिषशास्त्र और कर्णद्वय निरुक्तशास्त्र कहा जाता है। वेदपुरुष का नाक शिक्षाशास्त्र कहा जाता है, मुख व्याकरणशास्त्र माना जाता है। इस हेतु छहों अङ्गों से सहित वेद को पढकर ही पढने वाला ब्रह्मलोक में (अथवा ब्राह्मणसमाज में) पूजित होता है।

विशेष-- चालीसवें पद्य तक के ग्रन्थ में शिक्षा के मुख्य विषय समाप्त हो गए। "छन्दः पादौ तु वेदस्य" इत्यादि ग्रन्थ परिशिष्ट रूप का है। "छन्दः पादौ तु" इत्यादि दो पद्य शौनकीय चरणव्यूह में और कात्यायनचरणव्यूह में भी पाए जाते हैं। सम्भवतः ये पद्य वहीं से सङ्गृहीत हैं। यह विषय शैशिरीयशिक्षा में भी आया है। छन्दश्शास्त्र कल्पशास्त्र इत्यादि छहों अङ्गशास्त्रों के लक्षण संस्कृत में ऊपर शब्दार्थ दिखाते समय दिए गए हैं।

वेदाङ्गों में शिक्षा का लक्षण भूमिका में हिन्दी में (पृ.१४-१५) विस्तृत रूप में बताया गया है। श्रौत और गृह्य कर्मों की पद्धति बताने वाला शास्त्र कल्प कहा जाता है। वाक्य के और उसके अर्थ के सम्बन्ध को समझाने के लिए प्रकृति-प्रत्ययादि की कल्पना करके पद के और उसके अर्थ के सम्बन्ध को दिखाकर उपकार करने वाला शास्त्र व्याकरण कहा जाता है। व्याकरण से नहीं दिखाए जा सकने वाले पदपदार्थसम्बन्ध को कुछ सिद्धान्तसूत्रों के आधार में दिखाने वाला और वैदिक देवतावाचक पदों का अर्थ स्पष्ट करने वाला शास्त्र निरुक्त कहा जाता है। पाठ्यवस्तु-विशेषगत स्वरपरिमाणविशेष की व्यवस्था बताने वाला शास्त्र छन्द अथवा छन्दश्शास्त्र कहा जाता है। सूर्य, चन्द्र इत्यादि ज्योतियों की गति के आधार में कालानुसारी यज्ञों के विधान के अनुविधान में उपयोगी शास्त्र ज्योतिष कहा जाता है। इस शास्त्र का मूलग्रन्थ लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष है (द्र.- पृ.१४३ की टिप्पणी)॥४१-४२॥

[हस्तकार्यस्वरनिर्देशप्रकारः]

उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा।
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव॥४३॥

अन्वयः— अङ्गुलीनाम् वृषः प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा (सन्) उदात्तम् आख्याति, उपान्तमध्ये (निविष्टमूर्धा सन्) स्वरितम् धृतम् च (क्रमेण आख्याति), कनिष्ठिकायाम् (निविष्टमूर्धा सन्) अनुदात्तम् एव (आख्याति)।

शब्दार्थः— अङ्गुलीनाम्= करशाखानाम्, वृषः= पुमान् (अङ्गुष्ठः), प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा= तर्जनीमूलस्थापितशिरस्कः, (सन्= भवन्), उदात्तम्= उच्चस्वरम्, आख्याति= सङ्केतयति, उपान्तमध्ये= उपान्त्यायाम् मध्यायां च (निविष्टमूर्धा=स्थापितशिरस्कः, सन्= भवन्, स्वरितम्=स्वारम्, धृतम्=प्रचयम्, च= अपि, (क्रमेण= यथाक्रमम्, आख्याति= सङ्केतयति), कनिष्ठिकायाम्= कनीयस्यामङ्गुल्याम्, (निविष्टमूर्धा= स्थापितशिरस्कः, सन्= भवन्), अनुदात्तम्=नीचम्, एव=हि, (आख्याति=सङ्केतयति)।

सरलार्थः— अङ्गुष्ठः तर्जनीमूलस्थापिताग्रः सन् उदात्तं स्वरं सूचयति, उपान्त्याङ्गुलिमूलस्थापिताग्रः (अनामिकामूलस्थापिताग्रः) सन् स्वरितं स्वरं सूचयति, मध्यमाङ्गुलिमूलस्थापिताग्रः सन् प्रचयं स्वरं सूचयति, कनिष्ठिकामूलस्थापिताग्रः सन् अनुदात्तं स्वरं सूचयति।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। एतत् पद्यं कतमस्या वेदशाखाया हस्तेन कार्यं स्वरसङ्केतं प्रतिपादयतीति विचार्यमस्ति। पण्डितो रुद्रप्रतापोऽवस्थी पण्डितो गुरुप्रसादशास्त्री चाऽत्र सामवेदस्य स्वराणां विधिमाहतुः। नारदीयशिक्षायामङ्गुलीनां मध्यपर्वणः स्पर्शस्य विधानादत्र च मूलस्य स्पर्शनस्य विधानादेतत् पद्यं सामवेदस्वरसङ्केतप्रकारस्य प्रतिपादकं नेति प्रतीयते। ऋग्वेदीयत्वेन निश्चितायां *शैशिरीयशिक्षायामपि* **"उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा। अन्त्ये च मध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव"** इति पठ्यते (श्लो.८३)। अतः एतत् पद्यम् ऋग्वेदहस्तस्वरप्रक्रियां

वर्णयतीति ज्ञायते। ऋग्वेदहस्तस्वरप्रक्रियाविषयेऽधिकं विवरणं *कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां* द्रष्टव्यम् (पृ.४०३-४०५)। एषा हस्तस्वरप्रक्रिया तैत्तिरीयशाखाहस्तस्वरप्रक्रिययाऽपि संवदति। तथा हि तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदशाखाया *व्यासशिक्षायां शम्भुशिक्षायां कौहलीयशिक्षायां सर्वसम्मतशिक्षायां* चैतस्यार्थस्य प्रतिपादकानि वचनानि प्राप्यन्ते, तैः सहाऽस्य वचनस्य संवादोऽप्यस्तीति तैत्तिरीयशाखास्वरसङ्केतप्रकारप्रतिपादकं वैतद् वचनं प्रतीयते। तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदशाखाशिक्षासु प्रयुक्तस्य धृतशब्दस्याऽत्र प्रयोगोऽपीममेव पक्षमुपोद्बलयति। तथाहि *व्यासशिक्षायाम्*– **"कनिष्ठा-ऽनामिका-मध्या-तर्जनीषूत्तमे करे। नीचस्वारधृतोदात्तानङ्गुष्ठाग्रेण निर्दिशेत्"** इति (सू.३२६-३२७)। *शम्भुशिक्षायां* च– **"कनिष्ठिकाऽनामिका च मध्यमा च प्रदेशिनी। नीचस्वारधृतोदात्तानङ्गुष्ठाग्रेण दर्शयेत्"** इति (श्लो.३५)। *कौहलीयशिक्षायां* च– **"कनिष्ठिकाऽनामिका च मध्यमा च प्रदेशिनी। नीचस्वारधृतोदात्तानङ्गुष्ठाग्रेण निर्दिशेत्"** इति (श्लो.३८)। *सर्वसम्मतशिक्षायां* च– **"कनिष्ठा-ऽनामिका-मध्या-तर्जनी-मध्यपर्वसु। नीचस्वारधृतोदात्तान् क्रमेणैव विनिर्दिशेत्"** इति [श्लो.१२२ (३।१०९)]। एतासु शिक्षासु अङ्गुलिपर्वणां विषये किञ्चिद् विगानमिव प्रतीयते। तथापि मूलरूपेण प्रक्रिया समानैव दृश्यते। याजुषे पाठे एतत् पद्यं नोपात्तमिति तु चिन्त्यमस्ति। एतस्मिन् पद्ये धृतमिति पाठं टिप्पण्यां निक्षिप्याऽपि तमेव पाठं साधीयांसमुक्त्वा मूले द्रुतमिति पाठो बेचनरामत्रिपाठि-कनकलालशर्ममैथिलाभ्यां प्रदर्शितः। तथापि शिक्षासङ्ग्रहे सिद्धान्तकौमुदीपरिशिष्टेषु, शिक्षादिवेदषडङ्गेषु च धृतमित्येव पाठो दृश्यते। तत्र धृतशब्दस्याऽर्थमबुद्ध्वा पण्डितनारायणदत्त-(नृसिंह)त्रिपाठिना पण्डितरुद्रप्रतापावस्थिना च द्रुतमिति असमुचितः पाठः परिगृहीतः। स एव च गुरुप्रसादशास्त्रिणा तद्गतानुगतिकैरन्यैश् चाऽनुसृतः। नारायणदत्त-(नृसिंह)-त्रिपाठिना **"धृतमिति पाठे धृतियुक्तं विलम्बितमिति यावत्"** इति चोक्तम्। धृतं चेति पाठं स्वीकृत्याऽपि तदर्थमबुद्ध्वा पण्डितकालीप्रसादमिश्रेण **"कनिष्ठिकायां धृतोऽनुदात्तमाख्याति"** इति सर्वथाऽसङ्गतोऽर्थः कृतः। **पथ्या स्वस्तिरित्याख्ये** ग्रन्थे (पृ.४०) राजस्थानराजपण्डितो महामहोपाध्यायोऽनेकविलक्षणग्रन्थकर्ता वेदव्याख्याप्रवणो

मधुसूदन ओझा मैथिलो विद्यावाचस्पतिरपि धृतशब्दार्थानवबोधादेव उदात्तमाख्यातीत्यादिके पाणिनीयशिक्षापद्ये प्रचयस्याऽनुल्लेखं मन्यते स्म। सोऽयमबोधो वैदिकशिक्षाशास्त्रानुशीलनमान्द्यादेवाऽऽगतोऽवगम्यते। धृतशब्दस्य प्रचयपर्यायत्वं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां तैत्तिरीयप्रातिशाख्य-व्यासशिक्षादिषु प्रामाणिकप्रयोगानुपलभ्य स्फुटतया प्रतिपादितः। तथा हि– **"अनुदात्तोदात्तयत्नाऽऽमिश्श्रणोच्चारणस् तथा। उच्चनीचान्तरालस्थः स्वरो हि प्रचयः स्मृतः॥ स प्रचः प्रचितो वाऽपि निचितो वा धृतोऽपि वा। एकश्श्रुतिर् वा तानो वा तथोदात्तमयोऽपि वा। एकस्वरो वाऽपि धृतप्रचयो वाऽप्युदात्तकः। उच्चश्श्रुतिर् वैकयमो धार्यो वाऽपि प्रकीर्तितः"** इति (३।३३–३५)। तद्विवरणं तत्रैव द्रष्टव्यम् (पृ.३५९–३६५)।

हिन्दी-- अगूँठा तर्जनी के मूल में अग्रभाग जुडने पर उदात्त स्वर को सूचित करता है, अनामिका के मूल में अग्रभाग जुडने पर स्वरित को सूचित करता है, मध्यमा के मूल में अग्रभाग जुडने पर प्रचयस्वर को सूचित करता है, और कनिष्ठिका के मूल में अग्रभाग जुडने पर अनुदात्त को सूचित करता है।

विशेष– यह पद्य पञ्जिकादि में नहीं है। इस पद्य में किस वेदशाखा की हस्तस्वरप्रक्रिया बताई गई है यह बात विचारणीय है। पण्डित रुद्रप्रताप अवस्थी ने और पण्डित गुरुप्रसादशास्त्री ने इस पद्य में सामवेद की हस्तस्वरप्रक्रिया प्रतिपादित मानी है। हरदत्त ने सामवेदसर्वानुक्रमणी में पाणिनीयशिक्षा को सामवेदीयशिक्षा माना भी है। किन्तु ऋग्वेद की शैशिरीयशाकलशाखा की शिक्षा के रूप में निश्चित शैशिरीयशिक्षा में भी यह पद्य समाविष्ट है (श्लो.८३)। अतः इस पद्य में ऋग्वेद की ही हस्तस्वरप्रक्रिया वर्णित मानी जा सकती है। ऋग्वेद की हस्तस्वरप्रक्रिया के सम्बन्ध में और अधिक विवरण कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में द्रष्टव्य है (पृ.४०३–४०५)। यह हस्तस्वरप्रक्रिया तैत्तिरीय कृष्णयजुर्वेदशाखा में भी प्रयुक्त प्रतीत होती है। व्यासशिक्षा, शम्भुशिक्षा, कौहलीयशिक्षा और

सर्वसम्मतशिक्षा इत्यादि तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में इस विषय के प्रतिपादक वचन उपलब्ध हैं। वे ऊपर संस्कृतव्याख्या में उद्धृत हैं।

इस पद्य में धृतशब्द का प्रयोग हुआ है। धृतशब्द का अर्थ प्रचय है। इस पद्य में शिक्षासङ्ग्रह में, सिद्धान्तकौमुदीपरिशिष्ट में और शिक्षादि-वेदषडङ्ग में भी "धृतम्" ही पाठ है। पण्डित बेचनराम त्रिपाठी ने और पण्डित कनकलालशर्मा मैथिल ने "धृतम्" पाठ को ही ठीक मानते हुए भी उसको टिप्पणी में रखकर "द्रुतम्" पाठ को मूल में रखा है। वैदिकशिक्षाशास्त्र के अनुशीलन की न्यूनता से पण्डित नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी को और रुद्रप्रताप अवस्थी को धृत-शब्द का अर्थ समझ में नहीं आया। अतः उन्हों ने "धृतम्" को छोडकर "द्रुतम्" पाठ का ग्रहण किया। पण्डित गुरुप्रसादशास्त्री-प्रभृति अन्य व्याख्याताओं ने भी इसी का अनुसरण किया। इस से ग्रन्थार्थ सर्वथा विकल हो गया। पण्डित रामप्रसाद त्रिपाठी के निर्देशकत्व में सञ्चालित विद्यावारिधि की गवेषणा से भी इस विकलता का निराकरण नहीं हुआ। "**पाणिनीयशिक्षायाः शिक्षान्तरैः सह समीक्षा**" नाम के अनुसन्धान प्रबन्ध के मुद्रित पुस्तक में ९५ वाँ पृष्ठ देखें। व्याकरणाचार्य पण्डित नारायणदत्त त्रिपाठी और कालीप्रसाद मिश्र भी धृतशब्दका अर्थ नहीं समझ पाए। राजस्थानराज-पण्डित महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा विद्यावाचस्पति ने भी धृत शब्द के अर्थ को न समझसकने के कारण उदात्तमाख्याति इत्यादि पाणिनीय-शिक्षा के पद्य में प्रचय का अनुल्लेख बताया (पथ्यास्वस्ति, पृ.४०)। यह सब वैदिक शिक्षाशास्त्र के अनुशीलन की न्यूनता से हुआ है। ऊपर संस्कृतव्याख्या में उद्धृत शैशिरीयशिक्षावचन में "अन्त्ये च मध्ये" यह व्यस्त पाठ है। "उपान्तमध्ये" पाठ से यह पाठ अर्थ समझ ने में अधिक सहायक है। धृतशब्द के प्रचय के पर्याय के रूप में व्यासशिक्षादि में स्पष्ट प्रयोग हैं। अतः तदनुसार यहाँ ग्रन्थार्थ दिया गया है। "उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्" इत्यादि अगला श्लोक भी हमारे ही अर्थ का अनुकूल है। इस से पाणिनीय शिक्षा के अर्थ को समझने में शैशिरीयशिक्षादिग्रन्थों का अनुशीलन कितना उपकारक है यह भी स्पष्ट हो जाता है॥४३॥

उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम्।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोप कनिष्ठिकाम्॥४४॥

अन्वयः— उदात्तम् प्रदेशिनीम् विद्यात्, प्रचयम् मध्यतोऽङ्गुलिम् (विद्यात्), निहतम् तु कनिष्ठिक्याम् (विद्यात्) स्वरित उप कनिष्ठिकाम् (विद्यात्)।

शब्दार्थः— उदात्तम्= उच्चस्वरम्, प्रदेशिनीम्= तर्जन्याम्, विद्यात्= जानीयात्, प्रचयम्=एकश्रुतिम्, मध्यतोऽङ्गुलिम्=मध्यमायाम् अङ्गुल्याम्, (विद्यात्=जानीयात्), निहतम्=अनुदात्तम्, तु=हिं, कनिष्ठिक्याम्=कनिष्ठिकायाम्, (विद्यात्=जानीयात्), स्वरित=स्वरितं स्वरम्, उप कनिष्ठिकाम्=अनामिकायाम्, (विद्यात्=जानीयात्)।

सरलार्थः— उदात्तं स्वरं तर्जन्यां सङ्केत्यं जानीयात्, प्रचयस्वरम् मध्यमायामङ्गुल्यां सङ्केत्यं जानीयात्, अनुदात्तं स्वरं कनिष्ठिकायां सङ्केत्यं जानीयात्, स्वरितं स्वरम् अनामिकायां सङ्केत्यं जानीयात्।

विशेषः— एतत् पद्यम् पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। पूर्वपद्येन गतार्थत्वात् प्रक्षिप्तमेतदिति पण्डितो रुद्रप्रतापोऽवस्थी सम्भावयति स्म। किन्तु रुद्रप्रतापमते पूर्वपद्ये प्रचयस्योल्लेखस्याऽभावाद्, अत्र च तस्य सत्त्वात् कथं पूर्वोक्तार्थदृढीकरणमात्रपरमेतत् पद्यं तन्मते स्यादिति चिन्त्यमेव तज्जल्पितम्। वस्तुतस्तु पुनरुक्तमेवैतत् पद्यम्, धृतपदेन पूर्वपद्येऽपि प्रचयस्योक्तत्वात्। एतस्यां शिक्षायाम् अनेकेभ्यो ग्रन्थेभ्यः पद्यानां सङ्गृहीतत्वात् पुनरुक्त्यादयो दोषाः प्रविष्टाः प्रतीयन्ते। एतस्य पद्यस्य रचना चातीव विसंस्थुला दृश्यते। प्रदेशिनीमित्यादिषु सप्तम्यर्थे द्वितीया छान्दसी मन्तव्या। स्वरितेति च लुप्तविभक्तिकं पदं मन्तव्यम्।

हिन्दी— उदात्त स्वर को तर्जनी में सङ्केतनीय जाने, प्रचय स्वरको मध्यमा अङ्गुलि में सङ्केतनीय जाने, अनुदात्त स्वर को कनिष्ठिका अङ्गुलि में सङ्केतनीय जाने और स्वरित स्वर को उपकनिष्ठिका (=अनामिका) में सङ्केतनीय जाने।

विशेष— यह पद्य पुनरुक्तार्थक है। इस की रचना विलक्षण है। प्रदेशिनीम् इत्यादि में सप्तमी के अर्थ में द्वितीया मान कर अथवा लक्षणा का आश्रय लेकर अर्थ करना पडा है। 'स्वरित' इस पद को लुप्त-विभक्तिक पद मानने से दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता है॥४४॥

[पदशय्याः (उदात्तादिस्वरमूलकपदप्रस्तारः)]

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नव पदशय्याः॥४५॥

अन्वयः— अन्तोदात्तम् आद्युदात्तम् उदात्तम् अनुदात्तम् नीचस्वरितम् मध्योदात्तम् स्वरितम् द्व्युदात्तम् त्र्युदात्तम् (पदम्) इति नव पदशय्याः (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः— अन्तोदात्तम्= अन्ते उदात्तेन स्वरेण युक्तम्, आद्युदात्तम्= आदौ उदात्तेन स्वरेण युक्तम्, उदात्तम्= उच्चस्वरमात्रयुक्तम्, अनुदात्तम्= अनुदात्तस्वरमात्रयुक्तम्, नीचस्वरितम्=क्रमेण अनुदात्तेन स्वरितेन च स्वरेण युक्तम्, मध्योदात्तम्=मध्ये उदात्तेन स्वरेण युक्तम्, स्वरितम्=स्वारमात्रयुक्तम्, द्व्युदात्तम्= द्वाभ्यामुदात्ताभ्यां स्वराभ्यां युक्तम्, त्र्युदात्तम्= त्रिभिरुदात्तैः स्वरैर् युक्तम् (पदम्=सुबन्तं तिङन्तं वा), इति=एवम्प्रकारेण, नव=नवप्रकाराः, पद-शय्याः=पदविशेषरूपाः स्वरावस्थितिस्थानविशेषाः, (ज्ञेयाः=बोध्याः)।

सरलार्थः— अन्तोदात्तं पदम्, आद्युदात्तं पदम्, उदात्तस्वरमात्रयुतं पदम्, अनुदात्तस्वरमात्रयुतं पदम्, क्रमेण अनुदात्तेन स्वरितेन च स्वरेण युतं पदम्, मध्ये उदात्तेन स्वरेण युतं पदम्, स्वरितस्वरमात्रयुतं पदम्, द्वाभ्यामुदात्ताभ्यां युतं पदम्, त्रिभिरुदात्तैर्युतं पदम् इति नवप्रकाराः पदविशेषरूपाः स्वरावस्थिति-स्थानविशेषाः भवन्ति। (अत्रोदाहरणानि अनुपदं मूले एव प्रस्तुतानि सन्ति)।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। पदे स्वरस्थितिविशेषस्य विचारः संहिताप्रकरणावान्तरविषयरूपोऽस्ति। अस्यां शिक्षायां तु संहिता-प्रकरणमेवोपेक्षितमित्यत्राऽस्य विषयस्योपयोगिता न्यूनैव। **कौण्डिन्न्यायन-**

शिक्क्षायां तु एष विषयः संहिताप्रकरणप्रारम्भे एव प्रतिपादितः, तथा हि– "एकोदात्तं पदं प्रायो नामाऽन्तोदात्तकं तथा। आख्यातं निहतं शिष्टावाद्युदात्तौ प्रकीर्तितौ॥ उदात्तमाद्युदात्तं च मध्योदात्तं पदं तथा। अन्तोदात्तं द्व्युदात्तं च त्र्युदात्तं स्वरितं ततः। अनुदात्तस्वरितकमनुदात्तमिति क्रमात्। नवप्रकाराः स्वराणां पदशय्याः प्रकीर्तिताः। प्र सोमो हविषामग्निर् बृहस्पतिरतः परम्। इन्द्राबृहस्पती स्वश् च वीर्यं वश्च निदर्शनम्" इति (७।१२–१५, पृ.५९७–५९८)। कौहलीयशिक्षायाम् (श्लो.३४–३५), सर्वसम्मतशिक्षायाम् [श्लो.६०–६२ (३।२९–३१)], नारदीयशिक्षायां च (२।७।४–५) एष विषय आगतोऽस्ति।

एतस्य पद्यस्य जातिः उद्गीतिः। उद्गीतिश्चाऽऽर्याभेद एव, "उत्क्रमेणोद्गीतिः" इति पिङ्गलवचनात् (४।३०), "आर्याशकलद्वितये विपरीते पुनरिहोद्गीतिः" इति च्छन्दोमञ्जरीवचनाच्च।

हिन्दी– [स्वरों के शयन (= अवस्थिति) के लिए] अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, अनुदात्तस्वरित, मध्योदात्त, स्वरित, द्व्युदात्त, त्र्युदात्त- ये नव-प्रकारक-पद-रूप शय्याएँ होती हैं। (अर्थात् स्वरों के अवस्थितिविशेष से पद नौ प्रकार के होते हैं)। (इन के उदाहरण मूल में ही आगे दिए जा रहे हैं)।

विशेष– यह पद्य पञ्जिकादि में नहीं है। पदों में स्वरों की स्थिति का विचार शिक्षाशास्त्र के सन्तान-(=संहिता)-प्रकरण का एक अवान्तर विषय है। इस शिक्षा में सन्तानप्रकरण उपेक्षित है। इस लिए इस विषय की यहाँ विशेष उपयोगिता नहीं है।

इस पद्य की जाति उद्गीति है। उद्गीति आर्या जाति का ही एक भेद है। यह बात पिङ्गलच्छन्दस्सूत्रादि में स्पष्ट है॥४५॥

[स्वरप्रस्तारोदाहरणम्]

अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर् बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती॥

अग्निरित्यन्तोदात्तम्, सोम इत्याद्युदात्तम्, प्रेत्युदात्तम्, व इत्यनुदात्तम्, वीर्यं नीचस्वरितम्, हविषां मध्योदात्तम्, स्वरिति स्वरितम्, बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तम्, इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम्॥४६-४७॥

अन्वयः— अग्निः सोमः प्र वः वीर्यम् हविषाम् स्वः बृहस्पतिः इन्द्राबृहस्पती (इति उदाहरणानि)। (तत्र) अग्निः इति अन्तोदात्तम् (पदम्), सोमः इति आद्युदात्तम् (पदम्), प्र इति उदात्तम् (पदम्), वः इति अनुदात्तम् (पदम्), वीर्यम् (इति) नीचस्वरितम् (पदम्), हविषाम् (इति) मध्योदात्तम् (पदम्), स्वः इति स्वरितम् (पदम्), बृहस्पतिः इति द्व्युदात्तम् (पदम्), इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम् (पदम्)।

शब्दार्थः— अन्वयेनैव शब्दार्थाः स्पष्टाः।

सरलार्थः— अन्वयेनैव सरलार्थोऽपि सुस्पष्टः।

विशेषः— अत्र अग्निः सोम इत्यादिका इन्द्राबृहस्पती इत्यन्ता फक्किका उदाहरणसङ्ग्रहपरा। अग्निरित्यन्तोदात्तमित्यादिका इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तमित्यन्ता फक्किका चोदाहरणविवृतिपरा। अत्र पद्यरूपतयाऽन्यैर् मुद्रणं केनाऽभिप्रायेण कृतमिति न ज्ञायते। निगदव्याख्याते इमे इति वदन् पण्डितो रुद्रप्रतापोऽवस्थी अत्र द्वे पद्ये स्वीकरोतीति भाति। तदनुसारमेव तद्व्याख्यायां षट्चत्त्वारिंशत्तमसप्तचत्वारिंशत्तमपद्यरूपेणाऽस्य भागस्य मुद्रणं दृश्यते। तदेव च गुरुप्रसादशास्त्रिप्रभृतिभिरपि स्वीकृतम्। शिक्षासङ्ग्रहे सिद्धान्तकौमुदीपरिशिष्टे च प्रायेण तथैव मुद्रणं दृश्यते। शिक्षादिवेदषडङ्गे तु पद्याऽङ्काभावात् खण्डिकाङ्कानामेव सत्त्वात् तत्र कीदृशो विभागोऽभिप्रेत इति सम्यग् न ज्ञायते। एतस्य भागस्य पद्यद्वयरूपतामाश्रितवन्तोऽपि पूर्वे व्याख्यातारस् तयोः पद्ययोः किं छन्द इति तु नाऽवादिषुः। वयं तु **"अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर् बृहस्पतिः"** इत्यत्रांशे पद्यरूपत्वे सत्यपि एतस्य सर्वस्य भागस्य तु पद्यगन्धि-गद्यरूपताम् एतस्य गद्यभागस्य एकसूत्रतां च रोचयामहे। एवं सति

उदात्तमाख्यातीत्यादिकायां खण्डिकायां श्लोकसूत्राधिक्यमपि न भवति। भवन्ति हि पद्यग्रन्थरूपेष्वपि शास्त्रग्रन्थेषु क्व चन मध्येमध्ये गद्यभागा अपि। केवलं लोकप्रसिद्ध्यनुरोधाद् उदाहरणसङ्ग्रह-फक्किकोदाहरण-विवृतिफक्किका-विभागानुरोधाद् वा तु अत्राऽस्माभिरपि द्वे सङ्ख्ये लिखिते बोध्ये।

हिन्दी— अग्निः, सोमः, प्र, वः, वीर्यम्, हविषाम्, स्वः, बृहस्पतिः, इन्द्राबृहस्पती ये क्रमशः उदाहरण हैं। अग्निः यह पद अन्तोदात्त है (यहाँ निः उदात्त है), सोमः यह पद आद्युदात्त है (यहाँ सो उदात्त है), प्र यह पद उदात्त है, वः यह पद अनुदात्त है, वीर्यम् यह पद नीचस्वरित है (यहाँ वीर् अनुदात्त यम् स्वरित है), हविषाम् यह पद मध्योदात्त है (यहाँ वि उदात्त है), स्वः यह पद स्वरित है, बृहस्पतिः यह पद द्व्युदात्त है (यहाँ बृ और प दो अक्षर उदात्त हैं), इन्द्राबृहस्पती यह पद त्र्युदात्त है (यहाँ इन्, बृ और प ये तीन अक्षर उदात्त हैं)।

विशेष— इन गद्यरूप उदाहरणसङ्ग्रहफक्किका और उदाहरण-व्याख्याफक्किका को भी पण्डित रुद्रप्रताप अवस्थी प्रभृति व्याख्याताओं ने दो पद्य माना है। शिक्षासङ्ग्रहादि में भी ऐसी ही बात दिखाई देती है। किन्तु हमारे विचार में ये गद्यफक्किकाएँ हैं। हम को इन फक्किकाओं को एक ही सूत्र मानना उचित लगता है। ऐसा करने से उदात्तमाख्याति इत्यादि खण्ड में श्लोकसूत्राधिक्य (५ से अधिकता) भी नहीं होता है। केवल लोकप्रसिद्धि को देख कर अथवा दो फक्किकाओं को देखकर हमने यहाँ दो सङ्ख्याएँ लिखी हैं॥४६-४७॥

[हस्तकार्यस्वरनिर्देशप्रकारः]

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः॥४८॥

अन्वयः— अनुदात्तः हृदि ज्ञेयः, उदात्तः मूर्ध्नि उदाहृतः, स्वरितः कर्णमूलीयः (उदाहृतः), प्रचयः सर्वास्ये स्मृतः।

शब्दार्थः— अनुदात्तः= निहतः स्वरः, हृदि= उरःप्रदेशे, ज्ञेयः= बोध्यः, उदात्तः= उच्चः स्वरः, मूर्ध्नि= शिरसि, उदाहृतः= कथितः, स्वरितः= स्वारः, कर्णमूलीयः= कर्णमूलसमे स्थाने निर्देश्यः (उदाहृतः= कथितः), प्रचयः= एकश्रुतिः, सर्वास्ये=मुखसमे स्थाने, स्मृतः=स्मृत्याऽवगतः।

सरलार्थः— अनुदात्तः स्वरः उरःप्रदेशे (हस्तं नीत्वा) उच्चारणीयो ज्ञेयः, उदात्तः स्वरः शिरःप्रदेशे (हस्तं नीत्वा) उच्चारणीयः कथितः, स्वरितः स्वरः कर्णमूलप्रदेशे (हस्तं नीत्वा) उच्चारणीयः कथितः, प्रचयः स्वरः आस्यप्रदेशे (हस्तं नीत्वा) उच्चारणीयः स्मृतः।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। किन्तु एतादृशं पद्यं शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.६१), शौनकीयशिक्षायां च (श्लो.५५) प्राप्यते। एतत् पद्यं यद्यपि साधारणतयाऽनुदात्तादिस्वराणां हृदयादिस्थानादेवोच्चारणीयतां प्रतिपादयति, तथापि हस्तस्वरप्रकरणे पठितत्वाद्धस्तस्वरप्रतिपादनं च करोतीति प्रतीयते; याज्ञवल्क्यशिक्षादिषु हृदयप्रदेशादिषु हस्तं नीत्वाऽनुदात्तादीनामुच्चारणस्य विहितत्वात् (याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् श्लो.५१, प्रतिज्ञासूत्रे १।४,५,६; केशवीयकारिकावल्याम्, श्लो.१), शम्भुशिक्षायामपि एतस्य पद्यस्य हस्तस्वरप्रकरण एव पाठाच् च (श्लो.३४–३६)। किन्तु अत्र उदात्तमाख्यातीत्यादिपद्यप्रतिपादितेन हस्तस्वरनिर्देशप्रकारेण सह एतेन पद्येन प्रतिपादितस्य हस्तस्वरनिर्देशप्रकारस्य कः सम्बन्ध इत्यपि निरूपणीयं भवति। अत्र केचन उदात्तमाख्यातीत्यादिपद्यप्रोक्ता हस्तस्वरप्रक्रिया ऋग्वेद-कृष्णयजुर्वेदादिविषया, अनुदात्तोहृदीत्यादिपद्यप्रोक्ता तु शुक्लयजुर्वेदविषयेति कथयेयुः; अन्ये पुनः उदात्तमाख्यातीत्यादिपद्ये हस्तस्वरप्रक्रिया प्रतिपादिता, अनुदात्तो हृदीत्यादिपद्ये तु अनुदात्तादिस्वराणां हृदयादिस्थानादेवोच्चारणीयतैव प्रतिपादिता न काऽपि हस्तस्वरप्रक्रियेति भणेयुः। वयं तु प्रकरणबलं विचार्य **"हृदयसमीपे हस्तं संस्थाप्य कनिष्ठिकामूलेऽङ्गुष्ठाग्रं नीत्वाऽनुदात्तस्वर उच्चारणीयः"** इत्यादिकं समन्वितमर्थं रोचयामहे। **"अनुदात्ते हृदि ज्ञेयः"** इत्यादिकं पाठान्तरं चोपलभ्य-

मानमपीममेव पक्षं पुष्णाति। एतां च हस्तस्वरप्रक्रियां शैशिरीयशाकलऋग्वेदाऽऽत्रेयतैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदादिविषयामेव च वयं मन्यामहे। एषा च समन्विता हस्तस्वरप्रक्रिया कौण्डिन्न्यायनशिक्षायामेवं प्रतिपादिता— "तर्जन्याद्यङ्गुलीनां हि मूलेष्वङ्गुष्ठशीर्षकम्। उदात्त-प्रचित-स्वारा-ऽनुदात्तेषु क्रमान् नयेत्॥ दक्ष-मुक्तविधं हस्तं नीचे तु हृदयं नयेत्। मूर्धानमुच्चे स्वरिते कर्णमूले धृते मुखम्" इति (३।८३–८४)। एतद्विषयेऽन्यो विस्तरस् तत्रैव द्रष्टव्यः (पृ.४०३–४०५, ४२४–४२५)।

हिन्दी— अनुदात्त स्वर को हृदयप्रदेश में (हाथ रखकर) उच्चरित करना चाहिए, उदात्त स्वर को शिरःप्रदेश में (हाथ रखकर) उच्चरित करना चाहिए, स्वरित स्वर को कर्णमूलप्रदेश में (हाथ रखकर) उच्चरित करना चाहिए, और प्रचयस्वरको मुखप्रदेश में (हाथ रखकर) उच्चरित करना चाहिए।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकादि में नहीं है। किन्तु ऐसा ही पद्य शैशिरीयशिक्षा में, शौनकीयशिक्षा में और शम्भुशिक्षा में भी पाया जाता है। यह पद्य यद्यपि साधारणतया उदात्तादि स्वरों को हृदयादिस्थ नादों से उच्चरित करने का विधान करता है, तथापि हस्तस्वर के प्रकरण में पढे जाने से हस्तस्वरप्रक्रिया का प्रतिपादन भी करता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु यहाँ "**उदात्तमाख्याति**" इत्यादि पद्य से प्रतिपादित हस्तस्वरप्रतिक्रिया का इस पद्य से प्रतिपादित हस्तस्वरप्रक्रिया से क्या सम्बन्ध हो सकता है- यह बात विचारणीय है। हमारे विचार में इन दोनों पद्यों का "हृदय के समीप में हाथ रखकर कनिष्ठिका के मूल में अङ्गुष्ठाग्र ले जाकर अनुदात्त स्वर को उच्चरित करना चाहिए" इत्यादि रूप में समन्वित अर्थ समझना चाहिए। इस विषय में और अधिक विचार के लिए ऊपर प्रस्तुत संस्कृत व्याख्या और कौण्डिन्न्यायनशिक्षा का सम्बद्ध भाग द्रष्टव्य है (पृ.४०३-४०५, ४२४-४२५)॥४८॥

[मात्राविशेषनिदर्शनानि]

चाषस् तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस् त्वर्धमात्रकम्॥४९॥

अन्वयः— चाषः तु मात्राम् वदते, वायसः द्विमात्रम् च एव (वदते), शिखी तु त्रिमात्रम् रौति, नकुलः तु अर्धमात्रकम् (रौति)।

शब्दार्थः— चाषः=किकीदिविः=नीलपक्षपुटो ग्राम्यारण्यः पक्षिविशेषः, मात्राम्= एकमात्रकं शब्दम्, वदते= सम्प्रवदति=सम्यगुच्चारयति, वायसः= काकः, द्विमात्रम्= मात्राद्वययुक्तं शब्दम्, च=अपि, एव= हि, (वदते= सम्प्रवदति=सम्यगुच्चारयति), शिखी=मयूरः, तु=हि, त्रिमात्रम्=मात्रात्रययुक्तं शब्दम्, रौति= सम्प्रवदति=सम्यगुच्चारयति, नकुलः= बभ्रुः, तु= हि, अर्धमात्रकम्= मात्रार्धकालं शब्दम्, (रौति=सम्प्रवदति=सम्यगुच्चारयति)।

सरलार्थः— चाषः पक्षी मात्राकालं शब्दं सम्प्रवदति, काको द्विमात्रं शब्दं सम्प्रवदति, मयूरस् त्रिमात्रं शब्दं सम्प्रवदति, नकुलस्तु अर्धमात्रकं शब्दं सम्प्रवदति।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। किन्तु ऋग्वेदप्रातिशाख्ये, याज्ञवल्क्यशिक्षायाम्, चारायणीयशिक्षायाम्, व्यासशिक्षायाम्, कौहलीयशिक्षायाम्, सर्वसम्मतशिक्षायाम्, पारिशिक्षायाम्, लोमशीयशिक्षायाम्, माण्डूकीयशिक्षायां च एतदेव वा एतदर्थकं वा पद्यं प्राप्यते। ऋग्वेदप्रातिशाख्यस्थमेतत् पद्यमुव्वटेनाऽव्याख्याततत्वात् प्रक्षिप्तं वा उव्वटव्याख्याभागरूपं वाऽपि सम्भाव्यते। चाषादीनां शब्दानां कालानां विचारात् तत्समानकालतया ह्रस्वादिस्वराणामुच्चारणं कर्तव्यमित्यस्य पद्यस्य भावोऽवगन्तव्यः। एतानि निदर्शनानि अरण्यनिवासिनां मुनीनामध्येतॄणां च कृते विशेषेणोपयोगीनि दृश्यन्ते, नगरे तु एतानि निदर्शनानि दुर्लभानि।

हिन्दी— नीलकण्ठ पक्षी एक मात्राकालिक शब्द बोलता है, कौआ द्विमात्रिक शब्द बोलता है, मयूर तीन मात्रा का शब्द बोलता है, नेउला आधी मात्रा का शब्द बोलता है। (अतः इन निदर्शनों को सुन कर तदनुसार ही ह्रस्वदीर्घादि का उच्चारण करना चाहिए)।

विशेष— यह पद्य कुछ पाठभेद के साथ अनेक शिक्षाग्रन्थों में उपलब्ध है। इस पद्य में प्रतिपादित निदर्शन प्रकृति में स्वभावतः प्राप्त निदर्शन हैं। किन्तु ये निदर्शन विशेष रूप में वनवासी मुनियों और अध्येताओं के लिए ही उपयोगी दिखाई देते हैं।

आधुनिक देश्य भाषाओं में दीर्घ स्वरों के प्रयोग न्यून रूप में ही उपलब्ध होते हैं। अतः इदानीन्तन संस्कृताध्येता लोग संस्कृत के दीर्घ स्वरों को भी ह्रस्व रूप में बोलते हुए उपलब्ध होते हैं। देवभाषा संस्कृत के प्रेमियों को इस विषय में सावधान होकर संस्कृतशब्दों के स्वरवर्णों का मात्रानुसार यथार्थ उच्चारण सीखना-सिखाना चाहिए॥४९॥

[कुतीर्थाऽगतवेदपाठनिन्दा (असद्गुरुनिन्दा)]

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात्॥५०॥

अन्वयः— कुतीर्थात् आगतम् दग्धम् अपवर्णम् भक्षितम् च (यद् ब्रह्म) तस्य पाठे पापाहेः इव किल्बिषात् मोक्षः न अस्ति।

शब्दार्थः— कुतीर्थात्= अनधिगतसाङ्गवेदाद् उच्चारणगुणदोषाद्यनभिज्ञाद् अयोग्याद् अध्यापकात्, आगतम्= प्राप्तम्, दग्धम्= दग्धरज्जुन्यायेन स्थितम् आभासमात्रं निर्वीर्यम्, अपवर्णम्=अपगतवर्णम्, भक्षितम्=अन्तर्दन्तकेनाऽस्पष्टमुच्चारितम्, च=अपि (यद्=साकाङ्क्षबुद्धिविशेषस्थम्, ब्रह्म=वेदः), तस्य= तादृशस्य ब्रह्मणः, पाठे= अध्ययने, पापाहेः= दुष्टसर्पाद्, इव= यथा, किल्बिषात्=पापात्, मोक्षः=मुक्तिः, न=नैव, अस्ति=भवति।

सरलार्थः— अनधिगतसाङ्गवेदाद् उच्चारणगुणदोषाद्यनभिज्ञाद् अयोग्याद् अध्यापकाद् अधीतं दग्धरज्जुन्यायेन स्थितमाभासमात्रं निर्वीर्यं वर्णविकलम् अन्तर्दन्तकेनाऽस्पष्टतयाऽधीतं च यद् ब्रह्म तस्य पाठे प्रकोपिताद् दुष्टसर्पादिव पापान् मुक्तिर् न भवति।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकायां नास्ति। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां त्वस्ति। नारदीयशिक्षायां माण्डूकीयशिक्षायां चोपलभ्यते। गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणं गुरुसंश्रवे स्थित्वा सम्यगभ्यासं च कृत्वा येन विधिना योग्यादाचार्यात् साङ्गो वेदोऽधीतः तस्मादेव गुरोर् वेदोऽध्येयः, अन्यथा पापमेवाऽऽत्मनि लिप्यते इत्यस्य पद्यस्य भावः। अत एव **"तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाऽविद्वानिति हि ब्राह्मणम्"** इति आपस्तम्बधर्मसूत्रे प्रोक्तम् (१।१।१।११)।

हिन्दी— अङ्गों से युक्त वेद के विधिपूर्वक किए गए अध्ययन से रहित और उच्चारण के गुणों को और दोषों को अच्छी तरह न जानने वाले अयोग्य अध्यापक से पढा हुआ, दग्धरज्जु (जलने से राख के रूप में परिणत रस्सी) जैसा आभासमात्र और स्वकार्याऽसमर्थ, वर्णविकल, अस्पष्टोच्चारित जो वेद है उसके पाठ करने पर क्रुद्ध गोमन सर्प से जैसे छुटकारा नहीं मिलता है वैसे ही पाप से छुटकारा नहीं मिलता है।

विशेष— यह पद्य स्वल्पपाठभेद के साथ नारदीयशिक्षा में (२।८।१०) और माण्डूकीयशिक्षा में भी (श्लो.१६०) मिलता है। इस पद्य में गुरुप्रसाद शास्त्री ने **"पापाहेः"** के स्थान में **"पापर्द्धेः"** यह पाठान्तर दिखाया है, और उसका अर्थ भी **"जैसे पापर्द्धि (पारधी, कसाई, बहेलिया) का जीवहिंसा के घोर पाप से छुटकारा असम्भव है वैसे ही"** इत्यादि कहकर बताया है, किन्तु वह पाठ प्रामाणिक नहीं लगता है ॥५०॥

[सुतीर्थाऽऽगतवेदपाठप्रशंसा (सद्गुरुप्रशंसा)]

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥५१॥

अन्वयः— सुतीर्थात् आगतम् व्यक्तम् स्वाम्नातम् सुव्यवस्थितम् सुस्वरेण सुवक्त्रेण (द्विजेन) प्रयुक्तम् ब्रह्म राजते।

शब्दार्थः— सुतीर्थात्=धर्माधिगतसाङ्गवेदकाद् उच्चारणगुणदोषाभिज्ञाद् योग्याद् अध्यापकात्, आगतम्=प्राप्तम्, व्यक्तम्=स्पष्टम्, स्वाम्नातम्=शुद्धरूपेणाऽभ्यस्तम्, सुव्यवस्थितम्= सम्यक् कण्ठे स्थितम्, सुस्वरेण= शोभनस्वरयुक्तेन, सुवक्त्रेण= शोभनदन्तोष्ठादिवद्वदनेन, (द्विजेन= द्विजातिजनेन), प्रयुक्तम्=उच्चारितम्, ब्रह्म=वेदः, राजते=दीप्यते।

सरलार्थः— (गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणं गुरुसंश्रवे स्थित्वा सम्यगभ्यासं च कृत्वा येन विधिना योग्यादाचार्यात् साङ्गो वेदोऽधीतस् तादृशाद्) योग्याद् गुरोर् विधिनाऽधीतः, स्पष्टः, शुद्धरूपेणाऽभ्यस्तः, सम्यक् कण्ठस्थीकृतः, शोभनस्वरेण शोभनदन्तोष्ठादिवाणीकरणयुतेन द्विजेन (प्रकर्षेण विधिपूर्वकं यज्ञादिषु) समुच्चारितो वेदः (शब्देनाऽर्थेन प्रभावेण च) दीप्यते।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकायां नोपात्तम्। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां त्वस्ति। नारदीयशिक्षायाम् (२।८।११), माण्डूकीयशिक्षायां च (श्लो.१६१) एतत् पद्यमुपलभ्यते। अत्र **"स्वाम्नातम्"** इत्यस्य स्थाने शिक्षासङ्ग्रहे **"स्वाध्यायम्"** इति पाठः, सिद्धान्तकौमुदीपरिशिष्टे **"स्वाम्नायम्"** इति पाठः, शिक्षादिवेदषडङ्गे **"स्वाम्नाय्यम्"** इति पाठः। पण्डितरुद्रप्रतापावस्थिप्रभृतिभिरयमेव पाठः परिगृहीतः। नारदीयशिक्षायां माण्डूकीयशिक्षायां च **"स्वाम्नातम्"** इति पाठः। अर्थदृष्ट्या स्वाम्नातमिति पाठः सुसङ्गततर इति एष एव पाठोऽस्माभिः परिगृहीतः।

हिन्दी— (यथाविधि गुरुमुखोच्चारण सुनकर तदनुसार उच्चारण और गुरु के श्रवणगोचर स्थल में रहकर तदनुसार अभ्यास करके जिन्हों ने अङ्गसहित वेद का अध्ययन किया है और जो उच्चारण-गुणदोषादि के अभिज्ञ हैं ऐसे) सद्गुरु से विधिवत् प्राप्त, स्पष्ट, शुद्धरूप से अभ्यस्त, कण्ठस्थ रूप में अध्येता के वश में अवस्थित, तथा मधुर स्वर वाले और शोभन दन्तोष्ठादि मुखाऽवयव वाले अध्येता से उच्चरित वेद विराजित (=शब्द, अर्थ और प्रभाव की दृष्टि से प्रदीप्त) होता है।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकाव्याख्या में नहीं है। किन्तु शिक्षाप्रकाशव्याख्या में यह पद्य व्याख्यात है। इस पद्य में "स्वाम्नातम्" के स्थान में "स्वाध्यायम्" "स्वाम्नायम्" "स्वाम्नाय्यम्" ये पाठान्तर मिलते हैं। किन्तु नारदीयशिक्षा में और माण्डूकीयशिक्षा में "स्वाम्नातम्" पाठ मिलता है। अर्थ की दृष्टि से यही पाठ सुसङ्गत है। अतः यहाँ इसी पाठ को परिगृहीत किया गया है।

शिक्षाप्रकाशव्याख्या में इस पद्य के बाद यह पद्य उपात्त है–

न करालो न लम्बोष्ठो नाऽव्यक्तो नाऽनुनासिकः।
गद्गदो बद्धजिह्वश् च न वर्णान् वक्तुमर्हति॥

[ज्यादा लम्बे दाँतों वाला, ज्यादा लम्बे होंठों वाला, अस्पष्ट रूप से वर्णों का उच्चारण करने वाला, नकियाने वाला (अननुनासिक वर्णों का भी सानुनासिक रूप में उच्चारण करने वाला), हकलाने वाला, बँधा हुआ जीभ वाला (जीभ की चेष्टा में समयसमय में आने वाले रुकावट से युक्त) व्यक्ति भी वर्णों का ठीक प्रकार से उच्चारण करने में योग्य नहीं होता है।]

यह पद्य अग्निपुराण के सङ्क्षिप्त पाठ में (३३६।१४) भी दिखाई देता है। यह पद्य याजुष पाठ में उन्नीसवाँ पद्य है। यह पद्य याज्ञवल्क्यशिक्षा में (श्लो.२४-२५) नारदीयशिक्षा में (२।८।१२) और माण्डूकीयशिक्षा में (श्लो.१५७) भी मिलता है॥५१॥

[स्वरवर्णादिविकलोच्चारणे हानिः]

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥५२॥

अन्वयः— स्वरतः वर्णतः वा हीनः मिथ्याप्रयुक्तः मन्त्रः तम् अर्थम् न आह। स वाग्वज्रः स्वरतः अपराधात् इन्द्रशत्रुः यथा यजमानम् हिनस्ति।

शब्दार्थः— स्वरतः= स्वरात् कारणात्, वर्णतः= वर्णात् कारणात्, वा= अथवा, हीनः=अपकृष्टः (=दुष्टः), मिथ्याप्रयुक्तः=अयथावदुच्चारितः, मन्त्रः= मनुः, तम्= बुद्धिस्थं विवक्षितम्, अर्थम्=अभिधेयम्, न=नैव, आह=ब्रूते, सः= तथाऽयथावत् प्रयुक्तः, वाग्वज्रः= वाणीरूपः पविः, स्वरतः= स्वरकृतात्, अपराधात्= दोषात्, इन्द्रशत्रुः= इन्द्रशत्रु-शब्दः, यथा= इव, यजमानम्= यष्टारम्, हिनस्ति=तृणेढि (=पीडयति)।

सरलार्थः— स्वराद् वर्णाद् वा कारणाद् अपकृष्टः अयथावदुच्चारितो मन्त्रो बुद्धिस्थं विवक्षितमर्थं न बोधयति; अयथावत् प्रयुक्तो वाग्वज्ररूपः स मन्त्रः स्वरदोषाद् दुष्ट इन्द्रशत्रुशब्द इव यजमानं हिनस्ति।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकायामपि परिगृहीतम्। एतत् पद्यं चारायणीय-शिक्षायां (४।१, कौ.शि., पृ.८१०) नारदीयशिक्षायां च (१।१।५) उपलभ्यते। पाणिनीय-व्याकरणभाष्ये पस्पशाह्निके चैतत् पद्यमुपात्तम्। तत्र **"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा"** इति पाठः। एतेनाऽत्राऽपि मन्त्रशब्दः शब्दमात्रपर इत्यव-गम्यते। तथापि भाष्यस्थमेतं पाठभेदमुपादाय **"दुष्टः शब्द इत्यत्रापि बहुजन-प्रसिद्धशिक्षाकारपठितमन्त्रपदोद्धारेण शब्दपदं प्रक्षिपता स्वपक्षानुरागो दर्शितः। दुष्टमन्त्रप्रयोगे त्विष्यत एव यजमानस्य प्रत्यवायः"** इति तन्त्रवार्त्तिके व्याकरणा-धिकरणपूर्वपक्षे कुमारिलभट्टः। एवं च कुमारिलसमयेऽपि मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वेत्यादिकं शिक्षासु पठितं पद्यं बहुजनप्रसिद्धमासीदित्यवगम्यते। अत्र पद्ये निदर्शनरूपेणाऽऽगतं वृत्रवधोपाख्यानं च शतपथब्राह्मणे तैत्तिरीयसंहितायां च श्रूयते। तथा हि माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशतपथब्राह्मणे— **"त्वष्टुर् ह वै पुत्रस् त्रिशीर्षा षडक्ष आस तस्य त्रीण्येव मुखान्यासुस् तद्यदेवंरूपऽ-आस तस्माद् विश्वरूपो नाम"** इत्यादि (१।६।३।१-)। तत्र चोक्तम्— **"अथ यदब्रवीदिन्द्रशत्रुर् वर्द्धस्वेति तस्माद् हैनमिन्द्र एव जघानोऽथ यद् ध**

शश्श्वदवक्क्ष्यदिन्द्रस्स्य शत्रुर् व्वर्द्धस्स्वेति शश्श्वदु ह स एवेन्द्रमहनिष्ष्यत्" इति (१।६।३।१०)। तैत्तिरीयसंहितायां च– "विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत् स्वस्रीयोऽसुराणाम्" इत्यादिका (२।५।१।१) विश्वरूपवधाख्यायिका। तत्र चोक्तम्– "तस्य यदत्यशिष्यत तत् त्वष्टाऽऽहवनीयमुप प्रावर्तयत् स्वाहेन्द्रशत्रुर् वर्धस्वेति तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभवत्" इति (२।५।२।१-२)।

तत्र "दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा" इत्यादिकस्य पद्यस्य भर्तृहरिकृतायां महाभाष्यटीकायां दीपिकायां व्याख्यानं यथा– "**दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा**। आद्यादित्वात् तसिः। स्वरवर्णाभ्यां दुष्टः। यश् चाऽऽभ्यां दुष्टः स उच्यते मिथ्याप्रयुक्त इति। **स एवंभूतो न तमर्थमाह**। स तमर्थमनभिदधद् **वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति**। वागेव वज्रो वाग्वज्रः। असावेनसो योगात्, तेन चैनसा प्रयुक्तोऽमुत्र प्रत्यवायात् हिंसितो भवति, यजमानो हीज्यायां प्रधानम्। अथवा ऋत्विजो हिंसायामयमपि हिंसितः। **यथेन्द्रशत्रुः**। यथाऽयमिन्द्रशत्रुर् यजमानं हिंसितवानेवमन्योऽपि मिथ्याप्रयुक्तो मा हिंसीदित्यध्येयं व्याकरणम्। दुष्टशब्दप्रयोग इति श्रूयते– 'स्वाहेन्द्रशत्रुर् वर्धस्व' इति मन्त्रः। अत्राऽन्तोदात्तः कर्तव्यः। आद्युदात्तः कृतः। ततोऽस्येन्द्र एव शातयिता संवृत्त इति। अत्र चोद्यते– यद्यपि समासान्तोदात्तत्वमेवमपि नाऽयमर्थो व्यावर्तत इति, इन्द्रः शत्रुरस्येति यथा सोमसखो राजसख इति। इदं चाऽत्र वक्तव्यम्– इन्द्रशत्रो वर्धस्वेति कस्मादामन्त्रितप्रथमा न भवति? यत् तावदुक्तमन्तोदात्तत्वेऽपि न तस्यार्थस्य व्यावृत्तिरिति। नैष दोषः। योऽयं शत्रुशब्दो मन्त्रे प्रयुक्त एष रूढिशब्दोऽपि सन् अर्थप्रकरणवशात् त्यक्त्वा निरूढिं निमित्तमपेक्षमाणः प्रयुक्तः। तस्मान्नायमेवाऽऽश्रीयते इन्द्रस्याऽमित्र इन्द्रो वाऽमित्रोऽस्येति। कथं तर्हि?। क्रियामेव निमित्तत्वेनोपादाय प्रयुक्तः। शातयिता शमयिता वा शत्रुरिति। तत्रेन्द्रस्य शातयिता भवेति प्रयुयुक्षितम्, इन्द्रः शातयिताऽस्येति प्रयुक्तम्। यच् चोक्तमामन्त्रितविभक्त्या भवितव्यमिति। योऽर्थः स्वेन धर्मेण प्रसिद्धो धर्मान्तरसम्बन्धं प्रत्यभिमुखः क्रियते तत्राऽऽमन्त्रितविभक्तिः, यथा देवदत्तं क्रियान्तरसम्बन्धं

प्रत्यभिमुखीकरोति देवदत्ताऽधीष्व भुङ्क्ष्वेति। यस्य चाऽऽधीयमानः एवाऽसौ धर्मस् तस्य कुत आमन्त्रितविभक्तिः? तद् यथा राजा भव युद्ध्यस्व पुरुषो भवेति। राजत्वमेवाऽऽधीयमानं पुरुषत्वं चेति नास्त्यामन्त्रितविभक्तिः। एवमिहाऽपीन्द्रशत्रुत्वमेवाऽऽधीयमानमित्यदोषः। तत्र पूर्वस्मिन् वर्णदोषः प्रदर्शितो 'हेऽलयो हेऽलयः' इति, सम्प्रति स्वरदोषः" इति (पृ.११-१२)। एतेनैव प्रायेण कय्यट-नागोजिभट्टादिव्याख्यानानि च गतार्थानि।

नागोजिभट्टेन लघुशब्देन्दुशेखरे साधारणस्वरप्रकरणे (१।२।३४ सूत्रे) **"ऊहे त्रैस्वर्यमेव प्रयोज्यम्"** इति प्रतिपादितम्। मन्त्रेऽपि विकल्पेन त्रैस्वर्यस्य शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यादिषु विहितत्वाद् ऊहेऽपि विकल्पेन त्रैस्वर्यं निर्बाधमिति च बोध्यम्। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायामूहविचारे द्रष्टव्यम् (पृ.३९५-३९७)।

विशेषः— "अपादाने चाऽहीयरुहोः" (५।४।४५) इति सूत्रे काशिकायां **"कथं मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वेति। नैषा पञ्चमी, किं तर्हि, तृतीया, स्वरेण वर्णेन वा हीन इत्यर्थः"** इति जयादित्य आह। वस्तुतस् तु नेयमपादानपञ्चमी हेतुपञ्चमीयम्।

हिन्दी— स्वर से अथवा वर्ण से अपकृष्ट मन्त्र मिथ्याप्रयुक्त होने के कारण बुद्धिस्थ विवक्षित अर्थ को नहीं कहता है। अयथावत् प्रयुक्त वाग्वज्ररूप वह मन्त्र स्वरदोष से दुष्ट इन्द्रशत्रु शब्द के तरह यजमान को नष्ट करदेता है।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकाव्याख्या में भी है। चारायणीयशिक्षा में (४।१, कौ.शि., पृ.८१०) और नारदीयशिक्षा में (१।१।५) भी यह पद्य है। पाणिनीयव्याकरणभाष्य में पस्पशाह्निक में भी यह पद्य उद्धृत है। किन्तु वहाँ **"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा"** ऐसा पाठ है। भाष्यकार के इस पाठ के विषय में कुमारिल भट्ट ने भी तन्त्रवार्तिक में व्याकरणाधिकरण के पूर्वपक्ष में समीक्षा प्रस्तुत की है। इस पद्य की व्याख्या महाभाष्यटीका

दीपिका में भर्तृहरि ने प्रस्तुत की है। इस को हम ने ऊपर संस्कृतव्याख्या में उद्धृत किया है। कय्यट-नागोजिभट्टप्रभृति व्याख्याताओं ने उसी का अनुसरण किया है।

इस पद्य में उल्लिखित इन्द्रशत्रुशब्द से सम्बद्ध उपाख्यान माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशतपथब्राह्मण में (१।६।३।१-१०) और तैत्तिरीयसंहिता में (२।५।१।१-२) भी आया है। शतपथब्राह्मण के इस उपाख्यान का सारांश यह है– त्वष्टा का पुत्र तीन शिर वाला और छह आँखों वाला था। उसके मुख भी तीन थे। इस रूप के होने से उसको विश्वरूप कहते थे। इन्द्र विश्वरूप का द्वेष करते थे। इन्द्र ने विश्वरूप के तीनों शिर काटे। तब त्वष्टा इन्द्र से क्रुद्ध हो गए। त्वष्टा ने इन्द्र को बुलाए विना ही सोमयाग किया। इन्द्र को यह बात विदित हुई। इन्द्र ने आकर बलात् द्रोणकलश से सोम को पीडाला। इस प्रकार बलात् पीने से क्रुद्ध सोम ने भी इन्द्र को क्षति पहुँचाई। पीछे सौत्रामणी इष्टि से देवताओं ने इन्द्र की चिकित्सा की। क्रुद्ध त्वष्टा ने द्रोणकलश में अवशिष्ट सोम को "इन्द्रशत्रुर् वर्द्धस्व" कह कर अग्नि में होमा। अग्नि में पहुँचकर वह सोम वृत्र होकर उठा। त्वष्टा "इन्द्र का नाश करने वाला होकर बढो" कहना चाहते थे। किन्तु त्वष्टा ने इन्द्रशत्रु पदको आद्युदात्त बोला। इस से उस पद ने "इन्द्र का नाश करने वाला" ऐसा अर्थ नहीं दिया। उस पद का अर्थ "इन्द्र है नाश करने वाला जिस का वह" ऐसा हो गया। इसी से पीछे इन्द्र ने वृत्र का वध किया। इस प्रकार स्वरदोष से दुष्ट मन्त्र (शब्द) के प्रयोग से त्वष्टा की महती क्षति हुई। यदि त्वष्टा स्पष्ट रूप से "इन्द्रस्य शत्रुर् ब्बर्द्धस्व" अथवा "इन्द्रशत्रुर् ब्वंर्द्धस्व" कहते तो वृत्र ही इन्द्र का वध करता।

यहाँ शत्रुशब्द रूढ नहीं है यौगिक है। इस लिए यहाँ शत्रु का अर्थ सामान्य वैरी नहीं है, शातयिता (=नाश करने वाला) है। तत्पुरुष समास सामान्यतया अन्तोदात्त होता है। इस बात को पाणिनि ने "समासस्य" (अष्टा.६।१।२२३) सूत्र से समझाया है। बहुव्रीहि समास में सामान्यतया

पूर्वपद प्रकृतिस्वर में ही रहता है। इस बात को पाणिनि ने "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्" (अष्टा.६।२।१) इस सूत्र से समझाया है। इन्द्र शब्द आद्युदात्त है। बहुव्रीहि समास से बने हुए इन्द्रशत्रु शब्द में "इन्" यह अक्षर उदात्त होता है॥५२॥

अवक्षरं ह्यनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम्।
अक्षताऽशस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके॥५३॥

अन्वयः— अवक्षरम् (ब्रह्म) हि अनायुष्यम् (करोति), विस्वरम् (ब्रह्म) व्याधिपीडितम् (करोति), अक्षताऽशस्त्ररूपेण वज्रम् मस्तके पतति।

शब्दार्थः— अवक्षरम्= अपाक्षरम्= वर्णविकलम्, (ब्रह्म= वेदः), हि= तु, अनायुष्यम्= अपचितायुष्यम्, (करोति= विदधाति), विस्वरम्= विकृतस्वरम्, (ब्रह्म= वेदः), व्याधिपीडितम्= रोगाक्रान्तम्, (करोति= विदधाति)। अक्षता-ऽशस्त्ररूपेण= अकुण्ठम् अशस्त्ररूपं गृहीत्वा, वज्रम्= कुलिशम्, मस्तके= उच्चारयितुः शिरसि, पतति=निपतति।

सरलार्थः— वर्णविकलतयोच्चारितो वेद उच्चारयितारम् अपचितायुष्कं करोति, स्वरविकारेणोच्चारितो वेद उच्चारयितारं रोगनिपीडितं करोति, उच्चा-रणविकृत-ब्रह्म-रूपं कुलिशम् अकुण्ठिताऽशस्त्ररूपं गृहीत्वा उच्चारयितुः शिरसि निपतति।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। अत्र **"अनक्षरमनायुष्यम्" "निस्वरम्" "अक्षताः शस्त्ररूपेण"** इति च पाठान्तराणि। के चन **"अनक्षरं हता-युष्यम्"** इत्यपि पठन्ति। **"अक्षताऽस्त्रस्वरूपेण"** इति पाठस्तु अर्थदृष्ट्या समुचित-तर आवश्यकश् च भाति। पूर्वपद्येन मुख्यतया स्वरतो हीनस्य मन्त्रस्य प्रयोगे हानिर् वर्णिता, एतेन पद्येन वर्णतो विकलस्य मन्त्रस्य प्रयोगे हानिः, स्वरतो विकलस्य मन्त्रस्य प्रयोगे हानिश् च वर्णिता। एतद्विषये माद्ध्यन्दिनीयवाज-सनेयिशतपथब्राह्मणस्येदं वचनमपि स्मरणीयम्— **"यद् ध वा अत्राऽग्ग्ँनि-**

होत्रञ् जुह्वदद्वाद्येन वा कर्म्मणा वा मित्थ्या करोत्त्यातॅंमनस्त्तदवद्यत्त्या-युषो वा वर्च्चसो वा प्प्रजायै वा" इति (२।३।४।१८)। तत्र "वाद्येन=व्याहार-साध्येन मन्त्रोच्चारणेन" इति हि सायणव्याख्या। नारदीयशिक्षायां च– "प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः प्रयुज्यते। यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजां पशून्" इति (१।१।६)। कपिलस्मृतौ च "वर्णव्यत्यासतः प्रोक्त्या वेदेऽस्मिन् ब्रह्महा भवेत्। विसर्गबिन्दुदीर्घाणां व्यत्यासोक्तिवशादपि" इति (श्लो.४१-४२)। व्यासशिक्षायां च– "स्वराश् च प्रथमाश् चैव द्वितीया ब्रह्मजातयः। तृतीयाश् च चतुर्थाश् च क्षत्रजातय ईरिताः। उत्तमाश् चैवमन्तस्था वैश्या हि परिकीर्तिताः। अनुस्वारो विसर्गश्च ह्यूष्माणोऽवरजास् स्मृताः॥ यदन्यजातिरुच्येत तत्तत्-संहारको भवेत्। यज्जात्युच्चारणे तेषां तज्जातिपरिरक्षणम्" इति (सू.४९५-५००)। सर्वसम्मतशिक्षायां च– "उच्चरेत् परया भक्त्या सर्वकालमतन्द्रितः। यज्जातिस्खलनं तेषां तज्जातिहननं यतः" इति (श्लो.१२७)। पाराशरीयशिक्षायां च– "तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शुद्धपाठी भवेन् नरः। अन्यथा नरकं याति कुम्भी-पाकं सुदारुणम्" इति (श्लो.११४)। सुश्रुतसंहितायां च कल्पस्थाने– "मन्त्रास् त्वविधिना प्रोक्ता हीना वा स्वरवर्णतः। यस्मान् न सिद्धिमायान्ति तस्माद् योज्योऽगदक्रमः" इति (५।१३)। शङ्खस्मृतिवचनं च– "स्वरवर्णपदैर् मन्त्रं शुद्धमावर्तयेज् जपन्। न कम्पयेच् छिरो ग्रीवां दन्तान् नैव प्रदर्शयेत्" इति स्मृतिचन्द्रिकायाम् (१।१४९)। बृहन्नारदीयपुराणे च– "स्वरतो वर्णतः सम्यक् सन्ध्यास्नानजपादिषु। सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्या हीनाः स्युरफला नृणाम्" इति (१।५०।१८)।

नारदीयशिक्षायाम् "ऋक्-साम-यजुरङ्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञ्जते। अविज्ञानाद् धि शास्त्राणां तेषां भवति विस्वरः" इति वचनेन च (१।१।४) शुद्धोच्चारणज्ञानाय शिक्षाशास्त्रादिज्ञानस्याऽऽवश्यकता स्फुटीकृता। अत्राऽपि शिक्षाशास्त्राध्ययनावश्यकताप्रदर्शनायैव मन्त्रो हीन इत्यादिकं पद्यम् अवक्षरं ह्यनायुष्यमित्यादिकं पद्यं च पठितं बोध्यम्।

हिन्दी— अक्षरविकल रूप में उच्चरित वेद उच्चारयिता को आयुर्हीन करता है, स्वरविकलरूप में उच्चरित वेद उच्चारयिता को रोगपीडित करता है। अकुण्ठित अशस्त्ररूप (वर्ण-स्वर-विकल-वेदवाणी रूप) वज्र उच्चारयिता के शिर पर गिरता है।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकादि में नहीं है। इस में **"अनक्षरमनायुष्यम्" "निस्वरम्" "अक्षताः शस्त्ररूपेण"** इत्यादि पाठान्तर हैं। कोई **"अनक्षरं हतायुष्यम्"** भी पाठ मानते हैं। **"अक्षताऽस्त्रस्वरूपेण"** यह पाठ अर्थदृष्टि से समुचिततर और आवश्यक दिखाई देता है। पूर्वपद्य में मुख्यतया स्वरविकल मन्त्र के प्रयोग में हानि दिखाई गई थी। इस पद्य में वर्णविकल मन्त्र के प्रयोग में होनेवाली हानि भी मुख्यतया दिखाई गई है। माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शतपथब्राह्मण (२।३।४।१८), नारदीयशिक्षा (१।१।६), कपिलस्मृति (श्लो.४१-४२), व्यासशिक्षा (सू.४९५-५००), सर्वसम्मतशिक्षा (श्लो.१२७), पाराशरीयशिक्षा (श्लो.११४), सुश्रुतसंहिता (कल्पस्थान ५।१३), शङ्खस्मृति (द्र.- स्मृतिचन्द्रिका १।१४९), बृहन्नारदीय-पुराण (१।५०।१८) इत्यादि ग्रन्थों में भी यह विषय आया है। इन ग्रन्थों के वचन ऊपर संस्कृतव्याख्या में देखें ॥५३॥

[हस्तस्वरनिर्देशस्याऽऽवश्यकता]

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वर-वर्ण-विवर्जितम्।
ऋग्-यजुः-सामभिर् दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥५४॥

अन्वयः— यः तु हस्तहीनम् स्वरवर्णविवर्जितम् (वेदम्) अधीते ऋग्-यजुः-सामभिः दग्धः (सः) वियोनिम् अधिगच्छति।

शब्दार्थः— यः= साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयः अध्येता, तु= हि, हस्तहीनम्=हस्तकृतस्वरसङ्केतविकलम्, स्वरवर्णविवर्जितम्=उदात्तादिभिः स्वरैः अकारादिभिर् वर्णैश् च विकलम्, वेदम्= आम्नायम्, अधीते= पठति, ऋग्-

यजुः-सामभिः= छन्दःपादबद्धमन्त्र-गद्यमन्त्र-गेयमन्त्रैः, दग्धः= प्लुष्टः, (सः= आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयः अध्येता), वियोनिम्= वर्णबाह्यमनुष्य-पशु-मृग-पक्षि-सरीसृप-कीट-कृमि-स्थावरविशेषादिकुयोनिम्, अधिगच्छति=प्राप्नोति।

सरलार्थः— यो द्विजो हस्तस्वरसङ्केतरहितम् उदात्तादिभिः स्वरैः अकारादिभिर् वर्णैश् च विकलं वेदमधीते पादबद्धमन्त्र-गद्यमन्त्र-गेयमन्त्ररूपैः ऋग्-यजुः-सामभिः प्लुष्टः स द्विजो वर्णबाह्यमनुष्यपशुमृगपक्षिसरीसृपकीट-कृमिस्थावरविशेषादिकुयोनिं प्राप्नोति।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकादिषु नोपात्तम्। हस्तस्वरविषयकमेतत् पद्यमुदात्तमाख्यातीत्यादिप्रकरणे निवेशयितुं शक्यमपि स्वरवर्णहीनवेदाध्ययन-निन्दाप्रकरणवशादत्र निवेशितं बोध्यम्। एतत् पद्यं शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो. ७९), याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.४२), सर्वसम्मतशिक्षायाम् (श्लो.१२९), माण्डूकीयशिक्षायां च (श्लो.३२) दृश्यते। एतद्विषयकाणि अन्यानि वचनानि च शैशिरीयशिक्षादिष्वपि दृश्यन्ते। तथा हि शैशिरीयशिक्षायाम्— **"स्वरश्चैव तु हस्तश्च द्वयं तु युगपद् भवेत्। हस्ताद् भ्रष्टः स्वराद् भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते"** इति (श्लो.७४)। एतत् पद्यं याज्ञवल्क्यशिक्षायां च स्वल्पेन पाठान्तरेण पठ्यते (श्लो.२३–२४); तथैव माण्डूकीयशिक्षायामपि दृश्यते (श्लो.३०–३१)। याज्ञ-वल्क्यशिक्षायाम्— **"ऋचो यजूंषि सामानि हस्तहीनानि यः पठेत्। अनृचो ब्राह्मणस् तावद् यावत् स्वारं न विन्दति"** इति (श्लो.४१) च पठ्यते। एतत् पद्यं स्वल्पेन पाठान्तरेण माण्डूकीयशिक्षायामपि पठ्यते (श्लो.३३)। कौहलीय-शिक्षायाम्— **"अतोऽन्यथा तु यो मर्त्यो निर्दिशेन् मतिमोहितः। स गच्छेन् नरकं घोरं पापयोनिषु जायते"** इति (श्लो.४०) च दृश्यते। सर्वसम्मतशिक्षायाम्— **"हस्ताद् भ्रष्टस् स्वराद् भ्रष्टो वर्णात् कालात् तथाऽर्थतः। प्रयोगाच् च परिभ्रष्टो न वेदफलमश्नुते"** इति (श्लो.१२८) च प्रोक्तम्। नानाशाखावेदेषु प्रयुक्ता हस्तस्वरप्रक्रियाः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (पृ.४०१–४३३) वर्णिताः प्राप्यन्त इति जिज्ञासुभिस् तास् तत्रैव द्रष्टव्याः।

हिन्दी— जो व्यक्ति हस्तकृत स्वरनिर्देश से विकल रूप में और उदात्तादि स्वर से और अकारादि वर्ण से विकल रूप में वेद को पढता है वह व्यक्ति ऋक् यजु और साम (पादबद्ध मन्त्र, गद्य मन्त्र और गेय मन्त्र) से दग्ध हो कर वर्णबाह्यमनुष्य(म्लेच्छ)-पशु-मृग-पक्षि-सरीसृप-कीट-कृमि-स्थावरविशेषादि-निकृष्ट-योनि में प्राप्त होता है।

विशेष— हस्तस्वर से सम्बद्ध होने पर भी यह पद्य स्वरवर्णविकल वेदपाठ के दोष के प्रकरण के अनुरोध से यहाँ पढा गया है। इस प्रकार के पद्य शैशिरीयशिक्षा, याज्ञवल्क्यशिक्षा, कौहलीयशिक्षा, सर्वसम्मत-शिक्षा, माण्डूकीयशिक्षा इत्यादि अन्य शिक्षाओं में भी मिलते हैं। विभिन्न शाखा के वेदों के विभिन्न हस्तस्वरप्रक्रियाओं का वर्णन कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षा के स्वराध्याय में (पृ.४०१-४३३) उपलब्ध है॥५४॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वर-वर्णा-ऽर्थसंयुतम्।
ऋग्-यजुः-सामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते॥५५॥

अन्वयः— यः स्वरवर्णार्थसंयुतम् वेदम् हस्तेन अधीते, ऋग्-यजुः-सामभिः पूतः (सः) ब्रह्मलोके महीयते।

शब्दार्थः— यः= साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयभूतोऽध्येता, स्वर-वर्णाऽर्थ-संयुतम्= उदात्तादिभिः स्वरैः, अकारादिभिर् वर्णैः, अर्थज्ञानेन चाऽविकलम्, वेदम्=आम्नायम्, हस्तेन=हस्तकृतस्वरादिनिर्देशेन सह, अधीते=पठति, ऋग्-यजुःसामभिः= पादबद्धमन्त्र-गद्यमन्त्र-गेयमन्त्रैः, पूतः= परिशुद्धः, (सः= आ-काङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयभूतोऽध्येता), ब्रह्मलोके=परमेष्ठिभुवने (ब्राह्मण-समाजे वा), महीयते=पूज्यते।

सरलार्थः— यः उदात्तादिभिः स्वरैः, अकारादिभिर् वर्णैः, अर्थज्ञानेन चाऽविकलं वेदं हस्तकृतस्वरनिर्देशेन सह पठति सः ऋग्-यजुः-सामभिः परि-पूतो ब्रह्मलोके (ब्राह्मणसमाजे वा) पूजितो भवति।

व्याख्या— हस्तस्वरविषयकमेतत् पद्यम् उदात्तमाख्यातीत्यादिहस्तस्वरप्रकरणे निवेश्यमपि हस्तस्वरनिर्देशविकलाध्ययननिन्दाप्रतिपादने तद्विपरीतार्थकत्वेन स्मरणादत्र निवेशितं बोध्यम्। एतत् पद्यं शम्भुशिक्षावचनत्वेन व्यासशिक्षाव्याख्याने वेदतैजसे उद्धृतम् (सू.३३५–३३६), किन्तु इदानीन्तने शम्भुशिक्षाहस्तलेखे नोपलभ्यते। एतादृशं पद्यं शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.८०), याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.४४) च दृश्यते। व्यासशिक्षायां च— **"सुहस्तस्वरविन्यासान् निर्मलाध्ययनम् भवेत्। तत्पूतो ब्राह्मणो यस्तु ब्रह्मणा सह मोदते"** इति (सू.३३५–३३६), माण्डूकीयशिक्षायां च— **"हस्तेनाऽधीयमानो यः स्वरवर्णान् प्रयोजयेत्। ऋग्-यजुः-सामभिः पूतो ब्रह्मलोकं स गच्छति"** इति (श्लो.३४) प्रोक्तम्।

हिन्दी— जो अध्येता उदात्तादि स्वर से अकारादि वर्ण से और अर्थज्ञान से अविकल वेद का हस्तकृत स्वरादिनिर्देश के साथ अध्ययन करता है वह अध्येता पादबद्धमन्त्ररूप ऋक्, गद्यमन्त्ररूप यजु, और गेयमन्त्ररूप साम से परिपूत होकर ब्रह्मलोक में अथवा ब्राह्मणसमाज में भी पूजित होता है।

विशेष— पूर्व पद्य के अर्थ के विपरीत अर्थ को बताने वाला यह पद्य वैपरीत्यसम्बन्ध से स्मृतिविषय होने से यहाँ पढा गया है। इस प्रकार के पद्य शैशिरीयशिक्षादि में भी मिलते हैं ॥५५॥

[शिक्षाशास्त्रगुरुपरम्परा, पाणिनिगौरवं च]

शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद् दाक्षीपुत्त्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥५६॥

अन्वयः— शङ्करः वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य शाङ्करीम् देवीम् वाचम् धीमते दाक्षीपुत्त्राय प्रादात् इति स्थितिः।

शब्दार्थः— शङ्करः= शिवः, वाङ्मयेभ्यः= श्रुतिस्मृतिपुराणादिभ्यो वाग्-विभूतिभ्यः, समाहृत्य= सारं सङ्गृह्य, शाङ्करीम्= शङ्करसम्बद्धां कल्याण-कारिणीं वा, देवीम्= द्योतनशीलाम्, वाचम्= वर्णसमाम्नायरूपां वाणीम्, धीमते= बुद्धियुताय, दाक्षीपुत्राय= दाक्ष्याः सुताय (पाणिनये), प्रादात्= व्यतारीत्, इति= एवम्, स्थितिः= निश्चयः।

सरलार्थः— शङ्करः श्रुतिस्मृतिपुराणादिभ्यो वाङ्मयेभ्यः सारं सङ्गृह्य कल्याणकारिणीं द्योतनशीलां वर्णसमाम्नायरूपां वाणीं दाक्षीसुताय पाणिनये प्रादादिति पाणिनीयवैयाकरणनिकायस्य धारणाऽस्ति।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां चाऽस्ति। **"कालतो नियमा अचि"** (श्लो.११), **"अचोऽस्पृष्टाः"** (श्लो.३८), **"अमोऽनुनासिका अह्नः"** (श्लो.३९) इत्यादिषु स्थलेषु पाणिनीयैः प्रत्याहारैरियं शिक्षा निबद्धा। प्रत्याहारसूत्राणि च पाणिनिना शङ्करादधिगतानि इति वैयाकरण-निकाये प्रसिद्धिः। अतोऽत्र पाणिनीयविद्यासम्प्रदायस्य स्तुतिः कृता बोध्येति **पञ्जिकाकार** उत्तरश्लोकव्याख्याने प्राह।

हिन्दी— शङ्कर ने श्रुति-स्मृति-पुराणादि वाङ्मय से सार निकाल कर कल्याणकारिणी इस वर्णसमाम्नायरूप वाणी को बुद्धिमान् दाक्षीपुत्र पाणिनि को दिया, यही पाणिनीयवैयाकरणनिकाय की धारणा है।

विशेष— "कालतो नियमा अचि" (श्लो.११), "अचोऽस्पृष्टाः" (श्लो.३८), "अमोऽनुनासिका अह्नः" (श्लो.३९) इत्यादि स्थल में अच् यण् शल् हल् अम् इत्यादि पाणिनीय प्रत्याहारों को लेकर यह शिक्षा निबद्ध हुई है। पाणिनि को शङ्कर से वर्णसमाम्नायसूत्रों के रूप में इन प्रत्या-हारों के मिलने की बात पाणिनीयवैयाकरणनिकाय में प्रसिद्ध है। अतः यहाँ पाणिनीय विद्यापरम्परा की और पाणिनि की स्तुति की गई है। यह बात पञ्जिकाकार ने उत्तरश्लोक की व्याख्या में स्पष्ट की है॥५६॥

येनाऽक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥५७॥

अन्वयः— येन महेश्वरात् अक्षरसमाम्नायम् अधिगम्य कृत्स्नम् व्याकरणम् प्रोक्तम् तस्मै पाणिनये नमः (क्रियते)।

शब्दार्थः— येन= साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयेण पाणिनिना, महेश्वरात्= शङ्करात्, अक्षरसमाम्नायम्= वर्णसमाम्नायम् (अइउणित्यादिकं वर्णसङ्घातो-पदेशम्), अधिगम्य= प्राप्य, कृत्स्नम्= धातुपारायण-नामपारायणादिसहितं (धातुपाठ-गणपाठादिसहितं) सम्पूर्णम्, व्याकरणम्= वाक्यपदशास्त्रम्, प्रोक्तम्= कथितम्, तस्मै= आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयाय, पाणिनये= पाणिनिसगोत्राय मुनये, नमः=प्रणामः, (क्रियते=विधीयते)।

सरलार्थः— येन शङ्कराद् वर्णसमाम्नायसूत्राणि प्राप्य सम्पूर्णं व्याकरणशास्त्रं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये मुनये नमः क्रियते।

व्याख्या— एतत् पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां चाऽस्ति। अत्र "नृत्ताऽवसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्। उद्धर्तुकामः सनकादि-सिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्" इत्यादिका प्रसिद्धिरनुसन्धेया।

हिन्दी— जिन्हों ने महेश्वर से अइउण् इत्यादि वर्णसमाम्नायसूत्र प्राप्त करके सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र बताया उन पाणिनि मुनि को नमस्कार किया जाता है।

विशेष— यहाँ "नृत्तावसाने" इत्यादि पद्य से सङ्गृहीत पाणिनीय-वैयाकरणनिकाय में प्रसिद्ध पाणिनीय-व्याकरणशास्त्रावतारकथा अनु-सन्धेय है।

व्याकरणप्रवक्ता पाणिनि का पाणिनि यह नाम गोत्रनाम विदित होता है। प्रवराध्याय के अनुसार पाणिनि गोत्र विश्वामित्रगण का है।

(पाणिनि के और पाणिनिप्रोक्त व्याकरण के वैशिष्ट्य के विषय में इसी ग्रन्थ की भूमिका को देखें) ॥५७॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश् चाऽज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥५८॥

अन्वयः— येन विमलैः शब्दवारिभिः पुंसाम् गिरः धौताः अज्ञानजम् तमः च भिन्नम् तस्मै पाणिनये नमः (क्रियते)।

शब्दार्थः— येन=साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयभूतेन पाणिनिना, विमलैः= स्वच्छैः, शब्दवारिभिः=शब्दरूपैर् जलैः, पुंसाम्=जनानाम्, गिरः=वाचः, धौताः= प्रक्षालिताः, अज्ञानजम्= अबोधभवम्, तमः= आन्ध्यम्, च= अपि, भिन्नम्= स्फोटितम् (निराकृतम्), तस्मै=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयाय, पाणिनये= दाक्षेयाय मुनये, नमः=प्रणामः (क्रियते=विधीयते)।

सरलार्थः— येन शुद्धपदवाक्यरूपैः शब्दजलैर् जनानां वचनानि विमलानि कृतानि, अज्ञानजनितोऽन्धकारश् च निराकृतः, तस्मै पाणिनये मुनये नमः क्रियते।

विशेषः— एतत् पद्यं पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां च नास्ति।

हिन्दी— जिन्हों ने शुद्धशब्दरूपी जल से मनुष्यों की वाणी को निर्मल बनाया और अज्ञानजनित अन्धकार को भी हटाया उन पाणिनि मुनि को नमस्कार किया जाता है।

विशेष— यह पद्य पञ्जिकाव्याख्या में और शिक्षाप्रकाशव्याख्या में नहीं है ॥५८॥

अज्ञानाऽन्धस्य लोकस्य ज्ञानाऽञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥५९॥

अन्वयः— येन ज्ञानाऽञ्जनशलाकया अज्ञानान्धस्य लोकस्य चक्षुः उन्मीलितम् तस्मै पाणिनये नमः (क्रियते)।

शब्दार्थः— येन=साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयभूतेन पाणिनिना, ज्ञानाञ्जन-शलाकया=ज्ञानरूपया नेत्रतिमिरहरदिव्याञ्जनेषीकया, अज्ञानान्धस्य=अबोध-पिहितचक्षुष्कस्य, लोकस्य=जनस्य, चक्षुः=लोचनम्, उन्मीलितम्=उद्घाटितम्, तस्मै=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयाय, पाणिनये=पाणिनिसगोत्राय मुनये, नमः=प्रणामः, (क्रियते=विधीयते)।

सरलार्थः— येन ज्ञानरूपया नेत्रतिमिरहरदिव्याञ्जनशलाकया अबोध-पिहितचक्षुष्कस्य जनस्य लोचनम् उद्घाटितम्, तस्मै पाणिनये मुनये नमः क्रियते।

विशेषः— एतत् पद्यमपि पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां च नोप-लभ्यते।

हिन्दी— जिन्हों ने ज्ञानरूपी अञ्जन (काजल) लगाने की शलाका (सलाई) से अज्ञानी लोगों के नयन खोले उन पाणिनि मुनि को नमस्कार किया जाता है।

विशेष— यह पद्य भी पञ्जिका व्याख्या में और शिक्षाप्रकाश-व्याख्या में नहीं है। शिक्षाप्रकाशव्याख्या में 'त्रिनयनमुखनिस्सृताम्' इत्यादि उत्तर पद्य से पहले अधोलिखित पद्य उपात्त मालूम पडता है–

दाक्षीपुत्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि।
रत्नभूतमिदं शास्त्रं पृथिव्यां सम्प्रकाशितम्॥

यह पद्य याजुष पाठ में भी तेंतीसवाँ पद्य है॥५९॥

[पाणिनीयशिक्षापठनाऽधिकारि-माहात्म्यादिकम्]

त्रिनयनमुखनिस्सृतामिमां
य इह पठेत् प्रयतः सदा द्विजः।
स भवति धनधान्यकीर्तिमान्
सुखमतुलं च समश्नुते दिवि॥ इति॥६०॥

अन्वयः— यः द्विजः प्रयतः (सन्) त्रिनयनमुखनिःसृताम् इमाम् सदा पठेत् सः इह धनधान्यकीर्तिमान् भवति, दिवि अतुलम् सुखम् च समश्नुते।

शब्दार्थः— यः= साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयभूतः, द्विजः= वेदाध्ययनार्थमुपनीतो द्विजन्मा, प्रयतः= ब्रह्मचर्यभिक्षाशित्वादिना पूतः (सन्= भवन्), त्रिनयनमुखनिःसृताम्=शङ्करवदननिर्गताम्, इमाम्=एतां प्रोक्तां शिक्षाम्, सदा= सर्वदा, पठेत्=अधीयीत, सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयभूतो द्विजः, इह= एतस्मिन् लोके, धन-धान्य-कीर्तिमान्=हिरण्याऽन्न-यशोयुक्तः, भवति=जायते, दिवि=द्युलोके, अतुलम्=अनन्यसदृशम्, सुखम्=आनन्दम्, समश्नुते=प्राप्नोति।

सरलार्थः— यो वेदाध्ययनार्थमुपनीतो द्विजन्मा नियमपालनेन पूतः सन् शङ्करवदननिर्गताम् एतां शिक्षां सदा पठति स इहलोके धन-धान्य-कीर्तियुतो भवति, दिवि च सालोक्यमुक्तिरूपं परमं सुखं प्राप्नोति।

व्याख्या— एतत् पद्यम् पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां याजुषपाठे चोपात्तम्। मूले पठितः पाठः पञ्जिकानुसारी वर्तते। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां तु त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमामिति पाठो वर्तते। किन्तु स तत्र निर्दिष्टस्य च्छन्दसोऽनुकूलो नास्ति। अस्य पद्यस्य लौकिकच्छन्दसि वैतालीयं जातिः, **"वैतालीयं द्विःस्वरा अयुक्पादे, युग् वसवोऽन्ते र्ल्गः"** इति पिङ्गलसूत्रात् (४।३२), **"षड् विषमेऽष्टौ समे कलास् ताश् च समे स्युर् नो निरन्तराः। न समाऽत्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः"** इति वृत्तरत्नाकरलक्षणाच् च (२।३३), तथैव गङ्गादासकृतच्छन्दोमञ्जरीवचनाच् च (५।१०)। एवं चाऽत्र पद्ये विषमयोः पादयोश् चतुर्दश मात्राः, समयोः पादयोश्च षोडश मात्रा ज्ञेयाः।

एतच् च पञ्जिकानुसारमुक्तम् बोध्यम्। शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां तु **"विकृतिच्छन्दस्यर्धसममपरवक्त्रवृत्तम्। अर्धसमा अर्धे** (५।३१) इत्यधिकृत्य **'अपरवक्त्रं नौ र्लौ ग्, न्जौ ज्रौ'** इति सूत्रात् (५।४०)" इति प्रोक्तं ज्ञेयम्। एतत्पक्षेऽत्र पद्ये विषमयोः पादयोरेकादशाऽक्षराणि, समयोः पादयोश् च द्वादशाऽक्षराणि आवश्यकानि भवन्ति। एवं चाऽत्र **"वदन्त्यपरवक्त्राख्यं वैतालीयं विपश्चितः। पुष्पिताग्राभिधं केचिदौपच्छन्दसिकं तथा"** इत्युक्तिरपि (वृत्तरत्नाकरे ४।११) स्मरणीया। एवं च **"त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत् प्रयतश्च सदा द्विजः। स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानतुलं च सुखं समश्नुते दिवि"** इति शिक्षासङ्ग्रहादिषु पठितः पाठः पञ्जिकाकार-शिक्षाप्रकाशव्याख्याकारयोर् द्वयोरेव मतेन भ्रष्ट एवाऽवगम्यते। काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीय-साङ्ख्याध्यापकेन वेचनरामत्रिपाठिना परिशोधितायाम् १८८७ तमे क्रैस्ताब्दे (१९४४ वै.) मुद्रितायां "भाष्येण सहितायां" पाणिनीयशिक्षायाम्, प.कनकलाल-शर्मणा मैथिलेन संशोधिते पाणिनीयशिक्षादिसङ्ग्रहे सङ्गृहीतायां जयकृष्ण-दासेन वाराणस्यां मुद्रापितायां पाणिनीयशिक्षायाम्, पण्डितनारायणदत्त(नृसिंह)-त्रिपाठिना व्याख्यातायां पण्डित-कालीप्रसादमिश्रेण व्याख्यातायां पाणिनीय-शिक्षायां चाऽस्माभिर् मूले दत्तः पाठ एवाऽवलम्बितो दृश्यते इति च बोध्यम्।

विशेषः— सर्वेषु ग्रन्थेषु अनुबन्धचतुष्टयं प्रतिपादनीयं भवति; तदुक्तमभि-युक्तैः– **"विना विषयसम्बन्धौ तथैवाऽर्थाधिकारिणौ। अनाख्येयो भवेद् ग्रन्थस् तस्मादेतच् चतुष्टयम्"** इति। कुमारिलभट्टकृते श्लोकवार्तिकेऽपि प्रतिज्ञासूत्रे **"सिद्धार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः"** इत्यादि प्रोक्तम् (श्लो.१७-)। अतोऽत्राऽपि **"अथ शिक्षाम्"** इत्यादिके प्रथमे पद्ये शिक्षारूपो विषयः प्रतिपादितः। विषयग्रन्थयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादक-भावः सम्बन्धः सुस्फुट एव। **"त्रिनयनमुखनिःसृतामिमाम्"** इत्यादिकेऽन्तिमे पद्ये च द्विजस्योल्लेखाद् वेदाध्ययनार्थमुपनीतो द्विजन्माऽत्र ग्रन्थे पठनायाऽधि-कारी सूचितः। ऐहलौकिकी धनधान्ययशोवृद्धिः आमुष्मिकी सालोक्यमुक्तिश् चेति द्वयं फलमुक्तमिति अनुबन्धचतुष्टयं प्रतिपादितं बोध्यम्।

हिन्दी– जो द्विजाति प्रयत होकर शङ्कर के मुख से निकली हुई इस शिक्षा को सदा पढता है, वह इस लोक में धन-धान्य-कीर्ति से युक्त होता है और द्युलोक में अतुल सुख (=सालोक्यमुक्ति) को प्राप्त करता है।

विशेष– यह पद्य पञ्जिका व्याख्या में शिक्षाप्रकाशव्याख्या में और याजुषपाठ में भी उपलब्ध है। इस पद्य का मूल में दिया हुआ पाठ पञ्जिकानुसारी है। यही पाठ शिक्षाप्रकाशव्याख्या का भी सम्मत मालूम पडता है। याजुषपाठ में भी यही पाठ मिलता है। पण्डित बेचनराम त्रिपाठी ने, पण्डित कनकलालशर्मा मैथिल ने, पण्डित नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी ने और पण्डित कालीप्रसाद मिश्र ने भी इसी पाठ को लिया है। शिक्षासङ्ग्रह-सिद्धान्तकौमुदीपरिशिष्ट-शिक्षादिवेदषडङ्गादि में पठित पाठ भ्रष्ट मालूम पडता है।

इस ग्रन्थ में ग्रन्थ का विषय, ग्रन्थविषयसम्बन्ध, ग्रन्थ पढने में अधिकारी और ग्रन्थप्रयोजन भी सूचित हैं। ग्रन्थ का विषय शिक्षा (वर्णाद्युच्चारणज्ञान) प्रथम श्लोक में ही प्रतिपादित है। ग्रन्थ का और विषय का प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव सम्बन्ध सुस्पष्ट होने से विशेषतया सूचनीय नहीं होता है। अधिकारी के रूप में द्विज को और प्रयोजन के रूप में ऐहिक धनधान्ययशःप्राप्ति को तथा आमुष्मिक अतुलसुख-(=सालोक्यमुक्ति)- प्राप्ति को त्रिनयनमुखनिःसृतामिमाम् इत्यादि श्लोक में प्रतिपादित किया गया है। अतः यह शिक्षा द्विजों के लिए सदा पठनीय है– यह बात सिद्ध होती है॥६०॥

(अथ शिक्षामात्मोदात्तश् च हकारं स्वराणां यथा गीत्यचोऽस्पृष्टा उदात्तं चाषस् तु शङ्कर एकादश)॥

व्याख्या– एतस्यां शिक्षायामेकादश खण्डाः सन्ति। तत्र च अथ शिक्षामित्यादिकः प्रथमः खण्डः, आत्मेत्यादिको द्वितीयः खण्डः, उदात्तश् चेत्यादिकस् तृतीयः खण्डः, हकारमित्यादिकश् चतुर्थः खण्डः, स्वराणामित्यादिकः

पञ्चमः खण्ड·, यथेत्यादिकः षष्ठः खण्डः, गीतीत्यादिकः सप्तमः खण्डः, **अचोऽस्पृष्टा** इत्यादिकोऽष्टमः खण्डः, **उदात्तमित्यादिको** नवमः खण्डः, **चाषस्त्वित्यादिको** दशमः खण्डः, **शङ्कर** इत्त्यादिक एकादशः खण्डः इत्येकादश खण्डा ज्ञेयाः। तत्र च प्रतिखण्डं पञ्च श्लोका इति सङ्कलने पञ्चपञ्चाशत् श्लोका एतस्यां शिक्षायां मूलरूपेण स्थिताः, तदतिरिक्ताः पञ्च श्लोकाः प्रक्षिप्ता इति के चन मन्यन्ते। किन्तु खण्डानामनिश्चितत्वात् खण्डेषु श्लोकानामियत्ताया अनिश्चितत्वाच् च तच् चिन्तनीयमेवाऽस्ति। पञ्जिकायां शिक्षाप्रकाशव्याख्यायां चैतस्याः खण्डगणनाफक्किकायाः कोऽपि सङ्केतो न दृश्यते। पण्डितबेचनरामत्रिपाठिना पण्डितकनकलालशर्मणा मैथिलेन चाऽस्याः फक्किकायाः पाणिनीयशिक्षायां समावेशो न प्रदर्शितः। पण्डितकालीप्रसादमिश्रेणाऽपि अस्याः फक्किकाया मूलपाठत्वेन मुद्रणं न कृतम्। शिक्षासङ्ग्रहादिषु तु एषा फक्किका दृश्यत एव। तथापि वीरमित्रोदयपरिभाषाप्रकाशे (पृ.२०) मित्रमिश्रकृतायाः, शिवमहिम्नस्तोत्रव्याख्यायाम् (श्लो.७) मधुसूदनसरस्वतीकृतायाश् च पाणिनीयशिक्षाखण्डगणनाया विचारे एतस्याः फक्किकाया महत्त्वं नाऽधिकं प्रतीयते। एतस्याः फक्किकायाः पण्डितरुद्रप्रतापादिसंस्करणेषु एकषष्टितमपद्यरूपेण मुद्रणं तु प्रामादिकमेवाऽवसीयते। "नेदं सार्वत्रिकं पद्यम्" इति नारायणदत्तत्रिपाठि-व्याख्याटिप्पण्यां हरगोविन्दमिश्रेणोक्तमप्ययुक्तमेवं।

हिन्दी– "**अथ शिक्षाम्**" (श्लो.१) से प्रथम खण्ड, "**आत्मा बुद्ध्या**" (श्लो.६) से द्वितीय खण्ड, "**उदात्तश्चाऽनुदात्तश्च**" (श्लो.११) से तृतीय खण्ड, "**हकारं पञ्चमैर् युक्तम्**" (श्लो.१६) से चतुर्थ खण्ड, "**स्वराणामूष्मणां चैव**" (श्लो.२१) से पञ्चम खण्ड, "**यथा सौराष्ट्रिका नारी**" (श्लो.२६) से षष्ठ खण्ड, "**गीती शीघ्री**" (श्लो.३२) से सप्तम खण्ड, "**अचोऽस्पृष्टाः**" (श्लो.३८) से अष्टम खण्ड, "**उदात्तमाख्याति**" (श्लो.४३) से नवम खण्ड, "**चाषस्तु वदते**" (श्लो.४९) से दशम खण्ड और "**शङ्करः शाङ्करीम्**" (श्लो.५६) से एकादश खण्ड का आरम्भ होता है। इस प्रकार इस शिक्षा में कूल ग्यारह खण्ड हैं।

विशेष— उक्त खण्डगणना के अनुसार खण्डों को समान पद्य-सङ्ख्या में विभक्त मानने पर इस शिक्षा में कूल ५५ पद्य होने चाहिए। पण्डित कालीप्रसाद मिश्र भी ऐसा ही मानते हैं। किन्तु इस में ६० पद्य (अथवा ५८ पद्य और २ गद्यफक्किकाएँ) मिल रहे हैं। अतः ५ पद्यों को कतिपय व्याख्याकार प्रक्षिप्त मानते हैं। किन्तु पञ्जिका व्याख्या में और शिक्षाप्रकाशव्याख्या में भी इस खण्डगणनाफक्किका का कोई उल्लेख नहीं है और मित्रमिश्र ने वीरमित्रोदयपरिभाषाप्रकाशं में (वाराणसी-संस्करण, पृ.२०) इस शिक्षा में केवल पाँच खण्ड और मधुसूदनसरस्वती ने शिवमहिम्नस्तोत्रटीका में (श्लो.७) केवल नौ खण्ड बताए हैं। अतः इसी खण्डगणनाफक्किका के आधार पर ही ग्रन्थ की इयत्ता निश्चित करना युक्तिसङ्गत नहीं लगता है।

इतने में श्रीयुत गुरु के मुख से उच्चरित होने पर अपने से उच्चरित करके किए गए अध्ययन से अपनी शाखा के वेदमन्त्रसंहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, कल्पसूत्र इत्यादि ग्रन्थों की समाप्ति करने वाले तथा वेदों के और वेदाङ्ग-स्मृति-पुराणादि शास्त्रों के अवलोकन में लगे रहने वाले, काव्यप्रकाश की हैमवती नाम की संस्कृतविवृति, वेदभाषानिघण्टु, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा, नारदीयशिक्षा की शिक्षाविवेचनी नाम की संस्कृत-व्याख्या, ब्रह्ममीमांसासूत्र-कौण्डिन्न्यायनवृत्ति, लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्ग-ज्योतिष की विस्तृतभूमिकायुक्त संस्कृतव्याख्या इत्यादि ग्रन्थ के कर्ता, गण्डकीप्रदेश के मध्य में स्थित त्रितुङ्गाचल जनपद के चुँदितामाकोट-तेर्सेपानि ग्राम में निवास करने वाले पूर्वपुरुषों से और नेपाली भाषा के आदिकवि भानुभक्त आचार्य से विशेष रूप से विख्यापित श्रीकृष्ण आचार्य के वंश में उत्पन्न तथा माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायी वार्तावृत्तिगृहस्थ शिवराज आचार्य नाम के शुद्धकुलीन उपाध्याय ब्राह्मण से की गई **पाणिनीयशिक्षा की नारायणी नाम की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥**

वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्यव्याख्याकारपरिचयः

एतद्ब्रह्माण्डमध्यस्थे भूर्लोकान्तर्गते शुभे।
जम्बूद्वीपे भारते च कुमारीखण्डके तथा ॥१॥
हिमवत्खण्डमध्यस्थे नेपालाख्याभिविश्रुते।
प्रदेशेऽन्तर्गतिऽद्यत्वे गण्डकीक्षेत्रमध्यगे ॥२॥
शालग्रामशिलायोन्याः कृष्णायाः पूर्वतः स्थिते।
शुक्लया चैव माहेन्द्र्या पूते कर्मदयाऽपि च ॥३॥
स्थिते गौरीगुरोरङ्के तत्पादैः सर्वतो युते।
ख्याते जनपदे प्रोच्चत्रितुङ्गाचलमण्डिते ॥४॥
वसिष्ठस्याऽरुन्धतीतोऽन्यस्यां पत्न्यां समुद्गतः।
मैत्रावरुणनामा य ऋषिस् तस्य सुतस्य च ॥५॥
कुण्डिनस्य ऋषेर् मन्त्रद्रष्टुर् वंशे समुद्गतः।
माद्ध्यन्दिनीयकाचार्यो वार्तावृत्तिगृहस्थकः ॥६॥
नारनाथिश् च पाद्मेयो मतिवारिधिशिष्यकः।
शिवाभिधो ह्यतनुत व्याख्यामेतां द्विजोत्तमः ॥७॥

इस ब्रह्माण्ड के मध्य में रहे हुए भूर्लोक के अन्तर्गत जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में कुमारिकाखण्ड में हिमवत्खण्ड के मध्य में रहे हुए और आजकल नेपाल नाम से प्रसिद्ध देश में अन्तर्भूत तथा गण्डकीप्रदेश के मध्य में वर्तमान और शालग्रामशिला की उत्पत्ति वाली कृष्णा गण्डकी से पूर्व में स्थित तथा शुक्ला (सेति) नदी से, माहेन्द्री (मादि) नदी से और कर्मदा (मर्स्याङ्दि) नदी से पावित, गौरीगुरु हिमालय के गोद में वर्तमान तथा उनके प्रत्यन्तपर्वतों से युक्त और त्रितुङ्ग पर्वत से अलङ्कृत प्रसिद्ध जनपद में (तनुङ् [तनहुँ] जिले में) वसिष्ठ ऋषि की अरुन्धती से भिन्न पत्नी में उत्पन्न मैत्रावरुण नामक जो ऋषि हैं उनके पुत्र मन्त्रद्रष्टा ऋषि कुण्डिन के वंश में उत्पन्न, सुगृहीतनामा प.क.नरनाथ आचार्य (१९६२–२०४५ वै.) और पद्मा देवी (१९७२ वै.–) के पुत्र तथा सुगृहीतनामा प.बुद्धिसागर पराजुलि (१९७०–२०४९ वै.) के शिष्य, माध्यन्दिनीयशाखा

प्रविष्टे चन्द्ररसखबाणैः सम्मितके शुभे (५०६१)।
कृष्णस्वर्गारोहणतो गणिते तु युगाब्दके ॥८॥
नेत्रबाणखनेत्रैश्च मिते वैक्क्रमवत्सरे (२०५२)।
त्वाष्ट्रे पञ्चाब्दके वेदप्रोक्ते पञ्चमके युगे ॥९॥
सर्वँवत्सराक्ख्ये प्रथमे वर्षे चैवोत्तरायणे।
शिशिरर्तौ तपोमासे शुक्ले पक्क्षे च पक्क्षतौ ॥१०॥
धनुर्मासे निरयणे सप्तमे दिवसे स्थिते।
सायनं मकरं प्राप्ते सूर्ये मूलयुते विधौ ॥११॥
शिक्षायाः पाणिनीयानामादृतायाः सुधीजनैः।
व्याख्येयं पूर्णतां प्राप्ता लीलया परमात्मनः ॥१२॥
"अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलनम्रताम्।
अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यदल्पमपि तद् बहु ॥१३॥

के आचार्य और वार्तावृत्ति अल्पसम्भार गृहस्थ शिननामक ब्राह्मण (शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन) ने यह व्याख्या की॥१–७॥

कृष्ण के स्वर्गारोहण के समय से गिने गए कलिसंवत् के पाँच हजार एकसठवाँ वर्ष प्रविष्ट होने पर, विक्रमसंवत् के दो हजार बावनवाँ वर्ष रहने पर, वैदिक पञ्च-वर्षात्मक युगों से निष्पन्न होने वाले प्रभवादि चान्द्र साठ वर्षों के चक्र में आने वाले वैष्णवादि बारह पञ्चवर्षात्मक युगों में पाँचवे त्वाष्ट्र युग में, उसके पहले संवत्सर नाम के (प्रभवादि चान्द्र साठ संवत्सरों में इक्कीसवें सर्वजित् नाम के) वर्ष में, उत्तरायण में शिशिर ऋतु में तपोमास में (लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषअनुसार के वैदिक माघ-मास में), शुक्लपक्ष में, प्रतिपदा तिथि में, निरयण धनुर्मास के सातवें दिन में, सूर्य सायन मकरराशि में पहुँचने पर, चन्द्रमा मूलनक्षत्र में रहने पर, विद्वज्जनों से आदृत पाणिनीयशिक्षा की यह व्याख्या परमात्मा की लीला से पूर्णता में पहुँची॥८–१२॥

दूसरों को सन्ताप न देकर, दुर्जनों के प्रति न झुककर और सज्जन के मार्ग को न छोडकर जो थोडा भी मिलता है वह बहुत है॥१३॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नाऽलमेकस्य तृप्त्यर्थमिति पश्यन् न मुह्यति॥१४॥

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन् न जीव्यते॥१५॥

सर्वासामेव वृत्तीनां वृत्ती राजकुलाश्रया।
अधर्मबहुला ह्येषा नित्योद्वेगा च भारत॥१६॥

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्द्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिस् तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि॥१७॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन।
अजिह्म्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्म्मणजीविकाम्॥१८॥

पृथिवी में जो जितना अन्न, नकत, पशु और स्त्रियाँ हैं, वह सब भी एक पुरुष की तृप्ति के लिए भी पर्याप्त नहीं, इस तथ्य को देख सकने वाला पुरुष मोह में नहीं पडता है॥१४॥

हजार गायों से अथवा सुवर्णों से युक्त लोग भी जीवनयात्रा चलाते हैं, सौ गायों से अथवा सुवर्णों से युक्त लोग भी जीवनयात्रा चलाते हैं, हे धृतराष्ट्र अधिक की इच्छा छोडो, किसी प्रकार से भी जीवनयात्रा नहीं चलती है यह बात नहीं है॥१५॥

हे भरतवंशज, सभी जीविकोपायों में राजकुल में आश्रित जीविकोपाय अधर्म-बाहुल्य से युक्त और सदा ही हृदय में उद्वेग लाने वाला भी है॥१६॥

प्राणियों का द्रोह न करके ही अथवा कम द्रोह करके ही जो जीवनोपाय होता है उसी का आश्रय लेकर आपत्काल न होने पर ब्राह्मण जीवनयात्रा चलाए॥१७॥

ब्राह्मण जीवनोपाय के लिए परीक्षकेतर साधारण लोक के छल-छद्म-कौटिल्य-भूतद्रोहादियुक्त क्रियाकलापों को न अपनाए, अकुटिल खुला और क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-वृत्तियों से अमिश्रित शुद्ध ब्राह्मणवृत्ति लेकर जीवनयात्रा चलाए॥१८॥

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाद्ध्यायस्स्य विरोधिनः।
यथा तथाऽध्यापयँस् तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता॥१९॥
वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याऽभिजनस्य च।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन् विचरेदिह॥२०॥
विद्याचारित्रगोत्राणां रक्षणाय कुलस्स्य च।
जायेयेति हि जायायां सिञ्चेद् रेतो यथाविधि॥२१॥
आत्मार्थं पाचनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।
वृत्त्यर्थं यस्य चाऽधीतं निरर्थं तस्य जीवितम्॥२२॥
वृथाकृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः।
वृथामांसं च नाऽश्नीयात् प्राणात्ययभयं विना॥२३॥

अपनी शाखा के वेद के विधान के अविरोधी किसी उपाय से जीवननिर्वाह करके वेद को पढता-पढाता हुआ स्नातक गृहस्थ ब्राह्मण अपनी शाखा के वेद के विधान के विरोधी सभी विषयों का परित्याग करे, वह उस प्रकार की वेदाऽध्ययना-ऽध्यापनशीलता ही उसकी कृतकृत्यता है॥१९॥

मनुष्य अपने वय का (उम्र का), अपने काम का, अपनी सम्पत्ति का, अपने अध्ययन का और अपने कुल का भी अनुकूल रूप में वेष को (परिधान को), वाक् को (बोलचाल-व्यवहार को) और बुद्धि को (भावना को, विचार को) अपनाकर इस लोक में विचरण करे॥२०॥

कुलपरम्परागत विद्या की, चरित्र की, गोत्र की और कुल की भी रक्षा के लिए फिर जन्म लें ऐसी भावना से विधानपूर्वक अपनी धर्मपत्नी में वीर्यसेचन करे॥२१॥

जिस का पकाना अपने ही लिए है, जिस का मैथुन केवल तात्कालिक सुख के लिए है और जिस का अध्ययन केवल वृत्ति के लिए है उसका जीवन निरर्थक है॥२२॥

देवता, पितर और ब्राह्मण का उद्देश्य न करके बनाया गया कृशर (चावल-दाल-तिलमिश्रित खिचड़ी) हलवा, खीर, घी में अथवा तेल में पकाई गई रोटी, शष्कुली (तेल में अथवा घी में पकाई गई तिल-तिलकल्कादियुक्त विशेष प्रकार की रोटी) और वैसा ही मांस भी प्राणसङ्कट के विना न खाए॥२३॥

कुर्यात् सायम्प्रातरेव भोजनं नाऽतितृप्तिदम्।
नाऽन्तराऽन्नं समश्नीयादन्यत्र फलमूलतः ॥२४॥
कणं कदा चित् खादामि पिण्याकमपि च ग्रसे।
भक्क्षये शालिमांसानि भक्ष्याँश्चोच्चावचान् पुनः ॥२५॥
शये कदा चित् पर्यङ्के भूमावपि पुनः शये।
प्रासादेऽपि च मे शय्या कदा चिदुपपद्यते ॥२६॥
धारयामि च चीराणि शाणक्षौमाजिनानि च।
महार्हाणि च वासांसि धारयाम्यहमेकदा ॥२७॥
न सन्निपतितं धर्म्यमुपभोगं यदृच्छया।
प्रत्याचक्षे न चाऽप्येनमनुरुध्ये सुदुर्लभम् ॥२८॥
अनागतानां भोगानामवाञ्छनमकृत्रिमम्।
आगतानां च सम्भोग इति पण्डितलक्क्षणम् ॥२९॥

सुबह में और शाम में ही अतितृप्ति नहीं करने वाला भोजन करे, फल-मूलों से भिन्न भोजन बीच में न करे॥२४॥

कभी कणों को खाता हूँ, कभी इङ्गुदी-पिण्याकादि (खली, पिना, पीनी इत्यादि) भी खा लेता हूँ, कभी शालि का भात और मांस भी खाता हूँ, कभी विविध प्रकार के लड्डू इत्यादि स्वादिष्ट भक्ष्य भी खाता हूँ, कभी पलङ में सोता हूँ, फिर कभी भूमि में भी सोता हूँ, कभी फिर फलकों की टाँड में भी मेरा शयन हो जाता है, कभी मैं शन के अथवा क्षुमा के अथवा चमडों के वसन को भी पहनता हूँ, कभी कभी मैं बहुमूल्य और धनिकों के लिए उचित वस्त्र भी पहनता हूँ। नियति से प्राप्त और धर्म के अनुकूल उपभोग को मैं मना भी नहीं करता हूँ, अत्यन्त दुर्लभ उस उपभोग को पाने के लिए मैं विशेष प्रयास भी नहीं करता हूँ॥२५–२८॥

अप्राप्त भोगों की बनावटी रूप में नहीं वास्तविक रूप में ही इच्छा नहीं करना और प्राप्त भोगों को ठीक रीति से भोगना, यह पण्डित का लक्षण है॥२९॥

त्रिवर्गं नाऽतिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥३०॥

अर्जितं स्वेन वीर्येण नाऽप्यपाश्रित्य कञ्चन।
फलशाकमपि श्श्रेयो भोक्तुं ह्यकृपणं गृहे॥३१॥

ब्राह्म्मणस्य तु मुख्योऽयं दमो धर्मः पुरातनः।
स्वाद्ध्यायाभ्ब्यसनं चैव तत्र कर्म समाप्यते॥३२॥

तं चेद् वित्तमुपागच्छेद् वर्तमानं स्वकर्म्मणि।
अकुर्वाणं विकर्म्माणि शान्तं प्रज्ज्ञानतर्पितम्॥३३॥

कुर्वीताऽपत्यसन्तानमथो दद्याद् यजेत च।
संविभज्य च भोक्तव्यं धनं सद्भिरितीर्यते॥३४॥

परिनिष्ठितकार्यस् तु स्वाद्ध्यायेनैव ब्राह्म्मणः।
कुर्यादन्यन् न वा कुर्यान् मैत्त्रो ब्राह्म्मण उच्च्यते॥३५॥
यथोक्तान्यपि कर्म्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ज्ञाने शमे च स्याद् वेदाभ्ब्यासे च यत्नवान्॥३६॥

गृहस्थ भी ज्यादा कष्ट न उठाकर देश के अनुसार, काल के अनुसार और नियति से जो जैसा प्राप्त होता है उसी अनुसार धर्म, अर्थ और काम का भी सेवन करे॥३०॥

किंसी का भी विशेष आश्रयण न करके अपने पौरुष से अर्जित फलों को और शाकों को भी कार्पण्य नहीं करके अपने घर में भोग करना श्रेयस्कर है॥३१॥

ब्राह्मण का प्राचीन काल से ही प्रवृत्त मुख्य धर्म इन्द्रिय का दमन और स्वशाखा-वेद का अभ्यास है, उतने में ही उसका कर्म समाप्त होता है। अपने कर्म में प्रवृत्त और विकर्म में अप्रवृत्त तथा शान्त और शास्त्रज्ञान तथा लोकतत्त्वज्ञान से तृप्त उस ब्राह्मण को यदि किसी न्याय्य प्रकार से धन प्राप्त होता है तो वह सन्तति का विस्तार (फैलाव)

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वाऽपि मानवम्॥३७॥

नाऽभिनन्देत मरणं नाऽभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत न्याय्यचेष्टापरायणः॥३८॥

सर्वसाम्म्यमनायासं सत्त्यवाक्क्यं च भारत।
निर्वेदश्चाऽविधित्सा च यस्स्य स्यात् स सुखी नरः॥३९॥

मृत्त्योर् वा मुखमेतद् वै या ग्रामे वसतो रतिः।
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्ण्यमिति श्श्रुतिः॥४०॥

करे और दान दे तथा यज्ञ करे। देवताओं को पितरों को और ब्राह्मणों को भी भाग देकर धन का भोग करना चाहिए, ऐसा सज्जनों से बताया जाता है। ब्राह्मण स्वशाखावेद के अध्ययन से ही पूर्णकार्य (कृतकृत्य) हो जाता है, और अपत्योत्पादन, दान, याग इत्यादि करे अथवा न करे सभी प्राणियों के प्रति मैत्रभाव रखने वाला ब्राह्मण कहा जाता है। शास्त्र में विहित कर्मों को छोडकर भी ब्राह्मण आत्मज्ञान में, चित्त के उपशमन में और वेद के अभ्यास में भी विशेष प्रयत्नशील होवे॥३२-३६॥

मृत्यु से अथवा बुढापे से आक्रान्त मनुष्य को औषध भी नहीं बचाते हैं, मन्त्र भी नहीं बचाते हैं, होम (यज्ञ) भी नहीं बचाते हैं, जप (वेदपाठादि) भी नहीं बचाते हैं॥३७॥

मरण की कामना भी न करे, जीवन की कामना भी न करे, (जैसे मजदूर मजदूरी प्राप्त होने वाले काल की ही प्रतीक्षा करता है वैसे ही) न्याय्य चेष्टा करने वाला ब्राह्मण काल की ही प्रतीक्षा करे॥३८॥

हे भरतवंशज, सभी लोगों से बराबरी (भोगादि में अविशिष्टता), अधिक प्राप्ति के लिए विशेष प्रयास का अभाव, सत्यवचन, वैराग्य और किसी कार्य को भी सिद्ध ही करने में आग्रह का अभाव जिस के होते हैं वह मनुष्य सुखी होता है॥३९॥

गाँव में निवास करने में जो सुख का अनुभव होना है वह मृत्यु का मुख है, जो वन है वह देवताओं का घर है, ऐसी श्रुति है॥४०॥

ब्राह्म्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः।
स्रवते ब्रह्म्म तस्याऽपि भिन्नभाण्डात् पयो यथा" ॥४१॥

इत्यादिकानि शास्त्राणां भणितानि यथाबलम्।
अनुसर्तुं दृढतया यतमानः सदैव हि ॥४२॥

निष्काल्य दास्यभावं हि ब्राह्म्मण्यस्य विलोपनम्।
हृदः स्वीकृत्य वृत्तिं हि पूजावेतनरूपिकाम् ॥४३॥

अधिकार्थोपार्जनाय कर्म कर्तुं क्षमोऽपि च।
ब्राह्म्मण्येन श्रुतेर् भक्त्या चाऽपि तस्मात् पराङ्मुखः ॥४४॥

यथातथा लोकयात्रासिद्ध्या सन्तुष्टमानसः।
सुतीव्रां वेदवेदाङ्गशास्त्रभक्तिं समाश्रितः ॥४५॥

व्याख्यामेतामररचत् कालेनाऽल्पीयसैव च।
सर्वार्थसाधनी त्वत्र लीलैव परमात्मनः ॥४६॥

समदर्शी शान्त जो ब्राह्मण है यदि वह दीन दुःखियों की उपेक्षा करता है उनके उद्धार के लिए मार्गप्रदर्शनादि प्रयास नहीं करता है तो उस से पढा गया वेद भी टूटे हुए वर्तन से जल की तरह वहकर (चूकर) समाप्त हो जाता है, कल्याणकारी नहीं होता है॥४१॥

उक्त प्रकार के शास्त्रों की उक्तियों का यथाशक्ति अनुसरण करने के लिए सदा काल प्रयत्न करता हुआ, ब्राह्मणत्व का लोप करदेने वाले दासभाव को हृदय से निकाल करके और पूजावेतन रूप की वृत्ति को ही स्वीकृत करके, अधिक अर्थ के उपार्जन के लिए काम करने में समर्थ होने पर भी ब्राह्मण्य से और श्रुति की भक्ति से भी उस प्रकार के कर्म से पराङ्मुख होता हुआ, जैसे तैसे हुई लोकयात्रा की सिद्धि से ही सन्तुष्ट मन वाला होकर, वेद-वेदाङ्ग शास्त्रों में सुर्तीव्र भक्ति का आश्रयण करता हुआ शिवनामक ब्राह्मण ने थोडे ही काल में इस व्याख्या को रचा। यहाँ सभी अर्थों का साधन करने वाली परमात्मा की लीला ही है॥४२–४६॥

❁ "षडङ्गशास्त्रतेजोभिर् विशेषेणोज्ज्वलीकृते।
वेदार्थज्ञानरत्ने मे तृष्णाऽतीव विजृम्भते" ॥४७॥
अस्य भारतवर्षस्य राष्ट्रभाषा हि संस्कृतम्।
दुरुच्चारणबाहुल्यादिदानीन् दुर्गतौ गतम् ॥४८॥
अध्येतारोऽपि वेदस्य मातृभाषाप्रभावतः।
उच्चारणं हि वेदस्य कुर्वन्ति विकृतं सदा ॥४९॥
दुरुच्चारणदुर्गन्धनिरासनपटीयसीम्।
शिक्षानासाशुद्धिमेताम् प्राप्य वेदः प्रसीदतु ॥५०॥
प्रसन्नस् सन् स कुरुताच् छ्रेयो वेदानुयायिनाम्।
यायुस् तेऽपि सुखेनाऽऽत्माऽवदानम् परिहृत्य शम् ॥५१॥

छह वेदाङ्गरूप शास्त्रों के प्रकाश से विशेष रूप से उज्ज्वल बनाए गए वेदार्थ-ज्ञानरूप रत्न को पाने के लिए मेरी तृष्णा अत्यन्त बढ़ती है॥४७॥

इस भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा के रूप में रही हुई संस्कृतभाषा इस समय में अशास्त्रीय अपभ्रष्ट और विकृत दुष्ट उच्चारण से दुर्गति में प्राप्त हुई है॥४८॥

वेद के अध्येता लोग भी मातृभाषारूप अपभ्रंश देश्य भाषा की बोली के प्रभाव से वेद का उच्चारण भी सदा विकृत (अपभ्रष्ट) रूप से करते हैं॥४९॥

दुष्ट उच्चारण रूप दुर्गन्ध को पहचानकर हटाने में समर्थ शिक्षारूप नासिका की इस शुद्धि को पाकर वेदभगवान् प्रसन्न (स्वच्छ) होवें॥५०॥

प्रसन्न हुए वे वेदभगवान् वेद के अनुयायियों का कल्याण करें। वेद के अनुयायी लोग भी सुख से अपना कल्याणच्छेदन का परिहार करके कल्याण को प्राप्त करे॥५१॥

❁ कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में संस्कृतभाषा का प्रयोग स्वाभाविक और पाणिनीयव्याकरण से अन्वाख्यात शुद्ध तथा व्यञ्जनद्वित्व-परसवर्णादियुक्त रूप में किया गया है। साथ ही वहाँ ऋग्वेदप्रातिशाख्यादि से प्रतिपादित और ग्रन्थकार के उच्चारण में समन्वित अक्षरविभजन-सिद्धान्त के अनुकूल रूप में मुद्रण भी किया गया है। कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के भाषा-प्रयोग के और मुद्रणपद्धति के उदाहरण के रूप में इस महत्त्वपूर्ण मूलशास्त्रोक्त किन्तु अर्वाचीन काल में विशेषतः अचर्चित विषय अक्षरविभजनसिद्धान्त में विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए यहाँ पर कुछ श्लोकों का विशिष्ट प्रकार से मुद्रण किया गया है।

वेदो लोके परञ् ज्योतिश् श्रेयोमार्ग्गप्प्रदर्शने।
तत्स्वाविर्भावने यत्नोऽस्माभिर् ग्रन्थात्मकः कृतः ॥५२॥
आविर्भूतोऽनेन सम्म्यक् श्रेयोमार्ग्गम् प्रदर्शयन्।
वेदो नृणां स्वोन्मुखानामृद्धिं सर्व्वविधाङ् क्रियात् ॥५३॥

इति श्रीगुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूपादध्ययन-समवाप्त-स्वशाखारूपाऽऽदित्यब्रह्म-सम्प्रदायागत-माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखा-मन्त्रब्रह्मयज्ञसंहिता-ब्राह्मण-कल्पसूत्रेण श्रुतिस्मृतिपुराण-पारायणपरायणेना-ऽवलोकित-नाना-धर्मशास्त्रनिबन्धेन काव्यप्रकाशव्याख्या-वेदभाषानिघण्टु-कौण्डिन्न्यायनशिक्षा-वैदिकमन्त्रसङ्ग्रह-नारदीयशिक्षाव्याख्या-ब्रह्ममीमांसासूत्रकौण्डिन्न्यायनवृत्ति-सन्ध्योपासनपद्धति-ब्रह्मयज्ञपद्धति-वेदाङ्गज्योतिषव्याख्यान-मनुस्मृतिव्याख्या-प्रभृत्यनेकग्रन्थकारेण हिमवत्खण्डान्तर्गत-गण्डकी-प्रदेशाभिजनेन काष्ठमण्डपनगरनिवासिना कान्यकुब्जोच्चकुलीन-विद्याधुरीण-योनि-विद्या-तपश्शुद्ध-त्रिशुक्ल-ब्राह्मणवर्य-श्रीकृष्णाचार्यवंशे नैपालीय-भाषाऽऽदिकविना भानुभक्ताचार्येण प्रविख्यापिते जातेन कौण्डिन्न्यायनेनाऽऽचार्येण वासिष्ठ-मैत्रावरुण-कौण्डिन्न्येति-त्रिप्रवरेण शिवराजशर्मणा द्विजोत्तमेन कृता वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्या पाणिनीयशिक्षाव्याख्या सम्पूर्णा॥

कल्याण के मार्ग को दिखाने के लिए लोक में वेद परम ज्योति है। उस वेदरूप परम ज्योति का आविर्भाव करने के लिए हम ने यह पाणिनीयशिक्षाव्याख्याग्रन्थरूप प्रयत्न किया है॥५२॥

इस ग्रन्थरूप प्रयत्न से अच्छी तरह आविर्भूत वेदभगवान् कल्याण का मार्ग दिखाते हुए अपनी ओर उन्मुख मनुष्यों की सभी प्रकार की समृद्धि करें॥५३॥

१. प्रायेण शिक्षाग्रन्थेषु स्थितानि कति चन सुभाषितानि

आचार्योपासनाद् योगात् तपसा प्राज्ञसेवनात्।
विगृह्यकथनात् कालात् षड्भिर् विद्या प्रपद्यते॥१॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१७७।

गुरु की श्रद्धा भक्ति से सेवा करके उन से शिक्षा लेने से, विद्या पाने में निरन्तर लगे रहने से, विद्या पाने के लिए नियमों का सेवन करके कष्ट उठाने से, उस विद्या के विज्ञजन की सेवा करने से, उस विद्या के विज्ञजनों से प्रतिस्पर्धा करके वाद-विवाद करने से और निरन्तर विद्या का अनुशीलन करके दीर्घ काल बिताने से, इन छह उपायों से विद्या आ जाती है॥१॥

आलस्यान् मूर्खसंयोगाद् भयाद् रोगनिपीडनात्।
अत्याशक्त्याच् च मानाच् च षड्भिर् विद्या विनश्यति॥२॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१७८।

आलस्य (सुस्ती) से, मूर्खों से घुलमिल होने से, डर से, रोग से पीडित होने से, अत्यन्त अशक्तता (असमर्थता) से, अभिमान (गर्व) से भी, इन छह कारणों से विद्या नष्ट हो जाती है॥२॥

द्यूतं पुस्तकवाच्यं च नाटकेषु च सक्तिका।
स्त्रियस् तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट्॥३॥

—नारदीयशिक्षायाम् २।८।३०।

जुआ खेलने की आदत, कथा उपन्यास इत्यादि के नए-नए पुस्तकों को पढ़ने की आदत, नाटक-सिनेमा देखने में आसक्ति, स्त्रियाँ, ऊँघ और निद्रा ये छह विद्या के अभ्यास में तथा विद्या की प्राप्ति में विघ्न (अड़चन) डालने वाले हैं॥३॥

पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति चण्डास् स्तब्धाश् च ये नराः।
अलसा रोगिणश् चैव येषां च विसृतं मनः ॥४॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।९९, नारदीयशिक्षायाम् २।८।१४।

थोडे में ही ज्यादा क्रुद्ध होने वाले लोग, जो मनुष्य अपनी रुचि के किसी एक क्षुद्र विषय में भी दृढ और हठी हैं वे लोग, आलसी लोग, दीर्घरोग से पीडित लोग और जिस का मन एक विषय से दूसरे विषय में निरन्तर जाता रहता है, किसी विषय में स्थिर न होकर चञ्चल रहता है ये पाँच प्रकार के लोग विद्या का ग्रहण नहीं कर सकते हैं॥४॥

न शठाः प्राप्नुयुर् विद्यां न क्लीबा न च मानिनः।
न च लोकरवाद् भीता न च श्वःश्वः प्रतीक्षकाः ॥५॥

—नारदीयशिक्षायाम् २।८।२६, महाभारते १२।१४०।२३।

समक्ष में कुछ और परोक्ष में और ही कुछ करने वाले वञ्चक लोग विद्या को नहीं पाएंगे, नपुंसक (उत्साहरहित) लोग भी विद्या को नहीं प्राप्त कर सकेंगे, अभिमानी लोग भी विद्या को नहीं प्राप्त कर सकेंगे, लोकापवाद से डरे हुए लोग भी विद्या को प्राप्त नहीं कर सकेंगे, और कल पढेंगे कल पढेंगे कहते हुए प्रतीक्षा करने वाले लोग भी विद्या को प्राप्त नहीं कर सकेंगे॥५॥

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थेन न लभ्यते ॥६॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।११२, नारदीयशिक्षायाम् २।८।२९।

गुरु की सेवा से विद्या पाई जाती है, अथवा पर्याप्त धन से विद्या पाई जाती है, अथवा अपनी विद्या देने से दूसरी विद्या पाई जाती है; इन तीन उपायों को छोडकर चौथे उपाय से विद्या नहीं पाई जाती है॥६॥

शुश्रूषारहिता विद्या अपि मेधागुणैर् युता।
बन्ध्येव युवती तस्य न विद्या फलिनी भवेत् ॥७॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१११, नारदीयशिक्षायाम् २।८।२८।

शुश्रूषा (तीव्र जिज्ञासा) से रहित जो विद्या होती है; बुद्धि के श्रवण, ग्रहण, धारण इत्यादि अन्य गुणों से युक्त होने पर भी बाँझ स्त्री की तरह ही वह विद्या फल देने वाली नहीं होगी॥७॥

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥८॥

—मनुस्मृतौ २।२१८, याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।११०।

जैसे खनित्र (खन्ता) से खोदता हुआ मनुष्य भूमि में पानी पाता है, वैसे ही गुरु की सेवा करने वाला जन गुरु में रही हुई विद्या को प्राप्त करता है॥८॥

अहेरिव गणाद् भीतः सम्मानान् नरकादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति॥९॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।११०, नारदीयशिक्षायाम् २।८।२५,
माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१६४।

सर्प से जैसे डरते हैं वैसे ही समूह से डरने वाला, नरक से जैसे डरते हैं वैसे ही सम्मान से डरने वाला और राक्षसियों से जैसे डरते हैं वैसे ही स्त्रियों से (नारियों से) डरने वाला पुरुष जो है वह विद्या को पाता है॥९॥

सुखार्थी चेत् त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम्।
सुखिनस् तु कुतो विद्या विद्यार्थिनि कुतः सुखम्॥१०॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१०२।

विद्या पाने के समय में भी सुखभोग चांहने वाला पुरुष विद्या को त्याग दे, यदि विद्या चाहने वाला है तो विद्या पाने के समय में सुखभोग को छोड दे, सुख में रहने वाले को विद्या कहाँ से मिलेगी और विद्या प्राप्त करना चाहने वाले को उस समय में सुख कहाँ से मिलेगा॥१०॥

काकचेष्टो बकध्यानः श्वाननिद्रस् तथैव च।
अल्पाऽऽहारो गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणः ॥११॥

—चाणक्यनीतिदर्पणे ११।५ (क्षिप्तश्लोकः)।

कौए की जैसी चेष्टा वाला, बगुले के समान अपने लक्ष्य के ध्यान में मग्न होने वाला, कुत्ते के समान स्वल्प निद्रा लेने वाला, थोडा आहार करने वाला, विद्याप्राप्ति के लिए घर को त्याग देने वाला, विद्यार्थी इन पाँच लक्षणों से युक्त होना चाहिए॥११॥

अन्नव्यञ्जनयोर् भागौ तृतीयमुदकस्य च।
वायोः सञ्चरणार्थाय चतुर्थमुपकल्पयेत् ॥१२॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१०९।

भोजन करते समय पेट के दो भागों को अन्न और व्यञ्जन (शाक सब्जी इत्यादि) के लिए दे, पेट के तीसरे भाग को पानी के लिए दे, वायु के सञ्चार के लिए पेट के चतुर्थ भाग को खाली रहने दे (पेट में ठूँसकर भरपेट भोजन न करे)॥१२॥

शरद्विषुवतोऽतीतादुषस्युत्थानमिष्यते।
यावद् वासन्तिकी रात्रिर् मध्यमा पर्युपस्थिता ॥१३॥

—नारदीयशिक्षायाम् २।८।२।

शरत् काल का विषुव दिन (रात और दिन बराबर होने वाला दिन) बीतने से आगे वसन्त ऋतु की मझली रात्रि (वसन्त-विषुव-दिन) उपस्थित न होने तक [छह महीने तक] उषःकाल में उठना (निद्रा को त्यागना, जागना) अभीष्ट होता है॥१३॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य च सञ्चयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाऽध्ययनकर्मसु ॥१४॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१०७, नारदीयशिक्षायाम् २।८।२०।

अत्यन्त थोडा-थोडा प्रयोग करने से भी लम्बे समय में होने वाले काजल के क्षय को देखकर और थोडा-थोडा सञ्चय करने पर भी लम्बे समय में दीमक से लगाए हुए मिट्टी के ढेर को देखकर मनुष्य दिन को दान से अध्ययन से और कृत्यों से खाली रहने न दे॥१४॥

शनैर् विद्यां शनैरर्थानारोहेत् पर्वतं शनैः।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानां परं व्रजेत्॥१५॥

—नारदीयशिक्षायाम् २।८।१५।

विद्या को धीरे से प्राप्त करे, धन को धीरे से प्राप्त करे, पर्वत को धीरे से चढ़े, रास्तों में भी धीरे से चले, योजनों दूर भी जा सकता है॥१५॥

[शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्।
शनैर् विद्या शनैर् वित्तम् पञ्चैतानि शनैःशनैः॥१६॥]

रास्ता धीरे से तय किया जाता है, कन्था (जीर्ण त्यक्त वस्त्रों को [चिथडों को] सी-सीकर बनाया जाने वाला सन्यासियों का ओढ़ना) धीरे से बनाया जाता है, पहाड के उस पार को जाना भी धीरे-धीरे होता है, विद्या धीरे-धीरे प्राप्त की जाती है, धन धीरे-धीरे प्राप्त किया जाता है, ये पाँच धीरे-धीरे ही होते हैं॥१६॥

योजनानां सहस्राणि शनैर् याति पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥१७॥

—नारदीयशिक्षायाम् २।८।१६।

चीटीं धीरे-धीरे एक हजार योजन भी जाती है, नहीं चलता हुआ गरुड भी एक पग नहीं चलता है॥१७॥

गुणिता शतशो विद्या सहस्राऽऽवर्तिता पुनः।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान् निम्नमिवोदकम्॥१८॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१०३, माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१६५।

सौ वार घोसी गई और फिर हजार वार दुहराई गई विद्या उच्चस्थल से नीची भूमि की ओर जल जैसे आता है वैसे ही जीभ के अग्रभाग में आ जाएगी॥१८॥

शतेन गुणिताऽऽयाति सहस्रेण च तिष्ठति।
शतानां च सहस्रेण प्रेत्य चेह च तिष्ठति॥१९॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१०४, माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१६६।

सौ वार घोसी गई विद्या आजाती है, हजार वार घोसी गई विद्या मुख में रह जाती है, हजार सौ वार (एक लाख वार) घोसी गई विद्या दूसरे जनम में और इस जनम में भी मुख में रह जाती है॥१९॥

जलमभ्यासयोगेन शैलानां कुरुते क्षयम्।
कर्कशानां मृदुस्पर्शं किमभ्यासान् न साध्यते॥२०॥

—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् २।५।१०५, माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१७५।

वारवार अभ्यास होने से कठोर शैलों को (पर्वतों को) भी मृदुस्पर्शवाला जल क्षीण कर देता है, अभ्यास से क्या साध्य नहीं है (अभ्यास से सभी विद्याएँ आ जाती हैं)॥२०॥

ऊर्ध्वं सहस्रादाम्नानं सततं चाऽन्ववेक्षणम्।
आप्तैश् च सह सम्पाठस् त्रिविधा धारणा स्मृता॥२१॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१६९।

हजार वार से ज्यादा दुहराना, निरन्तर युक्ताऽयुक्त विचार करना और विज्ञ यथार्थवादी लोकहितैषी जनों से मिलकर पढ़ना ये तीन प्रकार की धारणा (विद्या की स्मृति को सिद्ध करना) है॥२१॥

पदेनैकेन मेधावी पदानां विन्दते शतम्।
मूर्खः पदसहस्रेण पदमेकं न विन्दति॥२२॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१७२।

धारणाशक्ति से और बुद्धि से सहित पुरुष एक पद की शिक्षा से सौ पदों को स्वयं प्राप्त करता है। मूर्ख पुरुष हजार पदों की शिक्षा से भी एक पद को भी ठीक तरह से प्राप्त नहीं कर सकता है॥२२॥

येषां च न ग्रहणशक्तिरतिप्रचण्डा
लब्ध्वा च ये न शतशः परिवर्तयन्ति।
निद्रां च ये प्रियसखीमिव न त्यजन्ति
ते तादृशा गुरुकुलेषु जरां व्रजन्ति॥२३॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१६८।

जिन लोगों की ग्रहणशक्ति अत्यन्त तीव्र भी नहीं है, विद्या को प्राप्त करके भी जो सैकडों वार नहीं दुहराते हैं, प्रिय सखी को जैसे लोग नहीं छोडते हैं वैसे ही जो निद्रा को भी नहीं छोडते हैं वैसे वे लोग गुरुकुलों में (गुरुओं के घरों में ही) बुढापे में पहुँचते हैं॥२३॥

यथा खरश् चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
तथा हि विप्राः स्मृतिवेदपूर्णा ज्ञानेन हीनाः खरवद् वहन्ति॥२४॥

—पाराशर्यां शिक्षायाम्, श्लो.१५०; द्र.– सुश्रुतसंहितायाम् १।४।४।

जैसे चन्दन के बोझ को ढोने वाला गदहा बोझ को जानता है, चन्दन को नहीं जानता है, वैसे ही स्मृतियों के और वेदों के शब्दों से पूर्ण किन्तु ज्ञान से रहित ब्राह्मण जैसे गदहा बोझ को ढोता है वैसे ही स्मृतियों के और वेदों के शब्दों के बोझ को ही ढोते हैं॥२४॥

येषां तीर्थाऽऽगता विद्या नित्यमभ्यासवर्तिता।
ते भवन्ति दुराधर्षाः ससिंहा इव पर्वताः॥२५॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१६१।

जिन लोगों की विद्या श्रेष्ठ शास्त्रीय आचार्य से आई है और नित्य अभ्यास से अपने में भी स्थापित की गई है, वे सिंहों (शेरों) से युक्त पहाडों की तरह दुर्धर्ष (सहज में वश में नहीं लाए जा सकने वाले) होते हैं॥२५॥

आगमैरधिकाः के चिद् विज्ञानैरपरेऽधिकाः।
प्रयोगसौष्ठवादन्ये नाऽहमेवेति विस्मयः॥२६॥

—माण्डूकीयशिक्षायाम्, श्लो.१५८।

कोई आचार्य से ठीक रूप से आई हुई विद्या से विशिष्ट होते हैं, कोई विद्या की विवेचनात्मक-अनुभवात्मक ज्ञान से विशिष्ट होते हैं, कोई विद्या के प्रयोग में रहने वाली समीचीनता से विशिष्ट होते हैं, इस लोक में इस विद्या में केवल मैं ही विशिष्ट हूँ ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिए॥२६॥

यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच् च दुष्करम्।
सर्वं तत् तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥२७॥

—मनुस्मृतौ ११।२३८।

जो कठिनता से पार होने योग्य वस्तु है, जो कठिनता से पाने योग्य वस्तु है, जो कठिनता से पहुँचने योग्य वस्तु है, जो कठिनता से करने योग्य वस्तु है वह सब तप से ही सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि तप का किसी से भी विफल किया जाना अत्यन्त कठिन है॥२७॥

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस् तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस् तनुम्॥२८॥

—मनुस्मृतौ २।१०४।

अधिक कठोर कर्मयोग से अपने शरीर को क्षीण नहीं करता हुआ मनुष्य इन्द्रियों के समूह को वश में रखकर और मन को भी नियन्त्रित करके सभी पुरुषार्थों का अच्छी तरह साधन करे॥२८॥

युक्ताऽऽहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥२९॥

—भगवद्गीतायाम् ६।१७।

यथायोग्य आहार (भोजन) और विहार करने वाले का, कामों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का तथा यथायोग्य रूप में सोने और जागने वाले का ही योग दुःखों का नाश करने वाला होता है॥२९॥

साध्यं हि सर्वं स्वशरीरमूलं देहः सदाहारविहारमूलः।
स्वास्थ्यं विचार्यैव कुरुष्व यत्नं स्वास्थ्येन हीनस्य वृथाऽपि राज्यम्॥३०॥

—व्याख्याकोरतातपाद-पण्डित-कविराज-नरनाथशर्मण आचार्यस्य।

सिद्ध किए जाने वाले सभी विषय अपने शरीर से सम्पन्न होने वाले हैं, शरीर समुचित आहार-विहार से टिकने वाला है। अतः शरीर की स्वस्थता को विचार में रखते हुए ही अध्ययनादि कार्य में यत्न करो, क्यों कि शरीर की स्वस्थता से रहित मनुष्य के लिए राज्य की प्राप्ति भी व्यर्थ ही होती है॥३०॥

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहोऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥३१॥

—कामन्दकीयनीतिसारे ४।२१, द्र.– कौटलीयाऽर्थशास्त्रे १।५।

सुनने की इच्छा, सुनना, सुने हुए वस्तु को पकडना, पकडे हुए वस्तु को स्मृतिपटल में चिरकाल तक रखना, पकडे हुए वस्तु के विषय में नाना प्रकार की कल्पना करना, इस प्रकार की कल्पना से उपस्थापित पक्षों में असङ्गत पक्ष को हटाना (त्यागना), वस्तु को अच्छी तरह समझ लेना और उस वस्तु के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करना, ये बुद्धि के गुण हैं। (इस प्रकार की क्षमता से युक्त बुद्धि अच्छी बुद्धि है)॥३१॥

प्रज्ञा विवेकं लभते भिन्नैरागमदर्शनैः।
कियद् वा शक्यमुन्नेतुं स्वतर्कमनुधावता॥३२॥

—वाक्यपदीये २।४८४।

अनेक आगमों के (शास्त्रों के) दर्शन से प्रज्ञा विवेचनशक्ति को प्राप्त करती है। केवल अपने ही तर्क के पीछे दौडने वाले से कितने निष्कर्ष की परिकल्पना की जा सकती है॥३२॥

नाऽपृष्टः कस्य चिद् ब्रूयान् न चाऽन्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल् लोक आचरेत्॥३३॥

—मनुस्मृतौ २।११०।

नहीं पूछने पर किसी को भी (कुछ भी) न कहे। अन्याय से (उचित रीति के विना) पूछने वाले को भी न कहे। बुद्धिमान् जन जानता हुआ भी लोक में जड की (मन्दबुद्धि वाले की) तरह व्यवहार करे॥३३॥

व्याख्यानशक्तिमिह कर्मसु कौशलं च
विज्ञानवर्धनरुचिं प्रगुणां च सिद्धिम्।
लिप्सुर् यथोत्तरमथो परिचिन्तनाद्यैः
शास्त्रज्ञसंसदि भवेत् स्वयमद्वितीयः॥३४॥

—व्याख्याकारज्येष्ठपितृव्यपाद-प्राणाचार्य-पण्डितोमानाथशर्मण आचार्यस्य।

इस लोक में अपने सुविदित शास्त्रीय विषय के व्याख्यान की शक्ति को, प्रयोगपरक शास्त्र से प्रतिपादित कर्मों में दक्षता को, सम्बद्ध विषय के विशेष ज्ञान को बढाने की रुचि को और सम्बद्ध विषय में उत्कृष्ट ज्ञानसिद्धि, वचन-सिद्धि और कर्मसिद्धि को भी पाने की इच्छा रखने वाला शास्त्रसेवी जन आगे और आगे चिन्तन व्याख्यान और क्रियाभ्यास इत्यादि करने से शास्त्रज्ञों के समुदाय में अपने आप अद्वितीय (सब से उत्तम) हो जाएगा॥३४॥

आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादः कालेन पच्यते॥३५॥

—आपस्तम्बधर्मसूत्रव्याख्याने हरदत्तस्य १।२।४।२९।

शिष्य विद्या के चार भागों में एक चौथाई भाग आचार्य से (अध्यापक से) लेता है, एक चौथाई भाग अपनी ही बुद्धि से प्राप्त करता है, एक चौथाई भाग अपने सहपाठियों से लेता है और एक चौथाई भाग कालक्रम से उसको प्राप्त होता है॥३५॥

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥३६॥

—चाणक्यनीतिदर्पणे १४।५।

जल में तेल, दुर्जन में गोपनीय रहस्य, सत्पात्र में दिया गया दान, समझदार जन में शास्त्र, ये चीज थोडे होने पर भी संयोगी वस्तुओं की शक्ति से (स्वभाव से) अपने आप विस्तार को प्राप्त होते हैं (फैल जाते हैं)॥३६॥

भवेन् न वा यद्यपि पूर्ववासनागुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ॥३७॥

—द्र.– काव्यादर्शे १।१०४।

यद्यपि पूर्वजन्म की वासना के गुण से सम्बद्ध अद्भुत प्रतिभा किसी में हो अथवा न भी हो तथापि किसी से शास्त्र के श्रवण से (अध्ययन से) और प्रयत्न से (पुनःपुनर् अभ्यास करने से) उपासित (सेवित) वाणी (सरस्वती, विद्या) कुछ न कुछ कृपा उस पर अवश्य करती है॥३७॥

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥३८॥

—मालविकाग्निमित्रे १।१६।

किसी की उच्चारणादि क्रिया अपने में ठीक रूप में रही हुई होती है, कोई अपनी उच्चारणादि क्रिया को दूसरों में अच्छी तरह सङ्क्रमित कर सकता है (दूसरे को अच्छी तरह सिखा सकता है)। जिसके दोनों गुण अच्छे हों वह शिक्षकों में अग्रस्थान में रक्खा जाना चाहिए॥३८॥

२. शिक्षाशास्त्रसम्बद्धाः के चन पारिभाषिकाः शब्दाः सव्याख्याः

(सङ्क्षिप्त हिन्दी अर्थ सहित)

अक्षरम्— "अक्षरं न क्षरति न क्षीयते वा, अक्षरं भवति, वाचोऽक्ष इति वा" इति निरुक्तपरिशिष्टे (१।१३)। "अक्षरं न क्षरं विद्यादश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये द्वितीयाह्निकान्ते। एतच्च वर्णनित्यत्ववादिमतेनोक्तं बोध्यम्। एतद् व्याख्यानं तत्रैव द्रष्टव्यम्। अक्षरशब्दार्थस् तु **"सव्यञ्जनः साऽनुस्वारः शुद्धो वाऽपि स्वरोऽक्षरम्"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१८।३२) प्रतिपादितो बोध्यः। शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये च **"स्वरोऽक्षरम्, सहाऽऽद्यैर् व्यञ्जनैः, उत्तरैश् चाऽवसितैः"** इत्युक्तम् (१।९९-१०१)। एतस्मिन्नर्थे अक्षरशब्दः **"अग्निरेकाक्षरेण"** इत्यादौ (मा.सं.९।३१-) यजुर्वेदे बहुशः प्रयुक्तो दृश्यते। **"वर्णं वाऽऽहुः पूर्वसूत्रे"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये द्वितीयाह्निकान्ते वचनाद् वर्णवाची चाऽक्षरशब्दः। अत एव वर्णसमाम्नाय इति वक्तव्ये अक्षरसमाम्नाय इति प्रयोगोऽपि उपलभ्यते।

हिन्दी— व्यञ्जन से सहित अथवा केवल भी स्वर (अच्) अक्षर कहा जाता है।

अक्षरसमाम्नायः— वर्णसमाम्नायः, वर्णसमुदायोपदेशः।

हिन्दी— सम्पूर्ण वर्णों का क्रमबद्ध उपदेश अक्षरसमाम्नाय कहा जाता है।

अघोषः— न विद्यते घोषो यस्मिन् सः, घोषध्वनिरहितो वर्णः, यथा— क च ट त पाः, ख छ ठ थ फाः, श ष साः।

हिन्दी— उच्चारण करने में कण्ठबिल में वर्तमान स्वरतन्त्रियों के गुञ्जन (घोषध्वनि) से रहित वर्ण अघोष कहे जाते हैं। जैसे- क च ट त प; ख छ ठ थ फ, श ष स।

अनुदात्तः— उदात्तस्वरविपरीतः स्वरः, "उदात्तविपरीतः, अधस्ताद् गृहीतः" इति पञ्जिकायाम् (श्लो.११)। "**यदा तु मन्दः प्रयत्नो भवति गात्रस्य स्रंसनं कण्ठबिलस्य महत्त्वं स्वरस्य च वायोर्मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति तमनुदात्तमाचक्षते**" इति आपिशलीयशिक्षासूत्रेऽन्तिमप्रकरणे।

हिन्दी— मन्द प्रयत्न से, स्वरतन्त्रियों की शिथिलता से, कण्ठबिल की आपेक्षिक विशालता से और वर्णजनक वायु की मन्दगति से उच्चारण किया जाने वाला स्निग्ध स्वर अनुदात्त कहा जाता है।

अनुनासिकः— मुखेन नासिकया च सम्भूयोच्चार्यो वर्णः। नासिकामनुगतः। अनुनासिकानां वर्णानामुच्चारणे वर्णजनकवायोर् नासिकामार्गेणाऽपि निस्सरणेन तत्रापि ध्वनिविशेषस्य जननात् नासिकया चोच्चार्यत्वं बोध्यम्। "**नासिकाविवरणादानुनासिक्यम्**" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२।५२)। अकारादयः स्वरा निरनुनासिका अनुनासिकाश् च भवन्ति। ङ-ञ-ण-न-मा नित्यमनुनासिकाः। य-व-ला अपि निरनुनासिका अनुनासिकाश् च भवन्ति। "**मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः**" इति पाणिनिः (अष्टा.१।१।८)।

हिन्दी— मुख से और नाक से साथ में उच्चारण किया जाने वाला वर्ण अनुनासिक कहा जाता है। जैसे- अँ, आँ इत्यादि और ङ, ञ, ण, न, म तथा यँ वँ लँ।

अनुप्रदानम्— "**अनु प्रकर्षेण दीयत इत्यनुप्रदानम्**" इति पञ्जिकायाम् (श्लो.१०, ३८)। "**तौ श्वासनादावनुप्रदानमित्याचक्षते**" इत्यापिशलीयशिक्षासूत्रे। अनुप्रदानम्=बाह्यप्रयत्नः।

हिन्दी— श्वासरूप अथवा नादरूप बाह्य प्रयत्न (स्वरतन्त्रीजन्य प्रयत्नविशेष) अनुप्रदान कहा जाता है।

अनुस्वारः— "**स्वरमनु भवतीत्यनुस्वारः, अनु अकारानुगमेनाऽनुस्वारः**" इति पञ्जिकायाम् (श्लो.४-५)। "**स्वारमनु भवतीत्यनुस्वारः**" इति शिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.४-५)।

हिन्दी— सदा स्वर का पीछे का ही अङ्ग होकर आने वाला वर्णविशेष (अंश इत्यादि में शिरोबिन्दु से सङ्केत किया जाने वाला वर्ण) अनुस्वार कहा जाता है।

अन्तःप्रयत्नः— मुखकुहरान्तर्भवः प्रयत्नविशेषोऽन्तःप्रयत्नः। **आभ्यन्तरप्रयत्न** एवाऽन्तःप्रयत्न इत्यपि उच्यते।

हिन्दी— मुख के कुहर में (मुख के अन्दर) होने वाला प्रयत्न अन्तःप्रयत्न कहा जाता है [द्र.- **आभ्यन्तरप्रयत्नः**]।

अन्तस्था— अन्तःस्थ इति अन्तःस्था इति च क्वचिद् दृश्यते। वस्तुतस्तु 'अन्तस्था' इत्येवाऽस्य शब्दस्य स्वरूपं बोध्यम्। एष शब्द ऐतरेय्यारण्यक-ऋग्वेदप्रातिशाख्यादिषु ग्रन्थेषु बाहुल्येन स्त्रियां प्रयुक्तः, अन्यत्र क्वचित् पुंस्यपि प्रयुक्तः। जिह्वामध्यप्रभृतीनां करणानामन्ते तिष्ठन्तीत्यन्तस्थाः, य-र-ल-वाः। यत् तु उव्वट-ह्विट्नि-सिद्धेश्वरवर्म-यालेन-सोमनाथादिभिः **"स्पर्शोष्मणामन्तर्मध्ये तिष्ठन्तीति अन्तःस्थाः"** (ऋग्प्राति.व्या.१।९) इत्याद्युक्तम्, तन् नातिरमणीयम्, यथाऽन्येषां वर्णानां तदुच्चारणवैशिष्ट्यसूचकं नाम स्पर्शा इति ऊष्माण इति तथैवैतासामपि उच्चारणवैशिष्ट्यसूचकत्वेनैव नाम व्यवहृतं स्यादिति। उक्तं च तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याकारेण गार्ग्यगोपालयज्वना वैदिकाभरणे— **"निर्वचनं तु जिह्वामध्यप्रभृतीनां करणानामन्तैर्जन्यत्वाद् यरलवा अन्तस्था इत्याख्यायन्ते"** इति (१।८), **"यकारादीनां चतुर्णां करणान्तव्यापारनिष्पाद्यत्वादन्तस्था इत्याख्या"** इति च (२।४३)। **"स्वस्यस्वस्य स्थानस्यान्ते तिष्ठन्तीत्यन्तस्थाः"** इति कातन्त्रव्याकरणटीकायामिति संस्कृतव्याकरणशब्दकोशे।

हिन्दी— अपने उच्चारण के जिह्वामध्यादि करण के अन्त में रहने वाले (जिह्वामध्यादि के अन्तों का स्थान से स्पर्श से उच्चरित होने वाले) य र ल व वर्ण अन्तस्था कहे जाते हैं।

अभिनिष्ठानः— विसर्जनीयः, **"अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्"** इति पाणिनिः (अष्टा.८।३।८६)।

हिन्दी— विसर्ग अभिनिष्ठान कहा जाता है।

अयोगवाहः— स्वपूर्ववर्तिनः स्वरस्यैवाङ्गत्वेन प्रयुज्यमाना वर्णविशेषा अयोगवाहा उच्यन्ते। तत्र अयोगवाहानां मध्ये प्रधानयोरनुस्वारविसर्गयोर् ब्राह्मवर्णसमाम्नाये अकारस्य योगेनोपदिष्टत्वात् तयोः अ-योगेन वहतः स्वरूपं निर्वहत इति अयोगवाहौ इति व्यवहारः। स्वपूर्ववर्तिस्वरमात्राङ्गत्वरूपेण तत्सादृश्येन चाऽन्येषामपि अयोगवाहत्वेन व्यवहारः। अथवा योगपरवशतया योगस्य (स्वाश्रयस्वरस्य) पूर्वतः परतो वा संलग्नाः सन्तो वहन्तो वर्णाः कादयो योगवाहाः, तद्भिन्ना योगस्य परत एव संलग्नाः सन्तो वहन्तोऽनुस्वारादयो वर्णा अयोगवाहाः। **"न विद्यते योगः संयोगो वर्णान्तरेण येषां ते अयोगवाहाः"** इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो.२२)। पाणिनीयव्याकरणभाष्यकारेण तु पाणिनीयाक्षरसमाम्नायमात्रविचारेण अयोगवाहशब्दस्य **"कथं पुनरयोगवाहाः, यदयुक्ता वहन्ति अनुपदिष्टाश्च श्रूयन्ते"** इति व्युत्पत्तिः प्रदर्शिता (हयवरडिति सूत्रे षष्ठवार्त्तिकावतरणिकायाम्)। उव्वटेन शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यभाष्ये **"अकारादिना वर्णसमाम्नायेन सहिताः सन्त एते वहन्त्यात्मलाभं प्राप्नुवन्तीत्ययोगवाहाः"** इत्युक्तम् (८।१८), तत् तु अयोगवाहोच्चारणवैशिष्ट्यस्य स्पष्टीकरणाय नाऽलमित्युपेक्षणीयम्। अयोगवाहशब्दः शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (८।१८), ऋक्तन्त्रे (१।२), पाणिनीयव्याकरणवार्तिकभाष्ययोः (हयवरट् इत्यस्य विचारणे) प्रयुक्तो दृश्यते। पाणिनीयव्याकरणभाष्ये **"विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयाऽनुस्वारनासिक्ययमा अयोगवाहाः"** इत्युक्तम्।

हिन्दी— उच्चारण में सर्वदा स्वपूर्ववर्ती अकारादि स्वरवर्णों का अङ्ग होकर ही प्रयोग में आने वाले वर्ण (स्वपरवर्ती स्वर के अङ्ग के रूप में उच्चरित नहीं होने वाले विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार इत्यादि वर्ण) अयोगवाह कहे जाते हैं।

अल्पप्राणः— अल्पः प्राणो यस्योच्चारणे स अल्पप्राणो वर्णः। अल्पः प्राणो यस्मिन् सः अल्पप्राणः प्रयत्नः। **"अल्पे वायावल्पप्राणः"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे। अल्पप्राणा वर्णा यथा– क ग ङाः, च ज ञाः, ट ड णाः, त द नाः, प ब माः, य र ल वाः।

हिन्दी— उच्चारण के जिस प्रयत्न में कम प्राण (श्वास) लगता है वह अल्प-प्राण प्रयत्न कहा जाता है। ऐसे प्रयत्न से उच्चरित होने वाला वर्ण भी अल्पप्राण कहा जाता है (क, च, ट, त, प इत्यादि वर्ण अल्प प्राण हैं, जब कि ख, छ, ठ, थ, फ इत्यादि महाप्राण)।

आभ्यन्तरप्रयत्नः— अन्तःप्रयत्न (आस्यप्रयत्न) एवाऽऽभ्यन्तरप्रयत्न उच्यते।

हिन्दी— अन्तःप्रयत्न वा आस्यप्रयत्न (स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत, विवृततर, संवृत इत्यादि प्रयत्न) आभ्यन्तर प्रयत्न कहे जाते हैं।

आस्यम्— ओष्ठात् प्रभृति प्राक् काकलकात् स्थितम् मुखकुहरम्। **"अस्यन्ति वर्णाननेनेति आस्यम्"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (१।१।९)। **"आस्यमस्यतेः, आ स्यन्दत एतदन्नम् इति वा"** इति निरुक्ते (१।३।४)।

हिन्दी— होंठों से काकलक (कोमल तालु का पश्चिम प्रान्त) तक का मुखकुहर (मुख के अन्दर का भाग) आस्य कहा जाता है।

आस्यप्रयत्नः— आस्ये भवः प्रयत्न आस्यप्रयत्नः। अन्तःप्रयत्न (आभ्यन्तरप्रयत्न) एव आस्यप्रयत्न इत्यपि उच्यते। आस्यप्रयत्नशब्दः शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये प्रयुक्तः (१।४३)।

हिन्दी— मुखकुहर में होने वाला वर्णोच्चारणार्थ प्रयत्न आस्यप्रयत्न कहा जाता है [द्र.- 'आभ्यन्तरप्रयत्नः']।

उदात्तः— उत् आत्तः उदात्तः। उच्चः स्वरः। **"यदा सर्वाङ्गानुसारी प्रयत्नस् तीव्रो भवति तदा गात्रस्य निग्रहः, कण्ठबिलस्य चाऽणुत्वम्, स्वरस्य च वायोस् तीव्रगतित्वाद् रौक्ष्यं भवति तमुदात्तमाचक्षते"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रेऽन्तिम-प्रकरणे। पाणिनीयस्य **"उच्चैरुदात्तः"** (अष्टा. १।२।२९) इति सूत्रस्य व्याख्याने काशिकाकारसिद्धान्तकौमुदीकारादिभिः प्रचारितस्य भ्रमस्य निराकरणम्, उक्तसूत्रस्य भाष्यानुकूलं व्याख्यानं च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां कृतं द्रष्टव्यम् (पृ.३१७–३२४)।

हिन्दी— तीव्र प्रयत्न से स्वरतन्त्रियों की दृढता से, कण्ठबिल के सङ्कोच से और स्वर की रूक्षता से उच्चरित होने वाला तीक्ष्ण स्वर उदात्त कहा जाता है (द्र.- पाणिनीयशिक्षा के ११ वें श्लोक की हमारी व्याख्या)।

उपध्मा— उपध्मानीयः। उपध्मानीयस्यार्थे **"उपध्मा"** इति शब्दश्च पाणिनीयशिक्षायां प्रयुक्तो दृश्यते (श्लो.१४)। एवमेव शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.९२), नारदीयशिक्षायाम् (२।५।५), माण्डूकीयशिक्षायां च (श्लो.१०८)।

हिन्दी— उपध्मानीय वर्ण (प-फपरक विसर्गविशेष) उपध्मा भी कहा जाता है [द्र.- 'उपध्मानीयः']।

उपध्मानीयः— **"उश्च पश्च ध्मायेते अनेन, तत्र भव इति योगेन उपध्मानीयस्यौष्ठ्यत्वम्"** इति लघुशब्देन्दुशेखरे। एवं च उपध्मानम् ओष्ठः उपध्माने भव उपध्मानीयः ओष्ठ्यः इति सर्वेऽपि ओष्ठ्यवर्णा योगेन उपध्मानीया वक्तुं शक्याः, तथापि रूढ्या उपध्मानीयशब्दः प-फ-परके विसर्जनीयविशेषे एव प्रवर्तते। **"उपध्मानशब्द ओष्ठवचनः"** इति वाचस्पत्ये वर्णशब्दे ४८५२ तमे पृष्ठे। **"उपध्मानीय उपध्मानेन जन्यत्वात्"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।१८) गार्ग्यगोपालयज्वा। **"उरस उपध्मानोद्भव उपध्मानीयः"** इति प्रतिसंस्कृतसिद्धान्तकौमुद्यां (पृ.७) सोमनाथसिग्द्यालयेनोक्तं तूपेक्ष्यम्।

हिन्दी— उपध्मान होंठों को कहा जाता है। उपध्मान में उच्चरित वर्ण उपध्मानीय कहा जाता है। तथापि यह शब्द पकार से और फकार से पूर्ववर्ती विसर्गविशेष को (अर्धविसर्ग को) कहता है।

उपांशु— **"करणवदशब्दममनःप्रयोगमुपांशु"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२३।६), **"यत् समीपस्थोऽपि परो न शृणोति तदुपांशु"** इति मन्वर्थमुक्तावल्यां मनुवृत्तौ कुल्लूकभट्टः (२।८५)। **"यस्मिमन्न्मन्द्रादयो न विज्ञायन्ते नस्स्वरो नव्यञ्जनङ् केवलमेवोष्ठचालनं श्वासो वा तदुपांशु"** इति हौत्रिके पञ्चमाध्यायान्ते कात्यायनः।

हिन्दी– जिस उच्चारण में केवल होंठों का चलना ही देखा जाता है, शब्द समीप से भी नहीं सुना जाता है उस उच्चारण को उपांशु (उच्चारण) कहते हैं।

ऊष्मा– शषसहेष्वन्यतमो वर्णः। विसर्गेऽपि ऊष्मशब्दप्रयोगः पाणिनीयशिक्षादिषु (श्लो.१४) दृश्यते। **"ऊष्मा वायुः, तत्प्रधाना वर्णा ऊष्माणः"** इति ऋग्वेद-प्रातिशाख्यभाष्ये उव्वटः (१।१०)। **"शादय ऊष्माणः"** इत्यापिशलीयशिक्षासूत्रे। **"शषसहा ऊष्माणः"** इति न्यासे पदमञ्जर्यां च (१।१।९)। **"शल ऊष्माणः"** इति सिद्धान्तकौमुद्याम्। **"ह, श, ष, स, अः, ꣲक, ꣲप, अं"** इति अष्टौ ऊष्माण उदाहृता ऋग्वेदप्रातिशाख्यभाष्ये (१।१०)। **"निर्वचनं तु ऊष्माख्यबाह्यप्रयत्नयोगादूष्माण इत्याख्या न तु सा प्रथमद्वितीयादिषु रूढ्यभावात्"** इति **"परे षडूष्माणः"** इति च तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।९) गार्ग्यगोपालयज्वा।

हिन्दी– श्वास को अर्थात् वायु को ऊष्मा कहते हैं, श्वासप्रधान वर्ण को भी ऊष्मा कहते हैं। श, ष, स, ह, ः, ꣲक, ꣲप ये वर्ण ऊष्म कहे जाते हैं। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में अनुस्वार को भी ऊष्मवर्ण में गिना गया है (१।१०)।

करणम्– वर्णाभिव्यक्तौ स्थानविशेषे वायोः प्रतिघातस्य जनने साधकतमं जिह्वामूलमध्योपाग्राग्रादिकं करणमुच्यते। **"स्वराणां यत्रोपसंहारस् तत् स्थानम्, यदुपसंहरति तत् करणम्, अन्येषां तु यत्र स्पर्शस् तत् स्थानम्, येन स्पर्शयति तत् करणम्"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२।३१-३४)। **"येन निर्वर्त्यति तत् करणम्"** इति प्रक्रमप्रकरणे आपिशलीयशिक्षासूत्रे। एतद्विषयेऽधिकं ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षाया बलाध्याये करणाधिकारो द्रष्टव्यः (पृ.५०६-५१६)।

हिन्दी– वर्णों की अभिव्यक्ति में प्राण का स्थानविशेषों में ठक्कर देने में सहायता पहुँचाने वाले जीभ के मूल, मध्य, उपाग्र इत्यादि अङ्ग करण कहे जाते हैं।

घोषः– वर्णोपादानवायौ नादमिश्रणेन जातः शब्दविशेषो घोषः। **"तत्र यदा स्थानाभिघातजे ध्वनौ नादोऽनुप्रदीयते तदा नादध्वनिसंसर्गाद् घोषो जायते"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे। **"घोषो घुष्यतेः"** इति निरुक्ते (९।१।९) यास्कः।

हिन्दी— वर्णों के उपादान वायु में नाद के मिश्रण से उत्पन्न शब्द घोष कहा जाता है। घोषरूप शब्द का कारण बाह्यप्रयत्न भी घोष कहा जाता है।

घोषवान्— घोषध्वनियुतो वर्णः। **"सा घोषवदघोषता"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे।

हिन्दी— घोष ध्वनि से युक्त वर्ण घोषवान् कहा जाता है। इसी को घोष भी कहते हैं। घोषवान् वर्णों में सभी स्वर और ग ज ड द ब, घ झ ढ ध भ, ङ ञ ण न म, य र ल व ह ये व्यञ्जन हैं।

जिह्वामूलीयः— जिह्वामूले भवो वर्णः। **"जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः"** (अष्टा.४।३।६८) इति पाणिनिना व्याख्यातः। यद्यपि कवर्गीया वर्णा अपि जिह्वामूले एव भवन्ति तथापि रूढ्या क-ख-परके विसर्गविशेषे एव जिह्वामूलीयशब्दप्रवृत्तिः। तदुक्तं निरुक्ते— **"पश्यामः समानकर्मणां नामधेयप्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा तक्षा परिव्राजको जीवनो भूमिज इति"** इति (१।४।३)।

हिन्दी— जिह्वा (जीभ) के मूल में उच्चरित होने वाला वर्ण। यह शब्द भी रूढि से केवल क से और ख से पहले आने वाले विसर्गविशेष को (अर्धविसर्ग को) ही बताता है।

तारः— उच्चः स्वरविशेषः। ऋग्वेदप्रातिशाख्यम् (१३।४२), तैत्तिरीयप्रातिशाख्यं च (२३।१२) द्रष्टव्यम्। कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सामाध्याये वाचःस्थानभेदानां निरूपणे एतस्मिन् विषये सर्वेषां शिक्षाग्रन्थानां वचनानि सङ्गृहीतानि द्रष्टव्यानि (पृ.५६५-५६६)।

हिन्दी— उच्च (तीव्र) स्वरविशेष तार वा तारस्वर कहा जाता है।

दीर्घः— द्विगुणितमात्रः स्वरः। **"मात्रा ह्रस्वः, द्वे दीर्घः, तिस्रः प्लुत उच्यते स्वरः"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।२७-३०), **"द्विस्तावान् दीर्घः"** इति शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्ये (१।५७), तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये च (१।३५)। अत्र विस्तरः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यः (पृ.४४७-४५०)। **"दीर्घं द्राघतेः"** इति निरुक्ते (२।५।२) यास्कः।

हिन्दी— द्विगुणित मात्रा से युक्त स्वर दीर्घ स्वर कहा जाता है।

दुस्स्पृष्टः— **"दुस्स्पृष्ट ईषत्स्पृष्टः"** इति पाणिनीयशिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.५), पाणिनीयशिक्षाप्रदीपे च (श्लो.५)। **"दुस्स्पृष्टं तु प्राग् घकाराच् चतुर्णाम्"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१३।१०), **"दुस्स्पृष्टमन्तस्थानाम्"** इति ऋक्तन्त्रे (१।३) च ईषत्स्पृष्टपर्यायवाचितया दुस्स्पृष्टशब्दप्रयोगो दृश्यते। द्विःस्पृष्टपर्यायतयाऽपि दुस्स्पृष्टशब्दप्रयोगो दृश्यते, तथा हि जिह्वामूलतालुस्थानकतया द्विःस्पृष्टयोः **"जिह्वामूलं तालु चाऽऽचार्य आह स्थानं डकारस्य तु वेदमित्रः। द्वयोश् चाऽस्य स्वरयोर् मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो ड़कारः॥ ढ़कारतामेति स एव चाऽस्य ढकारः सन्नूष्मणा सम्प्रयुक्तः। इडा साढा चात्र निदर्शनानि वीड्वङ्गमित्येतदवग्रहेण"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।५१, ५२) प्रतिपादितयोर् डढयोः प्रयत्नस्य प्रतिपादने दुस्स्पृष्टशब्दस्य प्रयोगो **"दुस्स्पृष्टश् चेति विज्ञेयो डढयोः स्वरमध्ययोः"** इति शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.७), शौनकीयशिक्षायां च (श्लो.१०) च। वर्णरत्नप्रदीपिकायां शिक्षायां तु एतस्मिन्नर्थे द्विःस्पृष्टशब्दस्य प्रयोगो दृश्यते **"द्विः स्पृष्टता च विज्ञेया डढयोः स्वरमध्ययोः। पदकाले वियुज्येत द्विःस्पृष्टो न भवेत् तदा"** इति (श्लो.१५-१६)।

हिन्दी— ईषत्स्पष्ट प्रयत्न को और ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न से उच्चरित होने वाले वर्ण को भी दुस्स्पृष्ट कहते हैं। द्विःस्पृष्ट ड़ ढ़ वर्णों के प्रयत्न को भी शैशिरीयशिक्षा में और शौनकशिक्षा में दुस्स्पृष्ट कहा गया है। वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा में तो इस को द्विःस्पृष्ट ही कहा गया है।

द्विःस्पृष्टः— दुस्स्पृष्टव्याख्याऽन्ते वर्णरत्नप्रदीपिकायाः शिक्षाया वचनं द्रष्टव्यम्।

हिन्दी— दो वार स्थानों में स्पर्श करके उच्चरित होने वाला वर्ण द्विःस्पृष्ट कहा जाता है, जैसे- ड़ ढ़। इस को आधुनिक लोग ताडित भी कहते हैं।

नादः— कण्ठबिलस्य (स्वरयन्त्रमुखस्य) अणुभावेन स्वरतन्त्रीझङ्कारे जातं श्वासस्य गुञ्जितं ध्वनेरनुरणनं वा नादः। **"यदा कण्ठबिलं संवृतं भवति तदा नादो जायते"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे। **"वायुः प्राणः कोष्ठ्यमनुप्रदानं**

कण्ठस्य खे विवृते संवृते वा। आपद्यते श्वासतां नादतां वा वक्त्रींहायामुभयं वाऽन्तरोभौ" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१३।१-२)। "संवृते कण्ठे नादः क्रियते, विवृते श्वासः" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्येऽपि (२।४,५)।

हिन्दी—वर्णोच्चारण में कण्ठबिल संकरा होने से स्वरतन्त्रियों के झङ्कार से उत्पन्न गुञ्जित अथवा ध्वनि का अनुरणन नाद कहा जाता है।

नासिक्यः— नासिकास्थानो वर्णः। रूढ्या तु हुँ इति सङ्केत्यं यमसदृशं नासिक्याख्यं वर्णं नासिक्यशब्दः प्रतिपादयति। तथा हि "हुँ इति नासिक्यः" इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (८।२३)। "सानुनासिक्यो हकारः" इति त्रिभाष्यरत्ने (तै.प्रा.२१।१४)। "नासिक्यो वर्णः" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (६।१।६३)। एतद्विषयको विस्तरः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां वर्णाध्याये वर्णविशेषविवेचनाधिकारे नासिक्यविवेके द्रष्टव्यः (पृ.२४६-२४८)।

हिन्दी—नासिका स्थान में उच्चरित होने वाला वर्णविशेष नासिक्य कहा जाता है। रूढि से 'हुँ' ऐसे सङ्केत से लिखा जाने वाला वर्ण इस शब्द से बताया जाता है।

पार्षदम्— तत्तच्छाखाध्यायिवैदिकविद्वत्परिषदा निर्णीतस्य वेदोच्चारणसिद्धान्तस्य प्रतिपादकं शास्त्रम्, प्रातिशाख्यापरपर्यायम्। "पदप्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि" इति निरुक्ते (१।६।१) यास्कः। "पार्षदकृतिरेषा तत्र भवताम्" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (ए ओङ् ऐ औच् इत्यत्र, वा.४; १।१।४८, वा.३) पतञ्जलिः। "शास्त्रविशेषाध्यायिनां समवायः परिषत् पर्षद् वा तत्र भवा कृतिः" इति उद्योते (ए ओङ् ऐ औच् इत्यत्र, वा. ४) नागोजिभट्टः।

हिन्दी—उस-उस वेदशाखा के विद्वानों की परिषद् से निर्णीत वेदोच्चारण के सिद्धान्तों का प्रतिपादक ग्रन्थ (प्रातिशाख्य)'

प्रयत्नः— "प्रकर्षेण यत्नो वर्णोच्चारणं प्रति अस्पृष्टादिभिः स प्रयत्नः" इति पञ्जिकायाम् (श्लो.३८)। "प्रयतनं प्रयत्नः" इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे प्रक्रमप्रकरणे, पाणिनीयव्याकरणभाष्ये च (१।१।९)।

हिन्दी—वर्णों के उच्चारण के लिए विशेष रूप से किया जाने वाला यत्न।

प्रातिशाख्यम्— "शाखायांशाखायां प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यम्" (द्र.– अष्टा.२।१।६, ४।३।५६, माधवीयधातुवृत्तौ १।९०)। तत्तच्छाखासम्बद्धं वर्ण-स्वर-मात्रा-बल-साम-सन्तानप्रतिपादकं शास्त्रम्। प्रातिशाख्यानां शिक्षा-ग्रन्थत्वं तेषां विवरणं च कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया उपबन्धे प्रतिपादितं द्रष्टव्यम् (पृ.१०–३०)।

हिन्दी—वेद की उस-उस शाखा से सम्बद्ध वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान इन विषयों का प्रतिपादक शास्त्र प्रातिशाख्य कहा जाता है।

प्लुतः— प्लवनं प्राप्तस् त्रिगुणितमात्रः स्वरः। क्वचिच् चतुर्मात्रोऽपि स्वरः प्लुत इष्यते। प्लुतविवरणं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यम् (पृ.४४४–४५०)। "ह्रस्वं द्विमात्रासंयुक्तं प्लुतमाहुर् मनीषिणः। दीर्घं तु मात्रासंयोगाद् वृद्धमित्यभिधी-यते" इति मात्रालक्षणग्रन्थे (१।४), चारायणीयशिक्षायां च (१।२०)।

हिन्दी—त्रिगुणित मात्रा वाला स्वर। कहीं-कहीं चतुर्गुणित मात्रा वाला स्वर भी प्लुत माना गया है। दीर्घ स्वर में एक मात्रा की वृद्धि होने पर वैसे प्लुत स्वर को वृद्ध स्वर भी कहा गया है।

बर्स्वः— ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तेः पश्चादुच्चः प्रदेशो बर्स्वः। स च ऋकारऌकारयोः स्थानत्वेन तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये प्रतिपादितः (२।१८) "अवकान् दन्तमूलैर् मृदम् बर्स्वैः" इति माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदमन्त्रार्षसंहितायाम् (२५।१)। "बर्स्वं स्याद् दन्तपीठिका" इति तन्महीधरव्याख्यायाम्। "रेफं बर्स्व्यमेके" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।४६)। "रेफं वर्त्स्यमेके" इति तत्र पाठान्तरम्।

हिन्दी—ऊपर की दन्तपङ्क्ति से पीछे का उच्च भाग बर्स्व कहा जाता है।

बलम्— स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानसमुदायः। तैत्तिरीयारण्यकोक्तशिक्षाविषयेषु चतुर्थो विषयः।

हिन्दी— स्थान, करण, आभ्यन्तरप्रयत्न और बाह्यप्रयत्न का समुदाय को तैत्तिरीय आरण्यक में प्रतिपादित शिक्षा के विषयों में बल कहा गया है।

बाह्यप्रयत्नः— आस्याद् बहिर्भवो बाह्यः, बाह्यश् चासौ प्रयत्नो बाह्यप्रयत्नः। तदुक्तं पाणिनीयव्याकरणभाष्ये **"सन्ति ह्यास्याद् बाह्याः प्रयत्नाः, ...के पुनस्ते? विवारसंवारौ श्वासनादौ घोषवदघोषता अल्पप्राणता महाप्राणतेति"** इति (१।१।९, वा.२)।

हिन्दी— होठों से काकलक (कोमलतालु का पश्चिम प्रान्त) तक का जो मुख-कुहररूप आस्य है उस से बाहर स्वरयन्त्र में होने वाले जो विवार संवार इत्यादि प्रयत्न हैं उनको बाह्यप्रयत्न कहते हैं।

मन्द्रः— मधुरगम्भीरः स्वरः। मन्द्रशब्दो मन्देरौणादिकेन स्फायितञ्चीत्यादिसूत्रेण (२।१३) प्रोक्तेन रक्प्रत्ययेन व्युत्पादितः। **"मन्द्रं मन्दनं मोदनं वा"** इति यास्काभिप्रायः (६।५।१)।

हिन्दी— मधुर और गम्भीर स्वर मन्द्र स्वर कहा जाता है।

महाप्राणः— महान् प्राणो यस्योच्चारणे स वर्णो महाप्राणः। **"महति वायौ महाप्राणः, अल्पे वायावल्पप्राणः, साऽल्पप्राणमहाप्राणता"** इत्यापिशलीयशिक्षासूत्रे।

हिन्दी— जिस वर्ण के उच्चारण में ज्यादा वायु लगता है उस वर्ण को महा-प्राण कहते हैं। ख छ ठ थ फ, घ झ ढ ध भ, श ष स ह महाप्राण वर्ण हैं।

मात्रा— परिमाणविशेषः। **"मात्रा ह्रस्वः"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।२७)। **"अमात्र-स्वरो ह्रस्वः, मात्रा च"** इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (१।५५,५६)। **"रूपम् अ-इ-उ-ऋ-लृनाम् पूर्णं लघुतमं च यत्। सा मात्रा तन्मितः कालो भक्त्या मात्रेति कीर्त्यते"** इति कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां मात्राध्यायारम्भे (४।१)। तद्विस्तरस् तत्रैव द्रष्टव्यः (पृ.४४२–४४३)। **"मात्रा मानात्"** इति यास्कः (४।४।४)।

हिन्दी— अकारादि स्वरों के लघुतम स्वरूप को (और उनके उच्चारणकाल को भी) मात्रा कहते हैं।

मूर्धा— मुखकुहरे तालुस्थानात् पश्चात् स्थित उच्चतमः स्थानविशेषः।

हिन्दी— मुखकुहर में तालुस्थान से पीछे का उच्चतम स्थान मूर्धा कहा जाता है।

यमः— यम्यन्ते मुखभवश्रुतियमनेन निर्वर्त्यन्ते इति यमा वर्णविशेषाः। **"यच्छन्तीति यमाः, स्वयमेवोपरमेरन्, के ते यमाः, लोके कुं खुं गुं घुं इति"** इति पञ्जिकायाम् (श्लो.४–५), **"श्रुतिर् वा न मुख्या (मुखभवा)ऽस्ति समानकाला"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (६।३३)। यमलवर्णत्वं यमत्वमिति ह्विट्नि-सिद्धेश्वरवर्म-यालेन-सोमनाथशर्म(सिग्देल)-विधातृमिश्रादिधारणा तु वस्तुस्थितिप्रतिकूला यमवर्णोच्चारणगतवैशिष्ट्यसूचनहीनेति हेयैव। सिद्धान्तकौमुदीस्थे यमानां व्याख्याने उदाहरणे च स्थितो दोषोऽत्रैव व्याख्यायां चतुर्थपञ्चमपद्यव्याख्यानं दृष्ट्वा ज्ञातव्यः। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यम् (पृ.२३४–२४६)। **"यमो यच्छतीति सतः"** इति यास्कः (१०।२।६)।

हिन्दी— जिस वर्ण के उच्चारण में करण स्थान में जाकर स्थिर रहता है, वर्ण-ध्वनि उत्पन्न नहीं होता है, उस वर्ण को यम कहते हैं (इस विषय में ह्विट्नि, सिद्धेश्वर वर्मा, यालेन, सोमनाथशर्मा (सिग्देल), विधाता मिश्र इत्यादि की धारणा गलत है)। [द्र.- मूल ग्रन्थ की व्याख्या, श्लो.४,५]।

योगवाहः— योगेन स्वपूर्वस्थेन स्वोत्तरस्थेन वा स्वरेण युक्ता वहन्ति व्यवहारं निर्वर्तयन्तीति योगवाहाः ककारादयो हकारान्ता व्यञ्जनवर्णाः। ऋक्तन्त्रे हि एतस्मिन्नर्थे योगवाहशब्दस्य प्रयोगो दृश्यते (१।२)।

हिन्दी— स्वपूर्ववर्ती अथवा स्वपरवर्ती स्वर से मिलकर अक्षर बनने वाले ककारादि हकारान्त व्यञ्जन वर्ण योगवाह कहे जाते हैं।

रक्तः— अनुनासिकः स्वरः।

हिन्दी— अनुनासिक अर्थात् मुख और नासिका दोनों के सहभाव से उच्चरित होने वाला स्वर रक्त स्वर कहा जाता है।

रङ्गः— नासिकास्थाने एवोच्चारणीयः पूर्वस्वरप्रान्तभागे ऐकारे इकार इव औकारे उकार इव च संलग्नो वेदेषु उपलभ्यमानो वर्णः। तदुच्चारणप्रकारः पाणिनीयशिक्षायां चतुर्भिः पद्यैः प्रतिपादितः (श्लो.२६-२९)। तन्निरूपणं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां वर्णाध्याये रङ्गविवेके द्रष्टव्यम् (पृ.२२१-२३०)। रज्यतेऽस्मिन्निति रङ्गः।

हिन्दी—जैसे ऐकार के उत्तरभाग में संलग्न होकर इकार भाग आता है, अथवा जैसे औकार के उत्तरभाग में संलग्न होकर उकारभाग आता है वैसे ही स्वपूर्ववर्ती स्वर के पश्चाद्भाग में संलग्न होकर आने वाला, केवल नाक से बोला जाने वाला, वेदों में पाया जाने वाला वर्ण रङ्ग कहा जाता है। मूल ग्रन्थ में २६-२९ श्लोकों की व्याख्या देखिए।

वर्गः— क-च-ट-त-पादीनां वर्णानां पञ्चकैः कृतेषु समूहेषु अन्यतमः समूहः।

हिन्दी—क, च, ट, त, प इत्यादि वर्णों के पाँच-पाँच वर्णों का समुदाय कवर्ग, चवर्ग इत्यादि रूप में वर्ग कहा जाता है।

वर्णः— मनुष्यस्य वाण्याः पृथक्प्रयत्नजाभ्यां भागाभ्यां तादृशैर् भागैर् वाऽपि रहितः स्वतन्त्रेण यत्नेन निर्वर्त्यः शब्दविशेषो वर्णः। **"पृथक्प्रयत्ननिर्वर्त्यं हि वर्णमिच्छन्त्याचार्याः"** इति काशिकायाम् (ऐ औच् इत्यत्र)। **"येनैव यत्नेनैको वर्ण उच्चारयति विच्छिन्ने वर्णे उपसंहृत्य तमन्यमुपादाय द्वितीयः प्रयुज्यते तथा तृतीयस्तथा चतुर्थः"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (१।४।१०९)। वर्णयन्ति चित्रयन्ति स्वरूपविशेषं प्रापयन्ति ध्वनिमिति वर्णा अकारादयः ककारादयश् च। **"वर्णो वृणोतेः"** इति यास्कः (२।१।३), शिक्षापञ्जिकाकारश्च (श्लो.३)। ध्वनेः स्वरूपविशेषो हि वर्णः, **"प्रजापतेर् व्वर्ण्णः"** (मा.सं. ४।२६, तै.सं. १।२।४।७, २।४।११।६, २।५।१।३,४; २।५।८।१,४) इत्यादिषु प्रयोगेषु वस्तुविशेषस्य स्वरूपविशेषे वर्णशब्दस्य वेदेषु प्रयोगस्य दर्शनात्। वर्णशब्दोऽक्षरार्थेऽपि **"तानि शुक्राण्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस् त्रयो वर्णा अजायन्ताऽकार उकारो मकार**

इति, तानेकधा समभरत् तदेतदोमिति" इति ऐतरेयिब्राह्मणे (२५।७), "यावन्मात्रमुल्बणं तावद् ब्रूयादृचं वाऽर्धर्चं वा पादं वा पदं वा वर्णं वेति ह स्माऽऽह जातूकर्ण्यः" इति शाङ्खायनब्राह्मणे च (२६।५) प्रयुक्तो दृश्यते। गोपथब्राह्मणे (१।१।१६, १।१।२४-२७), तैत्तिरीयारण्यके (७।२) च अक्षरार्थकवर्णशब्दप्रयोगः प्रसिद्धः। यत् तु केन चित् "लेखे कृष्णादिवर्णैरभिव्यज्यमानतयाऽकारादिरेखासङ्केता वर्णाः, तदभेदादुच्चार्यमाणा अकारादयोऽपि वर्णा उच्यन्ते" (प्रतिसंस्कृतसिद्धान्तकौमुद्याम्, पृ.४) इत्युक्तम्, तन् मन्दम्, अलेख्यायामपि श्रुतौ वर्णशब्दप्रयोगस्य दर्शनात्।

हिन्दी— कण्ठध्वनि का रूपविशेष वर्ण कहा जाता है। इस में अकारादि स्वर और ककारादि व्यञ्जन दोनों आते हैं। कहीं पर अक्षर अर्थ में भी वर्ण शब्द का प्रयोग मिलता है।

वर्णसमाम्नायः— वर्णसमुदायोपदेशः, अक्षरसमाम्नायः।

हिन्दी— सम्पूर्ण वर्णों का क्रमबद्ध उपदेश वर्णसमाम्नाय कहा जाता है।

वर्त्सः (बत्स्र्वः?)— ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तेः पश्चादुच्चः प्रदेशो वर्त्सः (बत्स्र्वः?)। [ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।४६) पाठान्तरं दृश्यम्]।

हिन्दी— ऊपर की दन्तपङ्क्ति से पीछे का उच्च (उभरा हुआ) भाग।

वर्त्स्यः (बत्स्र्व्यः?)— वर्त्स-(बत्स्र्व?)-स्थानभवो वर्णः।

हिन्दी— वर्त्स (अथवा बत्स्र्व?) स्थान में उत्पन्न होने वाला वर्ण।

विवारः— "कोष्ठेऽभिहन्यमाने गलबिलस्य विवृतत्वाद् विवारः" इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे, "कण्ठबिलस्य विकासो विवारः" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्यप्रदीपे (१।१।९)।

हिन्दी— कण्ठबिल का विस्तृत होना विवार कहा जाता है।

विवृतम्— वर्णस्योच्चारणे स्थानात् करणस्य विश्लेषो विवृतम्। जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां तत्तद्वर्णोत्पत्तिस्थानात् ताल्वादितो दूरत्वे विवृततेति सिद्धान्तकौमुदीतत्त्वबोधिन्यवलोकनेऽपि स्पष्टं स्यात्।

हिन्दी— वर्ण के उच्चारण में स्थान से करण का विश्लेष (दूर जाना) विवृत कहा जाता है।

विवृत्तिः— विशेषेण वृत्तिः विवृत्तिः। पदान्ते पदमध्ये वा स्थिते स्वरपरके स्वरे स्थानकरणविमोक्षसहितो विरामो विवृत्तिः। **"द्वयोस् तु स्वरयोर् मध्ये सन्धिर् यत्र न दृश्यते। विवृत्तिस् तत्र विज्ञेया यऽ ईशे तु निदर्शनम्"** इति याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.९४)। **"विवेकेन पृथग्भावेन वर्तते इति विवृत्तिः"** इति नारदीयशिक्षाव्याख्यायां भट्टशोभाकरः (२।४।१)। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां सामाध्याये विवृत्तिरूपविरामनिरूपणे द्रष्टव्यम् (पृ.५७८–५८२)।

हिन्दी— पदान्त में अथवा पदमध्य में भी रहे हुए स्वर में परवर्ती स्वर रहने पर होने वाला स्थान-करणविमोक्षयुक्त विराम विवृत्ति कही जाती है।

विसर्गः— **"विविधं सृज्यते इति विसर्गः"** इति शिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.४–५), **"विविधं सृज्यते क्षिप्यते इति विसर्गः"** इति पञ्जिकायाम् (श्लो.४–५)। **"विसृज्यते पुनर् वर्णैर् न संयुज्यते इति विसर्गः"** इति कातन्त्रव्याकरणवृत्तौ दुर्गसिंहः (१।१।१६) इति संस्कृतव्याकरणशब्दकोशे। श्वासस्य विनाऽवरोधं बहिर् विसर्जनेनोच्चारणीयश् श्वासमयस् सर्वदा स्वपूर्ववर्तिस्वराङ्गत्वेन प्रयोज्यो वर्णविशेषो हि विसर्गः। विसृज्यते विनाऽवरोधं श्वासरूपेण बहिर् निष्काल्यते इति विसर्ग इति बोध्यम्। विसर्गोच्चारणप्रकारनिदर्शनानि कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां द्रष्टव्यानि (पृ.२६१)।

हिन्दी— श्वास का अवरोध के विना बाहर छोडने से उच्चारणीय श्वासमय और सर्वदा स्वपूर्ववर्ती स्वर के अङ्ग के रूप में आने वाला वर्णविशेष विसर्ग कहा जाता है।

विसर्जनीयः— विसर्ग एव विसर्जनीय इति अभिनिष्ठान इति विसृष्ट इति चोच्यते। पाणिनिना विसर्जनीयशब्द एव प्रयुक्तः सर्वत्र (अष्टा.८।३।१५, ३४, ३५, ५८) शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्येऽपि 'विसर्जनीय'-शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति (१।४१,७१,८६, १६०; ३।६, ४।३४,११४; ७।६,७,९; ८।१२, जीवानन्दसंस्करणे, १८९२ क्रै.)। अभिनिष्ठानशब्दसाधुत्वान्वाख्यानाय च पाणिनिना स्वतन्त्रम् महत् सूत्रं रचितम् **"अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्"** (अष्टा.८।३।८६) इति।

हिन्दी— विसर्ग ही पाणिनि मुनि से विसर्जनीय कहा गया है।

विसृष्टः— विसर्जनीयः।

हिन्दी— विसर्ग ही कहीं-कहीं विसृष्ट भी कहा गया है।

वृत्तिः— येन वर्तनेन (गतिविशेषेण) वाग् वर्तते सा वृत्तिः। वृत्तिश् च त्रिधा द्रुता मध्यमा विलम्बितेति। तासां स्वरूपविशेषा उपयोगविशेषाश् च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां प्रतिपादिता द्रष्टव्याः (पृ.५६१–५६५)।

हिन्दी— जिस गतिविशेष से वाणी प्रयुक्त होती है उस गतिविशेष को वृत्ति कहा जाता है, जैसा द्रुता वृत्ति, मध्यमा वृत्ति, विलम्बिता वृत्ति। (इन वृत्तियों के प्रयोग के विषय में मूल ग्रन्थ के ३१ वें श्लोक की व्याख्या देखें।)

व्यञ्जनम्— स्वरात् प्राक् पश्चाद् वा गत्वा स्वरेण सहाऽक्षराङ्गत्वं गच्छन्तो वर्णा व्यञ्जनानि। **"न पुनरन्तरेणाऽचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति, अन्वर्थं खल्वपि निर्वचनं स्वयं राजन्त इति स्वरा अन्वग् भवतीति व्यञ्जनम्"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये पतञ्जलिः (१।२।२९–३०)। **"अथवा गतिरपि व्यञ्जेरर्थः। विविधं गच्छन्त्यजुपरागवशादिति व्यञ्जनम्। उपरागश् च पूर्वपराऽच्सन्निधानेऽपि परेणाऽचा भवति न पूर्वेण"** इति तत्र कय्यटः। नागोजिभट्टेनाऽपि तदेव समर्थितम्। किन्तु व्यञ्जनस्य पूर्वस्वराङ्गताया अपि दर्शनात् तयोरुक्तिस् तदंशेऽबोधमूलिकैव दृश्यते। **"व्यञ्जयन्ति प्रकटान् कुर्वन्त्यर्थानिति व्यञ्जनम्"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्यव्याख्याने उव्वटोक्तिश् च (१।६) न समीचीना व्यञ्जनानामुच्चारणगतवैशिष्ट्यस्य प्रतिपादनेऽक्षमत्वात्।

हिन्दी— स्वर से पहले अथवा पीछे आकर स्वर के अङ्ग के रूप में ही उच्चरित होने वाले ककारादि वर्ण व्यञ्जन कहे जाते हैं।

शिक्षा— वर्ण-स्वर-मात्रा-स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानरूपबल-साम-सन्तानादिप्रतिपादकं शास्त्रम्। तदुक्तं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायाम्— **"वर्णानां च स्वराणां च मात्राया बलसाम्ययोः। पदान्ताऽद्योः संहिताया विचारो यत्र लभ्यते॥ तत्सम्बद्धाश् चाऽपरेऽपि विषया यत्र वर्णिताः। भवन्ति सा हि प्रथमा विद्या शिक्षेति भाषिता"** इति उपक्रमाध्यायारम्भे (१।२–३)। **"शिक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्"** इति तैत्तिरीयोपनिषद्व्याख्याने शङ्करभगवत्पादः। **"वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिर्निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षाऽऽपिशलीयादिका"** इति काव्यमीमांसायां द्वितीयेऽध्याये राजशेखरः। **"शीक्षा वर्णानां स्थानप्रयत्नादिकमध्ययनकाले कर्मणि च मन्त्राणामुच्चारणप्रकारं शिक्षयतीति, पृषोदरादित्वाद् दीर्घः"** इत्यापस्तम्बधर्मसूत्रव्याख्याने हरदत्तः (२।४।२।११)। **"वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा"** इति ऋग्वेदव्याख्याभूमिकायां सायणः। **"शिक्ष्यतेऽनया वर्णोच्चारणमिति शिक्षा"** इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो.१)। **"शिक्षा स्वरवर्णोच्चारकं शास्त्रम्"** इति, **"शिक्ष्यतेऽनया बालेभ्यो ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरितोरःकण्ठशिरोजिह्वामूलदन्तनासौष्ठस्थानानि (सा शिक्षा)"** इति च पाणिनीयशिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.१)। **"शिक्ष्यन्ते मन्त्रब्राह्मणस्वरूपं सम्यगनयोः पाठश् चेति शिक्षा। शिक्ष विद्योपादाने इति धातोरप्रत्यये रूपम्"** इति नारदीयशिक्षाविवरणे (१।१।१, पुण्यपत्तनस्थ-भाण्डारकर-प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरसंस्करणे, १९८६ क्रै.) भट्टशोभाकरः। **"स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नाऽनुप्रदानतः। सवनाद्यैश् च सा शिक्षा वर्णानां पाठशिक्षणात्"** इति शुक्रनीतिसारे (४।२८१)। अन्येषामपि विचारकाणां शिक्षापरिभाषा अत्रैव ग्रन्थे भूमिकायां शिक्षापरिचयप्रकरणे द्रष्टव्याः।

हिन्दी—१. अकारादि वर्ण, २. उदात्तादि स्वर, ३. ह्रस्वादि मात्रा, ४. स्थान-करण-प्रयत्ना-ऽनुप्रदानरूप बल, ५. उच्चारणमाधुर्यादिरूप साम और ६. लोप, आगम, वर्णविकार, प्रकृतिभाव इत्यादि परिणाम वाली संहिता-

रूप सन्तान ये छह विषयों का मुख्य रूप से जिस वेदाङ्गशास्त्र में प्रतिपादन होता है उसको शिक्षा कहते हैं। इसी ग्रन्थ की भूमिका में भी देखें।

श्वासः— वर्गप्रथमद्वितीयशषसविसर्जनीयादीनामुच्चारणे कण्ठबिले विवृते नादरहितं शब्दं जनयन् निस्सरन् प्राणः श्वास इत्युच्यते। **"विवृते कण्ठबिले श्वासो जायते"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे।

हिन्दी— वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्णों के तथा श-ष-स-विसर्गों के उच्चारण में कण्ठबिल विस्तृत होने पर नादरहित ध्वनि को जनम देता हुआ निकलने वाला प्राण श्वास कहा जाता है। यह एक बाह्यप्रयत्न है।

संवारः— वर्गतृतीयचतुर्थपञ्चमादीनामुच्चारणे गलबिलस्य संवृतत्वं संवारः। **"गलबिलस्य संवृतत्वात् संवारो जायते"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे।

हिन्दी— वर्गों के तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमवर्णों के उचारण में होने वाला कण्ठबिल का संकरा पन (अणुता) संवार कहा जाता है। यह भी एक बाह्यप्रयत्न है।

संवृतम्— वर्णस्योच्चारणे करणस्य स्थानसमीपेऽवस्थानम्। अकारस्य संवृतं प्रयतनम् इति, अकारः संवृत इति च प्रयोगदिक्।

हिन्दी— वर्ण के उच्चारण में करण का स्थान के समीप में आना अथवा उक्त प्रकार की स्थान-करणस्थिति से उच्चरित होने वाला (वर्ण) संवृत कहा जाता है।

संहिता— वर्णयोः परः सन्निकर्षः (पदयोः परः सन्निकर्षो वा)।

हिन्दी— वर्णों का अथवा पदों का अत्यन्त सन्निकर्ष (एकप्राण से उच्चरित होना) संहिता है। [शिक्षाशास्त्र में पदों के बीच की संहिता का निरूपण रहता है।]

सन्तानः— संहिता (सन्धिः)। तैत्तिरीयारण्यके (७।२) उक्तेषु शिक्षायाः षट्सु मुख्येषु विषयेषु षष्ठो विषयः।

हिन्दी— संहिता को (सन्धि को) ही तैत्तिरीयारण्यक में (७।२) उक्त शिक्षा-शास्त्र के मुख्य छह विषयों में छठे विषय के रूप में सन्तान कहा गया है।

सन्धिः— संहिता (=वर्णयोर् वर्णलोपागमविकारप्रकृतिभावान्यतमफलकः परः सन्निकर्षः)।

हिन्दी— संहिता को अथवा सन्तान को ही सन्धि कहा जाता है। वर्ण का लोप अथवा आगम अथवा विकार अथवा प्रकृतिभाव इन परिणामों में किसी परिणाम को देने वाला दो वर्णों का अत्यन्त समीप में उच्चारण संहिता अथवा सन्तान अथवा सन्धि कहा जाता है।

सन्ध्यक्षरम्— अवर्णस्य इवर्णेन उवर्णेन वा योगेन एकवर्णीभावेन जातमक्षरम्। ए ओ ऐ औ इत्येतेषामेकतमः स्वरः।

हिन्दी— अवर्ण का इवर्ण से अथवा उवर्ण से एकप्रयत्नोच्चारणीयता से युक्त एकवर्णीभूत ए ओ ऐ औ ये वर्ण सन्ध्यक्षर कहे जाते हैं। [आधुनिक देश्य भाषाओं में तो अन्य अनेक सन्ध्यक्षरों की उपस्थिति है।]

समानाक्षरम्— विजातीयस्वरयोर्योगेन रहितमक्षरम्। अ इ उ ऋ लृ (ॡ) इत्येतेषामेकतमः स्वरः।

हिन्दी— विजातीय स्वरों के योग से रहित अ इ उ ऋ लृ (ॡ) इन अक्षरों में से कोई भी अक्षर।

सवर्णः— **"समानस्थानकरणाऽऽस्यप्रयत्नः सवर्णः"** इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (१।४३)। **"तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्"** इति पाणिनिः (अष्टा.१।१।९)।

हिन्दी— समान स्थान, करण और आभ्यन्तरप्रयत्न वाले वर्ण एक दूसरे के सवर्ण कहे जाते हैं।

साम— अतिद्रुतत्वादिदोषशून्यं माधुर्यादिगुणयुतं लययुक्तमुच्चारणम्। **"साम वर्णानां मध्यमवृत्त्योच्चारणं समता"** इति तैत्तिरीयोपनिषदः शिक्षावल्ल्या

व्याख्याने शङ्करभगवत्पादः। **"सामशब्देन साम्यमुक्तम्। अतिद्रुतातिविलम्बितगीत्यादिदोषराहित्येन माधुर्यादिगुणयुक्तत्वेनोच्चारणं साम्यम्"** इति ऋग्वेदव्याख्याभूमिकायां सायणः। एतच् च तैत्तिरीयारण्यके (७।२) उक्तेषु शिक्षायाः प्रतिपाद्येषु मुख्येषु षट्सु विषयेषु पञ्चमो विषयः।

हिन्दी— उच्चारण में अतिशीघ्रता इत्यादि दोषों से रहित, माधुर्यादि गुणों से युक्त तथा लययुक्त उच्चारण का गुणविशेष साम कहा जाता है।

स्थानम्— तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानम्। फुस्फुसान् निर्गतः प्राणो यान् देशान् प्रतिहत्य वर्णीभवति ते देशा वर्णानां स्थानान्युच्यन्ते। **"स्वराणां यत्रोपसंहारस् तत् स्थानम्, अन्येषां तु यत्र स्पर्शनं तत् स्थानम्"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२।३१, ३३)। **"इह यत्र स्थाने वर्णा उपलभ्यन्ते .... तत् स्थानम्"** इत्यापिशलीयशिक्षासूत्रे। **"अधिकरणं वर्णानां स्थानशब्देनोच्यते"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्यभाष्ये उव्वटः (१।४९)। **"यदुपक्रम्यते तत् स्थानम्"** इति शौनकीयचतुरध्यायिकाभाष्यकारः (१।१८)। अष्टौ स्थानानि प्रसिद्धानि। कुत्रचिद् दश ततोऽधिकानि वा स्थानानि उक्तानि।

हिन्दी— फेफडों से निकलने वाला प्राण नाक में अथवा मुख के जिस देशविशेष में ठक्कर देकर वर्ण के रूप में परिणत होता है उस देशविशेष को स्थान कहते हैं।

स्पर्शः— येषां वर्णानामुच्चारणे जिह्वामूलमध्योपाग्रादिकं करणं तत्तद्वर्णसम्बद्धे स्थाने सम्यग् लग्नं भवति ते कादयो वर्णाः स्पर्शा इत्युच्यन्ते। **"जिह्वामूलतालुमूर्धदन्तोष्ठादिभिः परस्परं स्पर्शैरभिनिष्पत्याऽऽविर्भवन्तीति स्पर्शाः"** इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो.४—५)। **"स्पृष्टप्रयत्नजन्यत्वात् स्पर्शा इत्याख्यायन्ते"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।७) गार्ग्यगोपालयज्वा। **"रूढ्यभावान् नाऽन्तस्थानां स्पर्शत्वव्यवहारः"** इति च तत्रैव।

हिन्दी— जिन वर्णों के उच्चारण में जीभ के मूल मध्य इत्यादि करण उस-उस वर्ण के स्थान में स्पर्श करते हैं (जुड जाते हैं) वे ककारादि मकारान्त वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं।

स्पृष्टम्— वर्णोच्चारणे तत्तत्स्थाने तत्तत्करणेन स्पर्शनं स्पृष्टम्। "तत्र ध्वनावुत्पद्यमाने यदा स्थानकरणप्रयत्नाः परस्परं स्पृशन्ति सा स्पृष्टता" इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे। "नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितो वायुः प्राणो नाम ऊर्ध्वमाक्रमन्नुरःप्रभृतीनि स्थानान्याहन्ति, ततो वर्णस्य तदभिव्यञ्जकध्वनेर्वोत्पत्तिः, तत्रोत्पत्तेः प्राग् यदा जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानि तत्तद्वर्णोत्पत्तिस्थानं ताल्वादि सम्यक् स्पृशन्ति तदा स्पृष्टता, ईषद् यदा स्पृशन्ति तदा ईषत्स्पृष्टता, समीपावस्थानमात्रे संवृतता, दूरत्वे विवृतता, अत एव इचुयशानां तालव्यत्वाऽविशेषेऽपि तालुस्थानेन सह जिह्वाग्रादीनां चवर्गोच्चारणे कर्तव्ये सम्यक् स्पर्शः, यकारे ईषत् स्पर्शः, शकारेकारयोस्तु दूरेऽवस्थितिरित्यादि अनुभवं शिक्षाकारोक्तिं चाऽनुसृत्य विवेचनीयम्" इति शब्दकौस्तुभे (१।१।९) भट्टोजिदीक्षितोऽपि।

हिन्दी— वर्णों के उच्चारण में उस-उस वर्ण के स्थान में उस-उस वर्ण के करण से छूने से होने वाला आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट कहा जाता है।

स्वरः— "स्वृ शब्दोपतापयोः, स्वयति शब्द्यतेऽनेन व्यञ्जनमिति करणेऽच्प्रत्ययः" इति पञ्जिकायाम् (श्लो.४–५), "स्वयतिः शब्दार्थस्य करणेऽच्" इति शिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.४–५), "स्वयं राजन्त इति स्वराः" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (१।२।२९–३०)। स्वरपरिभाषा तत्समीक्षा च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां वर्णाध्याये वर्णवर्गीकरणाधिकारे द्रष्टव्या (पृ.२८५–२८७)।

हिन्दी— दूसरे वर्ण से संयुक्त न होकर स्वतन्त्र रूप में उच्चरित हो सकने वाला अकारादि वर्ण स्वर कहा जाता है। यह परिभाषा स्वाभाविक संस्कृत भाषा के उच्चारण के वैशिष्ट्य को लेकर दिया गया है। आधुनिक भाषाशास्त्रियों से दी गई स्वर की परिभाषा संस्कृत के वर्णों में नहीं लग सकती है। इस विषय में कौण्डिन्न्यायनशिक्षा में संस्कृत भाषा में पर्याप्त प्रतिपादन किया गया है (पृ.२८५-२८७)।

स्वरभक्तिः— स्वरभागः। "स्वरभक्तिः स्वरप्रकारः" इत्युव्वटः (ऋग्वेदप्रातिशाख्यव्याख्याने १।३२)।

हिन्दी— वेद में प्रयुक्त होने वाला ऋ-ऌ-वर्णों का भागविशेष स्वरभक्ति कहा जाता है। अन्य विवरण कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में देखिए (पृ.२४८-२५५)।

स्वरितः— **"स्वरतीति स्वरित आक्षेपनिष्पाद्यो य उदात्तानुदात्तविकारः"** इति पञ्जिकायाम् (श्लो.११), **"स्वयति पार्श्वत उत्क्षिप्यते इति स्वरितः"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।४०)। स्वरितस्वरूपभेदादिविवेचनं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां स्वराध्याये स्वरितनिरूपणे द्रष्टव्यम् (पृ.३२५-३५०)।

हिन्दी— उदात्तभाग से और अनुदात्तभाग से मिश्रित अथवा उदात्त और अनुदात्त के आमिश्रण से युक्त अथवा उदात्त और अनुदात्त के अन्तराल में रहने वाला स्वर।

ह्रस्वः— **"ह्रसति ह्रस्यते वा ह्रस शब्दे उल्बादिः"** (उणादौ ४।९५) इति अमरसिंहकृतनामलिङ्गानुशासनव्याख्याने (२।६।४६), **"ह्रसति ह्रस शब्दे बाहुलकाद् वः"** इति च तत्रैव (३।१।७०) भानुजिदीक्षितः। **"ह्रस्वो ह्रसतेः"** इति निरुक्ते (३।३।१) यास्कः। **"मात्रा ह्रस्वः"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।२७)। **"अमात्रस्वरो ह्रस्वः, मात्रा च"** इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (१।५५,५६)। **"ऋकारल्कारौ ह्रस्वौ, अकारश्च, तेन च समानकालः स्वरः"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (१।३१-३३)॥

हिन्दी— अकारादि स्वरों का लघुतम स्वरूप और उसके काल से तुल्य काल वाला स्वर अथवा एकमात्राकाल वाला स्वर ह्रस्व कहा जाता है॥

३. पाणिनीयशिक्षासूत्रम्[1]

आकाशवायुप्रभवः शरीरात् समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ॥१॥

फुस्फुस (फेफडे) के अन्दर के आकाश में रहने वाले वायु से उत्पन्न होने वाला, शरीर से ऊपर आता हुआ और विभिन्न स्थानों में विभक्त होता हुआ जो नाद अकारादि वर्ण के रूप में परिणत होता है और मुख में आता है वह शब्द है।

तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।
स श्रेयसा चाऽभ्युदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥२॥

उसको विद्वान् ब्राह्मण लोग अच्छी तरह बुद्धिरूप गुहा में सोने वाला अत्यन्त पवित्र अक्षर ब्रह्म मानते हैं। अच्छी तरह प्रयोग किए जाने पर वह शब्दब्रह्म पुरुष को ऐहलौकिक उन्नति से और पारमार्थिक कल्याण से (मोक्ष से) भी युक्त कराता है।

स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एष द्विधाऽनिलः।
स्थानं पीडयति वृत्तिकारः प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात् ॥३॥

---

१. इस ग्रन्थ के विषय में भूमिका में सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ के प्रकरण में "पाणिनीयशिक्षासूत्र" इस शीर्षक के अन्तर्गत लिखा गया है। यहाँ युधिष्ठिरमीमांसक जी से सम्पादित ग्रन्थ को ही (२०२४ वै., २०४० वै.) लेकर उस में हिन्दी अनुवाद जोडकर प्रस्तुत किया गया है। आपिशलीयशिक्षासूत्र में और पाणिनीयशिक्षासूत्र में बहूत थोडा ही भेद है। आपिशलीयशिक्षासूत्र का पाठ परिष्कृत और शुद्ध है। अधुना उपलब्ध पाणिनीयशिक्षासूत्र का पाठ कुछ स्थलों में कुछ अपरिष्कृत और कुछ अशुद्ध भी है।

स्थान यह है, करण यह है, दो प्रकार का प्रयत्न यह है, वायु स्थान को पीडित करता है (ठोकता है), वृत्तिकारों का विवरण, वर्णों के क्रम का निर्देश (स्थानकरणादि की परिभाषा), नाभितल से वर्णाभिव्यक्ति तक की प्रक्रिया का वर्णन (ये इस ग्रन्थ के प्रकरण हैं)।

स्थानकरणप्रयत्नपरेभ्यो वर्णास् त्रिषष्टिः ॥४॥

स्थान, करण, प्रयत्न इन के भेद से वर्ण तिरसठ होते हैं।

चतुःषष्टिरित्येके।

कोई चौसठ वर्ण होते हैं ऐसा कहते हैं।

तत्र वर्णानां केषां किं स्थानं किं करणं प्रयत्नश् च ते, द्विधा विभजते (?) ॥६॥

उसमें वर्णों का किस का क्या स्थान है क्या करण है, प्रयत्न भी क्या है (यह बताया जाता है)।

१. स्थानप्रकरणम्

तत्र स्थानं तावत् ॥१॥

उसमें पहले स्थान (बताया जाता है)।

अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ॥२॥

अकार, कवर्गीय वर्ण, हकार और विसर्जनीय (विसर्ग) कण्ठस्थान में उत्पन्न होने वाले हैं।

हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ॥३॥

किन्ही लोगों के मत में हकार और विसर्जनीय उरस्स्थानक हैं।

जिह्वामूलीयो जिह्व्यः ॥४॥

जिह्वामूलीय वर्ण (विसर्गविशेष) जिह्वा में उत्पन्न होने वाला है।

कवर्गाऽवर्णाऽनुस्वारजिह्वामूलीया जिह्व्या एकेषाम् ॥५॥

किन्ही लोगों के मत में कवर्गीय वर्ण (क, ख, ग, घ, ङ), अवर्ण, अनुस्वार और जिह्वामूलीय (विसर्गविशेष) जिह्वा में उत्पन्न होने वाले हैं।

सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके ॥६॥

कोई लोग अवर्ण को सम्पूर्णमुख-स्थान वाला मानते हैं।

कण्ठ्यानास्यमात्रानित्येके ॥७॥

कोई कण्ठ्य वर्णों को मुखस्थानक बताते हैं।

इचुयशास् तालव्याः ॥८॥

इवर्ण, चवर्गीय वर्ण (च, छ, ज, झ, ञ), यकार और शकार तालु स्थान में उत्पन्न होने वाले हैं।

ऋटुरषा मूर्धन्याः ॥९॥

ऋवर्ण, टवर्गीय वर्ण (ट, ठ, ड, ढ, ण), रकार (रेफ) और षकार मूर्धा स्थान में उत्पन्न होने वाले हैं।

रेफो दन्तमूलीय एकेषाम् ॥१०॥

किन्हीं के मत में रेफ दाँतों के मूल (जड) में होने वाला है।

दन्तमूलस् तु तवर्गः ॥११॥

तवर्गीय वर्ण (त, थ, द, ध, न) दाँतों के मूल में होने वाला है।

लृतुलसा दन्त्याः ॥१२॥

स्वररूप लृवर्ण, तवर्गीय वर्ण (त, थ, द, ध, न), लकार और सकार दन्तस्थान में उत्पन्न होने वाले हैं।

वकारो दन्तोष्ठ्यः ॥१३॥

वकार दन्तकरणक ओष्ठस्थानक (दन्तोष्ठ्य) है।

सृक्किणीस्थानमेकेषाम् ॥१४॥

किन्हीं के मत में वकार का सृक्किणी स्थान है।

उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः ॥१५॥

उवर्ण, पवर्गीय वर्ण (प, फ, ब, भ, म) और उपध्मानीय (विसर्ग-विशेष) ओष्ठ स्थान में उत्पन्न होने वाले हैं।

अनुस्वारयमा नासिक्याः ॥१६॥

अनुस्वार और यम वर्ण (कँ्, खँ्, गँ्, घँ् इत्यादि वर्णविशेष) नासिका स्थान में होने वाले हैं।

कण्ठनासिक्यमनुस्वारमेके ॥१७॥

कोई लोग अनुस्वार को कण्ठस्थानक और नासिकास्थानक (द्विस्थानक) मानते हैं।

यमाश् च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ॥१८॥

किन्हीं लोगों के मत में यमवर्ण नासिकास्थानक और जिह्वामूलस्थानक (द्विस्थानक) हैं।

ए-ऐ कण्ठोष्ठ्यौ (कण्ठतालव्यौ) ॥१९॥

एकार और ऐकार कण्ठतालुस्थानक हैं।

ओ-औ कण्ठोष्ठ्यौ ॥२०॥

ओकार और औकार कण्ठोष्ठस्थानक हैं।

ङञणनमाः स्वस्थाना नासिकास्थानाः ॥२१॥

ङकार, ञकार, णकार, नकार और मकार अपने वर्गीय वर्ण के स्थान वाले और नासिका स्थान वाले हैं।

द्विवर्णानि सन्ध्यक्षराणि ॥२२॥

सन्ध्यक्षर (ए, ऐ, ओ, औ) दो वर्ण वाले हैं।

सरेफ ऋवर्णः ॥२३॥

ऋवर्ण (गर्भ में रहने वाले) रेफ से युक्त है।

[इति] संयुक्ता वर्णाः ॥२४॥

[इतने] संयुक्त वर्ण हैं।

एवमेतानि स्थानानि ॥२५॥

इस प्रकार ये स्थान हैं।

२. करणप्रकरणम्

करणमपि ॥१॥

करण भी (बताया जाता है)।

जिह्व्यतालव्यमूर्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् ॥२॥

जिह्वा स्थान में होने वाले वर्णों का, तालु स्थान में होने वाले वर्णों का, मूर्धस्थान में होने वाले वर्णों का और दन्त स्थान में होने वाले वर्णों का करण जिह्वा है।

जिह्वामूलेन जिह्व्यानाम् ॥३॥

जिह्वा स्थान में होने वाले वर्णों का जिह्वामूलरूप करण से (उच्चारण होता है)।

जिह्वामध्येन तालव्यानाम् ॥४॥

तालु स्थान में होने वाले वर्णों का जिह्वा के मध्यभागरूप करण से (उच्चारण होता है)।

जिह्वोपाऽग्रेण मूर्धन्यानाम् ॥५॥

मूर्धस्थान में होने वाले वर्णों का जिह्वा के उपाग्र (अग्रभाग के समीप का भाग) रूप करण से (उच्चारण होता है)।

जिह्वाऽग्राऽधः करणं वा ॥६॥

अथवा मूर्धस्थान में होने वाले वर्णों का जिह्वा के अग्रभाग का अधोभाग करण है।

जिह्वाऽग्रेण दन्त्यानाम् ॥७॥

दन्त स्थान में होने वाले वर्णों का जिह्वा का अग्रभागरूप करण से (उच्चारण होता है)।

शेषाः स्वस्थानकरणाः ॥८॥

अवशिष्ट वर्ण अपना स्थान ही करण होने वाले हैं।

इत्येतत् करणम्॥९॥

ऐसा यह करण (निरूपित हुआ)।

३. अन्तःप्रयत्नप्रकरणम्

प्रयत्नो द्विविधः॥१॥

प्रयत्न दो प्रकार का है।

आभ्यन्तरो बाह्यश् च॥२॥

आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न।

स्वस्थाने आभ्यन्तरस् तावत्॥३॥

अपने स्थान में पहले आभ्यन्तर प्रयत्न (बताया जाता है)।

स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः॥४॥

स्पर्श वर्ण (ककार से मकार तक के वर्ण) स्पृष्ट करण वाले होते हैं (स्पर्श वर्ण स्थान में करण के स्पर्श से उच्चरित होते हैं)।

ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः॥५॥

अन्तस्था वर्ण (य र ल व) थोडा सा स्पृष्ट करण वाले होते हैं (अन्तस्था वर्ण स्थान में करण के हल्के स्पर्श से उच्चरित होते हैं)।

ईषद्विवृतकरणाः ऊष्माणः॥६॥

ऊष्म वर्ण (श ष स ह) स्थान से थोडा सा हटे हुए करण वाले होते हैं (ऊष्म वर्ण स्थान से थोडा सा हटे हुए क़रण से उच्चरित होते हैं)।

विवृतकरणा वा ॥७॥

अथवा ऊष्म वर्ण (श, ष, स, ह) स्थान से हटे हुए करण वाले होते हैं (अथवा ऊष्म वर्ण स्थान से हटे हुए करण से उच्चरित होते हैं)।

विवृतकरणाः स्वराः ॥८॥

स्वर (अकार से औकार तक के वर्ण) स्थान से हटे हुए करण वाले हैं।

तेभ्य ए-ओ विवृततरौ ॥९॥

उनमें से एकार और ओकार स्थान से अधिकतर दूर हटे हुए करण वाले होते हैं।

ताभ्यामै-औ ॥१०॥

उन दो से ऐकार और औकार और अधिकर दूर हटे हुए करण वाले होते हैं।

[ताभ्यामप्याकारः।] ॥११॥

[उन दो से भी आकार और भी अधिकतर दूर हटा हुआ करण वाला होता है]।

संवृतस् त्वकारः ॥१२॥

अकार तो संवृत (स्थान के समीप में आया हुआ करण वाला) होता है।

इत्येषोऽन्तःप्रयत्नः ॥१३॥

इस प्रकार यह अन्तःप्रयत्न (आभ्यन्तर प्रयत्न) है।

४. बाह्यप्रयत्नप्रकरणम्

अथ बाह्यः ॥१॥

अब बाह्य प्रयत्न (कहा जाता है)।

वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदाना अघोषाः ॥२॥

वर्गों के प्रथम वर्ण और द्वितीय वर्ण, श, ष, स, विसर्ग, जिह्वमूलीय, उपध्मानीय तथा वर्गों के प्रथम और द्वितीय यमवर्ण, विस्तृत कण्ठविवर वाले, श्वास अनुप्रदान वाले और घोषध्वनि से (नादध्वनि से) रहित होते हैं।

वर्गयमानां प्रथमा अल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः ॥३॥

वर्गों में और यमों में पहले वर्ण थोडे प्राण से (श्वास से) उच्चरित होने वाले (अल्पप्राण) होते हैं, उक्त वर्णों में अवशिष्ट सभी वर्ण अधिक प्राण से (श्वास से) उच्चरित होने वाले (महाप्राण) होते हैं।

वर्गाणां तृतीयचतुर्था अन्तस्था हकाराऽनुस्वारौ यमौ च तृतीयचतुर्थौ नासिक्याश् च संवृतकण्ठा नादाऽनुप्रदाना घोषवन्तश् च ॥४॥

वर्गों के तीसरे वर्ण और चौथे वर्ण, अन्तस्था वर्ण (य, र, ल, व), हकार, अनुस्वार, तीसरे और चौथे यम वर्ण और नासिक्य वर्ण सङ्कुचित कण्ठविवर वाले, नाद अनुप्रदान वाले और घोषध्वनि से (नादध्वनि से) युक्त भी होते हैं।

वर्गयमानां तृतीया अन्तस्थाश् चाल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः ॥५॥

वर्गों में और यमों में तीसरे वर्ण और अन्तस्थावर्ण (य, र, ल, व) भी थोडा प्राण से (श्वास से) उच्चरित होने वाले (अल्पप्राण) होते हैं, उक्त वर्णों में अवशिष्ट सभी वर्ण अधिक प्राण से (श्वास से) उच्चरित होने वाले (महा-प्राण) होते हैं।

यथा तृतीयास् तथा पञ्चमाः ॥६॥

वर्गों में तीसरे वर्ण जैसा बाह्य प्रयत्न वाले होते हैं वर्गों में पाँचवें वर्ण भी वैसा ही बाह्य प्रयत्न वाले होते हैं।

आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः ॥७॥

इन की (पाँचवें वर्णों की) अनुनासिकता अधिक गुण है।

कादयो मावसनाः स्पर्शाः ॥८॥

क इत्यादि म तक के वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं।

यादयोऽन्तस्थाः ॥९॥

य इत्यादि वर्ण (य, र, ल, व) अन्तस्था कहे जाते हैं।

शादय ऊष्माणः ॥१०॥

श इत्यादि वर्ण (श, ष, स, ह) ऊष्मा कहे जाते हैं।

सस्थानेन द्वितीयाः ॥११॥

समान स्थान वाले ऊष्मवर्ण के सादृश्य से वर्गों में द्वितीय वर्ण (ख, छ, ठ, थ, फ) ऊष्मा कहे जाते हैं। (फकार इत्यादि का समानस्थानक ऊष्मा शष इत्यादि में न होने पर भी फकार ऊष्मा ही स्वतन्त्र रूप से [उपध्मानीय-विसर्ग के सादृश्य से] ही बताया जाता है)।

हकारेण चतुर्थाः ॥१२॥

वर्गों में चतुर्थ वर्ण (घ, झ, ढ, ध, भ) हकार के सादृश्य से ऊष्मा कहे जाते हैं।

इत्येष बाह्यः प्रयत्नः ॥१३॥

इस प्रकार यह बाह्य प्रयत्न है।

५. स्थानपीडनप्रकरणम्

तत्र स्पर्शयमवर्णकारो वायुरयःपिण्डवत् स्थानमभिपीडयति ॥१॥

उसमें स्पर्शवर्ण को और यमवर्ण को उत्पन्न करने वाला वायु लोहे के गोले की तरह स्थान को ठोकता है।

अन्तस्थवर्णकारो वायुर् दारुपिण्डवत् ॥२॥

अन्तस्थवर्ण को उत्पन्न करने वाला वायु लकडी के गोले की तरह (स्थान को ठोकता है)।

ऊष्मस्वरवर्णकारो वायुरूर्णापिण्डवत् ॥३॥

ऊष्मवर्ण को और स्वरवर्ण को उत्पन्न करने वाला वायु ऊन के गोले की तरह (स्थान को ठोकता है)।

६. वृत्तिकारप्रकरणम्

एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति— अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति। तत् कथमुक्तम् ॥१॥

इस प्रकार व्याख्यान करने में वृत्तिकार आचार्य पढ़ते हैं— अवर्ण का कुल (समूह) अठारह भेद वाला है। वह कैसे कहा गया?

ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतत्वाच् च त्रैस्वर्योपनयेन च।
आनुनासिक्यभेदाच् च सङ्ख्यातोऽष्टादशात्मकः ॥ इति ॥२॥

ह्रस्व दीर्घ प्लुत होने से (अकार तीन प्रकार का होता है), (उसमें ह्रस्वादि प्रत्येक में) (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इन) तीन स्वरों के योग से (अकार नौ प्रकार का होता है) और (उन नौ प्रकार के अकार में) अनुनासिकता के योग और अयोग से दो प्रकार बनाके गिना गया (वह अकार) अठारह प्रकार के स्वरूप से युक्त होता है। एसे (कहा गया है)।

स्वर / मात्रा / अनुनासिक्य	उदात्त			अनुदात्त			स्वरित		
	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
निरनुनासिक	अ	आ	अ३	अ॒	आ॒	अ॒३	अ॑	आ॑	अ॑३
सानुनासिक	अँ	आँ	अँ३	अँ॒	आँ॒	अँ॒३	अँ॑	आँ॑	अँ॑३

एवमिवर्णादयः ॥३॥

इसी प्रकार से इवर्ण इत्यादि (इ, उ, ऋ वर्ण) भी अठारह प्रकार के स्वरूप से युक्त होते हैं।

लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति ॥४॥

लृवर्ण के दीर्घभेद नहीं है।

तं द्वादशभेदमाचक्षते ॥५॥

उसको बारह भेद वाला बताते हैं।

यदृच्छाशब्देऽशक्तिजाऽनुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस् तदाऽष्टादश-प्रभेदं ब्रुवते क्लृपक इति ॥६॥

स्वैच्छिक प्रयोग के शब्द में अथवा अशक्ति से प्रयुक्त अनुकरणशब्द में जब लृवर्ण के दीर्घ होंगे तब लृवर्ण को अठारह भेद वाला बताते हैं। क्लृपक यह शब्द लृकारघटित है।

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति ॥७॥

सन्ध्यक्षरों के (ए, ऐ, ओ, औ इन के) ह्रस्व स्वरूप नहीं हैं।

तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ॥८॥

वे भी बारहभेद वाले हैं।

छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया अर्धमेकारमर्धमोकारं [च] पठन्ति ॥९॥

सामवेदियों में से सात्यमुग्रि-राणायनीयशाखाध्यायी लोग आधे एकार को और आधे ओकार को (भी) पढते हैं।

तेषामप्यष्टादशप्रभेदानि ॥१०॥

(तब) उनका भी अठारह भेद होते हैं।

अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च ॥११॥

रेफ को छोडकर अन्य अन्तस्था (य, ल, व) सानुनासिक और निरनुनासिक दो भेद वाले होते हैं।

रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति ॥१२॥

रेफ के और ऊष्माओं के सवर्ण नहीं हैं।

वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः ॥१३॥

उसी वर्ग का एक वर्ण उसी वर्ग के दूसरे वर्ण का सवर्ण कहा जाता है।

७. प्रक्रमप्रकरणम्

एष क्रमो वर्णानाम् ॥१॥

यह वर्णों का क्रम है।

तत्रैषां स्थानकरणप्रयत्नानां कथं प्रसिद्धिरित्युच्यते ॥२॥

उसमें इन स्थान, करण और प्रयत्न शब्द के प्रयोग की शिक्षाशास्त्र में प्रसिद्धि कैसे हुई? यह बात बताई जाती है।

इह यत्र स्थाने वर्णा उपलभ्यन्ते तत् स्थानम् ॥३॥

इस शास्त्र में जिस स्थान में वर्ण पाए जाते हैं (अभिव्यक्त होते हैं) वह स्थान है।

येन निर्वर्त्यन्ते तत् करणम् ॥४॥

जिस (अङ्ग) से वर्ण अभिव्यक्त किए जाते हैं वह करण है।

प्रयतनं प्रयत्नः ॥५॥

चेष्टाविशेष प्रयत्न कहा जाता है।

उत्साहः प्रयत्नः ॥६॥

उत्साह प्रयत्न है।

स्पृष्टताऽऽदि वर्णगुणः ॥७॥

स्पृष्टता ईषत्स्पृष्टता इत्यादि वर्णों का गुण कहा जाता है।

८. नाभितलप्रकरणम्

तत्र नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुर-आदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते। विधार्यमाणः सोऽपि तत्स्थानानि विहन्ति। तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यत आकाशे, सा वर्णश्रुतिः। स वर्णस्याऽऽत्मलाभः ॥१॥

उसमें नाभिप्रदेश से प्रयत्न से प्रेरित प्राण नाम का वायु ऊपर चढता हुआ उर इत्यादि स्थानों में से किसी स्थान में प्रयत्न से रोका जाता है। रोका गया वह वायु भी उस स्थान को ठोकता है। स्थान के उस ठोकाव से आकाश में ध्वनि उत्पन्न होता है, वह वर्ण की श्रुति है। वह वर्ण के स्वरूप का लाभ है।

तत्र वर्णानामुत्पद्यमाने यदा स्थानकरणप्रयत्नपर्यन्तं परस्परं स्पृशति सा स्पृष्टता ॥२॥

उसमें वर्ण उत्पन्न होते रहने पर जब स्थान, करण और प्रयत्न परस्पर मिलते हैं, उसको स्पृष्टता कहते हैं।

यदेषत् स्पृशति सा ईषत्स्पृष्टता ॥३॥

जब थोडा ही मिलते हैं, वह ईषत्स्पृष्टता है।

यदा दूरेण स्पृशति सा विवृता ॥४॥

जब दूर से स्पर्श करते हैं, वह विवृतता है।

यदा सामीप्येन स्पृशति सा संवृता ॥५॥

जब नजदीक से स्पर्श करते हैं, वह संवृतता है।

एषोऽन्तःप्रयत्नः ॥६॥

यह अन्तःप्रयत्न (आभ्यन्तर प्रयत्न) है।

अथ बाह्यः प्रयत्नः ॥७॥

अब बाह्य प्रयत्न कहा जाता है।

स एवेदानीं प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रम्य मूर्ध्नि प्रतिहते निवृत्तो भवति तदा कोष्ठे संहन्यमाने गलबिलस्य संवृतत्वात् संवारो नाम वर्णधर्मो जायते विवृतत्वाद् विवारः ॥८॥

इस समय में वही प्राण नाम से प्रसिद्ध वायु ऊपर चढकर मूर्धा में ठोककर खाकर जब लौटा हुआ होता है तब फुस्फुस (फेफडे) के कोष्ठ में अभिहत होने पर कण्ठविवर सङ्कुचित होने से संवार नाम से प्रसिद्ध वर्ण-धर्म उत्पन्न होता है, कण्ठविवर खुला हुआ होने से विवार (नाम से प्रसिद्ध वर्णधर्म उत्पन्न होता है)।

तौ संवारविवारौ ॥९॥

वे (क्रमशः) संवार और विवार हैं।

तत्र यदा कण्ठबिलं संवृतत्वं (संवृतं) तदा नादो जायते ॥१०॥

उसमें जब कण्ठविवर सङ्कुचित होता है तब नाद उत्पन्न होता है।

विवृते तु कण्ठबिले श्वासोऽनुजायते ॥११॥

कण्ठविवर खुला होने पर श्वास उत्पन्न होता है।

तौ श्वासनादावनुप्रदानावित्याचक्षते ॥१२॥

उन श्वास और नाद को अनुप्रदान ऐसा कहते हैं।

अन्ये श्वासनादानुप्रदानं व्यञ्जने नादवत् ॥१३॥

अन्य लोग श्वास-नादरूप अनुप्रदान को व्यञ्जन में अनुनाद की तरह बताते हैं। (इस सूत्र का पाठ भ्रष्ट प्रतीत होता है, आपिशलिशिक्षासूत्र का पाठ और काशिका की न्यासव्याख्या में उद्धृत पाठ (१।१।५०) द्रष्टव्य है)।

तत्र यदा नाभिस्थ(त)लजध्वनौ नादोऽनुप्रदीयते तदा नादध्वनि-संसर्गाद् घोषो जायते ॥१४॥

उसमें जब नाभिस्थ(त)ल से उत्पन्न होने वाले ध्वनि में नाद मिलाया जाता है तब नादध्वनि के मिश्रण से घोष उत्पन्न होता है।

यदा श्वासोऽनुप्रदीयते तदा श्वास[ध्वनि]संसर्गाद् अघोषो जायते ॥१५॥

जब श्वास मिलाया जाता है तब श्वासध्वनि के संसर्ग (मिश्रण) से अघोष उत्पन्न होता है।

सा घोषवदघोषता ॥१६॥

वह घोषवत्त्व और अघोषता है।

महति वायौ महाप्राणः ॥१७॥

(वर्ण के उच्चारण में) बडा (ज्यादा) वायु प्रयुक्त होने पर वर्ण महा-प्राण (कहा जाता है)।

अल्पे वायावल्पप्राणः ॥१८॥

(वर्ण के उच्चारण में) थोडा वायु प्रयुक्त होने पर वर्ण अल्पप्राण (कहा जाता है)।

साऽल्पप्राणमहाप्राणता ॥१९॥

वह अल्पप्राणता और महाप्राणता है।

[यत्र] महाप्राणत्वम् ऊष्माणस् ते ॥२०॥

(जहाँ) महाप्राणत्व है वे ऊष्मा (ऊष्मसदृश) हैं।

तत्र यदा सर्वाङ्गानुसारिप्रयत्नस् तीव्रो भवति, तदा गात्राणां निग्रहः, कण्ठबिलस्य चाऽल्पत्वं स्वरस्य वायोस् तीव्रगतित्वाद् रौक्ष्यं भवति– तमुदात्तमाचक्षते ॥२१॥

उसमें जब सभी अङ्गों में होने वाला प्रयत्न तीव्र होता है, गात्रों का (कण्ठविवर की तन्त्रियों का) निग्रह (कडापन) होता है, कण्ठविवर छोटा होता है, वायु तीव्रगतिवाला होने से स्वर की रूक्षता (तीक्ष्णता) होती है तब (उस प्रकार की उच्चारण-प्रक्रिया से उच्चरित) उस स्वर को अथवा वर्ण को उदात्त कहते हैं।

यदा मन्दः प्रयत्नो भवति तदा गात्राणां प्रसन्नत्वम्, कण्ठबिलस्य च महत्त्वं स्वरस्य च वायोर् मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति। तमनुदात्तमाचक्षते ॥२२॥

जब (सभी अङ्गों में होने वाला) प्रयत्न मन्द होता है, तब गात्रों का (कण्ठविवर की तन्त्रियों का) सन्नत्व (शिथिलत्व) होता है, कण्ठविवर बडा होता है, वायु मन्दगति वाला होने से स्वर की स्निग्धता (अरूक्षता) होती है तब (उस प्रकार की उच्चारण प्रक्रिया से उच्चरित) उस स्वर को अथवा वर्ण को अनुदात्त कहते हैं।

उदात्ताऽनुदात्तसन्निकर्षात् स्वरित इति ॥२३॥

उदात्त का और अनुदात्त का संयोग से स्वरित स्वर उत्पन्न होता है।

स एवं प्रयत्नोऽभिनिर्वृत्तः कृत्स्नः प्रयत्नो भवति ॥२४॥

वह इस प्रकार से निष्पन्न सम्पूर्ण प्रयत्न होता है।

स एवमापिशलेः पञ्चदशभेदाख्या वर्णधर्मा भवन्ति ॥२५॥

वह इस प्रकार से आपिशलि के मत में पन्द्रह भेद वाले वर्णधर्म होते हैं।

तद् यथा—

स्पृष्टता ईषत्स्पृष्टता विवृ(त)ता सं(वि)वृ(त)ता च।
संवारविवारौ श्वासनादौ घोषवदघोषता ॥
अल्पप्राणमहाप्राणता उदात्ताऽनुदात्तस्वरि(त)ता। इति ॥२६॥

वह जैसे कि— स्पृष्टता, ईषत्स्पृष्टता, विवृतता, संविवृतता (संवृतता), संवार, विवार, श्वास, नाद, घोषवत्ता, अघोषता, अल्पप्राणता, महाप्राणता, उदात्तता, अनुदात्तता और स्वरितता। ऐसे (वर्णधर्म हैं)।

इदानीं शिक्षाग्रन्थः श्लोकैरुपसंह्रियते ॥२७॥—

अब शिक्षाग्रन्थ का श्लोकों से उपसंहार किया जाता है—

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस् तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश् च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥२८॥

उर, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु ये आठ वर्णों के स्थान हैं।

स्पृष्टत्वमीषत्स्पृष्टत्वं संवृतत्वं तथैव च।
विवृतत्वं च वर्णानामन्तःकरणमुच्यते ॥२९॥

स्पृष्टत्व, ईषत्स्पृष्टत्व, संवृतत्व और विवृतत्व ये वर्णों का अन्तःकरण (आभ्यन्तर प्रयत्न) कहे जाते हैं।

कालो विवारसंवारौ श्वासनादावघोषता।
घोषोऽल्पप्राणता चैव महाप्राणः स्वरास् त्रयः ॥३०॥

काल, विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोषत्व, घोषत्व, अल्पप्राणता, महाप्राणता, तीन स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित)।

बाह्यं करणाहुस् तान् वर्णानां वर्णवेदिनः ॥३१॥

॥ इति पाणिनीयशिक्षासूत्रं समाप्तम् ॥

वर्णों को जानने वाले लोग उनको वर्णों के बाह्य करण (बाह्य प्रयत्न) कहते हैं।

॥ इस प्रकार पाणिनीयशिक्षासूत्र समाप्त हुआ ॥

४. श्लोकपादानुक्रमणिका

अक्षताऽशस्त्ररूपेण ५३.३
अग्निः सोमः प्र वो वीर्यम् ४६.१
अघोषा विवृताः स्मृताः २०.४
अचोऽस्पृष्टा यणस् त्वीषत् ३८.१
अज्ञानाऽन्धस्य लोकस्य ५९.१
अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि १.१
अ(म)धिगम्य महेश्वरात् ५७.२
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश् च ३२.३
अ(व)नुदात्त ऋषभधैवतौ १२.२
अनुदात्तो हृदि ज्ञेयः ४८.१
अनुस्वारयमानां च २२.१
अनुस्वारस् तु कर्तव्यः २३.३
अनुस्वारे विवृत्त्यां तु २४.१
अनुस्वारो विसर्गश् च ५.१
अ(म)न्तस्थाभिश् च संयुतम् १६.२
अन्तोदात्तमाद्युदात्त-(म्) ४५.१
अ(म)पवर्णं च भक्षितम् ५०.२
अमोऽनुनासिका अह्रः ३९.१
अयोगवाहा विज्ञेयाः २२.३
अर्धमात्रस् तु मूर्धनि २८.२
अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य १९.१
अलाबुवीणानिर्घोषः २३.१
अवक्षरं ह्यनायुष्यम् ५३.१
अ(म)विज्ञातमबुद्धिभिः २.२
अ(म)व्यक्तमनुनासिकम् ३४.२
अष्टौ स्थानानि वर्णाना-(म्) १३.१
आत्मा बुद्ध्या समर्थ्याऽर्थान् ६.१
आश्रयस्थानभागिनः २२.४
इति वर्णविदः प्राहुः १०.३
ईषच्छ्वासाँश् चरो विद्याद् ४०.१
ईषन्नादा यण्-जशस् तु ३९.३
उ(मु)कारादिपरं पदम् १५.२
उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् ४४.१
उ(मु)दात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ४५.२
उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनाम् ४३.१
उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च ११.१
उदात्ते निषादगान्धारा-(रौ) १२.१
उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तम् ३५.१
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च ४३.३
उ(मु)भौ पार्श्वौ समौ भवेत् ३०.२
उ(मु)रः कण्ठः शिरस् तथा १३.२
उरस्यं तं विजानीयात् १६.३
ऋग्-यजुः-सामभिः पूतः ५५.३
ऋग्-यजुः-सामभिर् दग्धः ५४.३
लृकारः प्लुत एव च ५.४
एऐ तु कण्ठ्यतालव्यौ १८.३
एकारौकारयोर् मात्रा १९.३
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः २६.३
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः ३१.१
ऐकारौकारयोर् भवेत् १९.२
ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ १८.४
ओभावश् च विवृत्तिश् च १४.१
ꣲकꣲपौ चाऽपि पराश्रितौ ५.२
कण्ठे माध्यन्दिनयुगम् ८.१
कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् १६.४
कण्ठ्यावहाविचुयशाः १७.१
कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ४३.४
कांस्येन समनुस्वरन् २९.२

काकस्वरं शिरसिगम् ३४.३
कालतो नियमा अचि ११.४
कुतीर्थादागतं दग्ध-(म्) ५०.१
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तम् ५७.३
खे अराऽँ इव खेदया २६.४
गतिरष्टविधोष्मणः १४.४
गीती शीघ्री शिरःकम्पी ३२.१
गोर् धामैतत् प्रचक्षते ४०.२
घोषा वा संवृताः सर्वे २०.३
चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन ३६.४
चक्षुरुन्मीलितं येन ५९.३
चत्वारश् च यमाः स्मृताः ४.४
चाषस् तु वदते मात्राम् ४९.१
छन्दः पादौ तु वेदस्य ४१.१
छन्दो गायत्रमाश्रितम् ७.४
जघन्वाऽँ इति निदर्शनम् २९.४
जिह्वामूलं च दन्ताश् च १३.३
जिह्वामूलमुपध्मा च १४.३
जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः १८.१
ज्ञानाऽञ्जनशलाकया ५९.२
ज्योतिषामयनं चक्षुः ४१.३
तक्राऽँ इत्यभिभाषते २६.२
तथा लिखितपाठकः ३२.२
तथा स्थानविवर्जितम् ३४.४
तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत् २५.४
तमश् चाऽज्ञानजं भिन्नम् ५८.३
तयोर् विवृतसंवृतम् १९.४
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ४२.३
तस्मै पाणिनये नमः ५७.४
तस्मै पाणिनये नमः ५८.४
तस्मै पाणिनये नमः ५९.४
ताभ्यामैचौ तथैव च २१.४
तारं तार्तीयसवनम् ८.३
तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयम् ३७.१
तालव्या ओष्ठजावुपू १७.२
तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ३७.४
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ २१.३
त्रिनयनमुखनिस्सृतामिमाम् ६०.१
त्रिषष्टिश् चतुष्षष्टिर् वा ३.१
त्र्युदात्तमिति नव पदशय्याः ४५.४
दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् २५.२
दन्तमूल्यः स्वरानुगः २३.२
दन्तोष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः १८.२
दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः १७.४
दाक्षीपुत्रः पाणिनेयः ४०.३
दाक्षीपुत्राय धीमते ५६.२
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् २७.३
दुस्स्पृष्टश् चेति विज्ञेयः ५.३
देवीं वाचमिति स्थितिः ५६.४
द्विमात्रं चैव वायसः ४९.२
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् २४.३
धैर्यं लयसमर्थं च ३३.३
नकुलस् त्वर्धमात्रकम् ४९.४
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति ५०.३
नादिनो ह-झषः स्मृताः ३९.२
नाऽव्यक्ता न च पीडिताः ३१.२
नासिकायां तथाऽर्धं च २८.३
नासिका स्थानमुच्यते २२.२
नासिकोष्ठौ च तालु च १३.४
नित्यं ह्रोः शषसेषु च २३.४
निपुणं तन् निबोधत १०.४
निबोधाऽनुप्रदानतः ३८.४

निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते	४१.४
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च	३५.३
निहतं तु कनिष्ठिक्याम्	४४.३
नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः	३८.२
नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम्	२७.२
पदच्छेदस् तु सुस्वरः	३३.२
पश्चान् नासिक्यमाचरेत्	२७.४
पाणिनीयं मतं यथा	१.२
पापाहेरिव किल्बिषात्	५०.४
पुनर् व्यक्तीकरिष्यामि	२.३
प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम्	४४.२
प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा	४३.२
प्रयत्नाऽनुप्रदानतः	१०.२
प्रयुक्तं ब्रह्म राजते	५१.४
प्रसिद्धमपि शब्दार्थ-(म्)	२.१
प्राकृते संस्कृते चाऽपि	३.३
प्रातः पठेन् नित्यमुरःस्थितेन	३६.१
प्रातस्सवनयोगं तम्	७.३
ब्रह्मलोके महीयते	३१.४
ब्रह्मलोके महीयते	४२.४
ब्रह्मलोके महीयते	५५.४
भीता पतनभेदाभ्याम्	२५.३
म(अ)धिगम्य महेश्वरात्	५७.२
मध्यमं त्रैष्टुभाऽनुगम्	८.२
मध्ये तु कम्पयेत् कम्प-(म्)	३०.१
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तम्	४५.३
मनः कायाऽग्निमाहन्ति	६.३
मनो युङ्क्ते विवक्षया	६.२
म(अ)न्तस्थाभिश् च संयुतम्	१६.२
मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा	५२.१
मन्द्रं जनयति स्वरम्	७.२
म(अ)पवर्णं च भक्षितम्	५०.२
मयूरहंसान्यभृतस्वराणाम्	३७.३
म(अ)विज्ञातमबुद्धिभिः	२.२
म(अ)व्यक्तमनुनासिकम्	३४.२
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः	३३.१
माध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव	३६.३
मारुतस् तूरसि चरन्	७.१
मार्दवं च द्विमात्रं च	२९.३
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह	५२.२
मु(उ)कारादिपरं पदम्	१५.२
मुखं व्याकरणं स्मृतम्	४२.२
मु(उ)दात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्	४५.२
मु(उ)भौ पार्श्वौ समौ भवेत्	३०.२
मु(उ)रः कण्ठः शिरस् तथा	१३.२
मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः	४८.२
य इह पठेत् प्रयतः सदा द्विजः	६०.२
यथा सौराष्ट्रिका नारी	२६.१
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्	५२.४
यथोक्तं लोकवेदयोः	१.४
यथौकार-वकारयोः	२४.४
यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः	१५.४
यद्योकारप्रसन्धान-(म्)	१५.१
यादयश् च स्मृता ह्यष्टौ	४.३
येन धौता गिरः पुंसाम्	५८.१
येनाऽक्षरसमाम्नाय-(म्)	५७.१
येनेदं व्याहृतं भुवि	४०.४
रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्	२७.१
रङ्गस्यैवं द्विमात्रता	२८.४
रथीवेति निदर्शनम्	३०.४
वक्त्रमापद्य मारुतः	९.२
वज्रं पतति मस्तके	५३.४

वदेन् न दीनं न तु सानुनास्यम् ३५.४
व(अ)नुदात्त ऋषभधैवतौ १२.२
वर्णाः सम्भवतो मताः ३.२
वर्णाञ् जनयते तेषाम् ९.३
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य ५६.३
वाच उच्चारणे विधिम् २.४
विभागः पञ्चधा स्मृतः ९.४
विमलैः शब्दवारिभिः ५८.२
वियोनिमधिगच्छति ५४.४
विरामे चाऽक्षरद्वये २४.२
विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ३५.२
विवृतं करणं स्मृतम् २१.२
विवृतं तु द्विमात्रिकम् २०.२
विस्वरं व्याधिपीडितम् ५३.२
व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् २५.१
शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद् ५६.१
शङ्कितं भीतमुद्घुष्ट-(म्) ३४.१
शषसा रेफ एव च १४.२
शास्त्रानुपूर्वं तद् विद्याद् १.३
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य ४२.१
शिखी रौति त्रिमात्रं तु ४९.३
शिरोगतं तच् च सदा प्रयोज्यम् ३७.२
शीर्षण्यं जागताऽनुगम् ८.४
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ताः ३८.३
श्वासिनस् तु खफादयः ३९.४
षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः १२.४
षडेते पाठका गुणाः ३३.४
षडेते पाठकाऽधमाः ३२.४
संवृतं मात्रिकं ज्ञेयम् २०.१
स प्रेरयति मारुतम् ६.४
स भवति धनधान्यकीर्तिमान् ६०.३
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ३१.३
सरङ्गं कम्पयेत् कम्पम् ३०.३
सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ४८.४
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति ५२.३
सुखमतुलं च समश्नुते दिवि इति ६०.४
सुतीर्थादागतं व्यक्तम् ५१.१
सुस्वरेण सुवक्त्रेण ५१.३
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतः ९.१
स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ४.२
स्युर् मूर्धन्या ऋटुरषाः १७.३
स्वयम् प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ३.४
स्वरतः कालतः स्थानात् १०.१
स्वरवर्णविवर्जितम् ५४.२
स्वर-वर्णा-ऽर्थसंयुतम् ५५.२
स्वराणामूष्मणां चैव २१.१
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् १५.३
स्वरा विंशतिरेकश् च ४.१
स्वरितः कर्णमूलीयः ४८.३
स्वरितप्रभवा ह्येते १२.३
स्वरितश् च स्वरास् त्रयः ११.२
स्वरितोप कनिष्ठिकाम् ४४.४
स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ३६.२
स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम् ५१.२
हकारं पञ्चमैर् युक्त-(म्) १६.१
हविषां स्वर् बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती ४६.२
हस्तहीनं तु योऽधीते ५४.१
हस्तेन वेदं योऽधीते ५५.१
हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ४१.२
हृदयादुत्करे तिष्ठन् २९.१
हृदये चैकमात्रस् तु २८.१
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति ११.३

५. आधारग्रन्थाः सहायकग्रन्थाश् च

१. आत्रेयशिक्षा, अमुद्रिता अपूर्णा च, विश्वेश्वरानन्द-विश्वबन्धु-भारत-भारत्यनुशीलनसंस्थान, होशियारपुर, हस्तलिखितग्रन्थसंख्या ४३७१; (अन्या आत्रेयशिक्षा ह्याम्बर्गनगरे २९४ श्लोकात्मिका पूर्णा च प्राप्यते इति वेदलक्षणग्रन्थविवरणे परमेश्वर ऐतालः।)

२. आपस्तम्बधर्मसूत्रम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९६९ क्रै.।

३. आपिशलशिक्षा (शिक्षासूत्राणि), अजमेरम्, २०२४।

४. ऋक्तन्त्रम्, दिल्ली, १९७० क्रै.।

५. ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्, वर्गद्वयवृत्त्या उव्वटभाष्येण च युतम्, वाराणसी, १९७० क्रै.।

६. ऋग्वेदसंहिता, प्रथम भाग, वैदिकसंशोधनमण्डल, पुणे, १९७२ क्रै.।

७. कामन्दकीयनीतिसारः, आनन्दाश्रमः, पुणे, १९७७ क्रै.।

८. कौटलीयार्थशास्त्रम्, मैसुरु, १९६० क्रै.।

९. कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा, स्वाद्ध्यायशाला; १६८, शिवभक्तमार्ग, लाजिम्पाट्, काठमाण्डु–२, नेपाल, फोन नं. ००९७७–१–४४३३३२७ ; २०४९ वै.।

१०. कौहलीयशिक्षा, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

११. तृतीयप्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्रम् (गोत्रचरणपृच्छाप्रतिज्ञासूत्रम्), नासिक, १९४४ क्रै.।

१२. गौतमीयशिक्षा, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९–१८९३ क्रै.।

१३. चरणव्यूहसूत्रम्, शौनककृतम्, वाराणसी, १९३८ क्रै.।

१४. चारायणीयशिक्षा, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

१५. छन्दश्शास्त्रम्, पुनर्मुद्रितम्, दिल्ली १९८१ क्रै.।

१६. छन्दःसूत्रभाष्यम्, श्रीयादवप्रकाशकृतम्, दि एसियाटिक सोसाइटि, १९७७ क्रै.।

१७. छन्दोमञ्जरी, सटीका वङ्गानुवादादिसहिता, रामधनभट्टाचार्यसम्पादिता, धरमतलाष्ट्रीट ५६, कलकत्ता, १९३५ क्रै.।

१८. **तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्**, मैसूर १९०६ क्रै.।

१९. **तैत्तिरीयसंहिता**, ८ भाग, आनन्दाश्रम, पुणे, १९५९ क्रै.।

२०. **तैत्तिरीयारण्यकम्**, आनन्दाश्रमः, पुण्यपत्तनम्, १९६७ क्रै.।

२१. **तैत्तिरीयोपनिषत्** (शङ्करभगवत्पादादिव्याख्यासहिता)।

२२. **दन्त्योष्ठविधिः**, लवपुरम् (लाहौर), १९७७ वै.।

२३. **नारदीयशिक्षा**, दतिया, मध्यप्रदेश, २०२१ वै.।

२४. **नारदीयशिक्षा**, शोभाकरव्याख्यासहिता, भाण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधन-मन्दिर, पुणे, १९८६ क्रै.।

२५. **नारदीयशिक्षा**, आचार्यकौण्डिन्न्यायनकृतव्याख्यासहिता, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००२ क्रै.।

२६. **पथ्या स्वस्ति**, राजस्थानप्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६९ क्रै.।

२७. **पाणिनीयव्याकरणभाष्यम् (महाभाष्यम्)**, प्रदीपोद्योतसहितम्, दिल्ली, १९६७ क्रै.।

२८. **पाणिनीयव्याकरणभाष्यटीका**, चतुर्थाह्निकान्ता, भर्तृहरिविरचिता, वाराणसी, २०२१ वै.।

२९. **पाणिनीयशिक्षा**, सज्जनलालप्रकाशिता, वाराणसी, १८५० क्रै.।

३०. **पाणिनीयशिक्षा**, वेबरसम्पादिता, जर्मनि, १८५८ क्रै.।

३१. **पाणिनीयशिक्षा**, भाष्येण सहिता, बेचनरामत्रिपाठिपरिशोधिता, वाराणसी, १८८७ क्रै.।

३२. **पाणिनीयशिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी १८८९–१८९३ क्रै.।

३३. **पाणिनीयशिक्षा**, वेदस्य षडङ्गानि इति सङ्ग्रहे मुद्रिता, तत्त्वविवेक-मुद्रणालय, मुम्बई, १८९२ क्रै.।

३४. **पाणिनीयशिक्षादिसङ्ग्रहः**, कनकलालशर्ममैथिलसंशोधितः, वाराणसी, १९२३ क्रै.।

३५. **पाणिनीयशिक्षा**, सिद्धान्तकौमुदीपरिशिष्टरूप में मुद्रित, वेङ्कटेश्वर प्रेस्, १९२६ क्रै.।

३६. पाणिनीयशिक्षा, शिक्षादिवेदषडङ्ग में संलग्न, निर्णयसागर प्रेस्, १९०९, १९३४ क्रै.।

३७. पाणिनीयशिक्षा, प. नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी, वाराणसी, १९९० वै.।

३८. पाणिनीयशिक्षा, प. कालीप्रसादमिश्र, वाराणसी, १९९० वै.।

३९. पाणिनीयशिक्षा, मनोमोहन घोष, कोलकाता, १९३८ क्रै., पुनर्मुद्रण दिल्ली, १९८६ क्रै.।

४०. पाणिनीयशिक्षा, प्रदीपसहिता, प. रुद्रप्रताप अवस्थी, वाराणसी, १९४७ क्रै.।

४१. पाणिनीयशिक्षा, प. गुरुप्रसादशास्त्री, वाराणसी, २००५ वै.।

४२. पाणिनीयशिक्षायाः शिक्षान्तरैः सह समीक्षा, डा. मधुकर फाटक, वाराणसी, २०२९ वै.।

४३. पाराशरीयशिक्षा, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९-१८९३ क्रै.।

४४. पारिशिक्षा, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता, २०४९ वै.।

४५. पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम् हलायुधवृत्तिसहितम्, छात्रपुस्तकालय, गोपीमोहनदत्त-लेन ३०, कलिकाता, शक १८४०।

४६. प्रतिज्ञासूत्रम्, शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यपरिशिष्टतया मुद्रितम्, वाराणसी, १८८८ क्रै.।

४७. प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९-१८९३ क्रै.।

४८. माण्डूकीयशिक्षा, भगवद्दत्तसम्पादिता, लाहौर, १९२१ क्रै., पुनर्मुद्रण दिल्ली, १९८१ क्रै.।

४९. माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुर्क्लयजुर्वेदशतपथब्राह्मणम्, मुम्बयी, १९४० क्रै.।

५०. याज्ञवल्क्यशिक्षा, शिक्षावल्लीसहिता, वाराणसी, २०१९ वै.।

५१. लघुऋक्तन्त्रसङ्ग्रहः, लाहौर, १९४० क्रै.।

५२. लोमशीयशिक्षा, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९-१८९३ क्रै.।

५३. वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, १९८९ क्रै.।

५४. व्यासशिक्षा, वेदतैजसव्याख्यायुता, वाराणसी, १९७६ क्रै.।

५५. शब्दकौस्तुभः (नवाह्निकभागः), नेपाली-सौभाग्य-पुस्तकालय, काशी।

५६. **शम्भुशिक्षा,** अमुद्रिता, सरस्वतीविहार-पुस्तकालय, हौजखास, नई दिल्ली।

५७. **शिक्षाप्रकाशव्याख्या** (पाणिनीयशिक्षाव्याख्या), शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, १९८९ क्रै.।

५८. **शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यम्,** युगलकिशोरपाठकसम्पादितम्, वाराणसी, १८८८ क्रै.।

५९. **शैशिरीयशिक्षा,** कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

६०. **शौनकीयशिक्षा,** व्याख्यासहिता, के. के. दिवाकर द्विजेन्द्र, त्रिपुणित्तुर, केरल, १९६२ क्रै.।

६१. **सम्प्रदायप्रबोधिनी शिक्षा,** प. गोपालचन्द्र मिश्र, वाराणसी (१९६४ क्रै.)।

६२. **सर्वसम्मतशिक्षा,** कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

६३. **सुश्रुतसंहिता,** मुम्बई, १९३१ क्रै.।

६४. **Critical Studies in the Phonetic Observations of Indian Grammarians,** by Dr. Siddheswar Varma, London 1929, Delhi 1961.

६५. **Critical Studies on Katyayana's Śukla Yajurveda Prati-śakhya,** by V. Venkatarama Śarma, University of Madras, 1935.

६६. **Sanskrit Historical Phonology,** by Franklin Edgerton, U.S.A., 1946.

६७. **Phonetics In Ancient India,** by W.S. Allen, London, 1953.

६८. **A Critical Study of Sanskrit Phonetics,** by Dr. Vidhata Mishra, Varanasi, 1972.

६९. **A Dictionary of Sanskrit Grammar,** Kashinath Vasudev Abhyankar & J. M. Shukla; Baroda, 1977.

७०. **Vedalakṣaṇa, Vedic Ancillary Literature (A Descriptive Bibliography),** K. Parameswara Aithal, Motilal Banarsidass, Delhi, 1993; (Heidelberg, 1991).

अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

अथर्ववेदसंहिता । सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप गौड़ कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित। (१-८ भाग सम्पूर्ण)

ऋग्वेदसंहिता । पदपाठ, सायणाचार्यकृत भाष्य एवं रामगोविन्द त्रिवेदी हिन्दी व्याख्या सहित। (१-९ भाग सम्पूर्ण)

कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा (A Complete and Critical Study of Vedic & Sanskrit Phonetics, 1992) शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन। इस ग्रन्थ में प्राप्य सभी प्रातिशाख्यग्रन्थ तथा संस्कृत-शिक्षाग्रन्थों का समीक्षापूर्ण सार ११५८ कारिकाओं में प्रतिपादित है और उन कारिकाओं की प्रमाणवचनपूर्ण संस्कृतव्याख्या भी है।

नारदीय-शिक्षा (Theory of Classical Music & Phonetics According to Samavedic School) परीक्षोपयोगी तथा शोधोपलब्धिपूर्ण संस्कृत व्याख्या, 'नारायणी' हिन्दी टीका एवं भारतीय गान परम्परा एवं नारदीयशिक्षा के विशेष परिचय सहित। शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन।

पुरुषसूक्तभाष्य-संग्रह । डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी

मूल-संस्कृत उद्धरण । (ओरिजिनल संस्कृत टेक्ट्स) लेखक—प्रो. जे. मुइर। हिन्दी अनुवाद-डॉ. रामकुमार राय।

वेदभाषानिघण्टु । कौण्डिन्न्यायनकोषः (Vedic concordance) भूलोककाण्डान्तर्गत देववर्ग तथा ब्रह्मवर्गात्मक।

वैदिक इण्डेक्स । (वैदिक-कोष) मैकडोनेल एवं कीथ। हिन्दी रूपान्तरकर्त्ता डॉ. रामकुमार राय। १-२ भाग सम्पूर्ण

वैदिकमन्त्रसंग्रहः । (A Collection of Mantras for Grihya Rituals of Maddhyandineeya recension of Shuklayajurveda)। माद्ध्यन्दिनीय वाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायिनिरग्निकद्विज-सदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि मन्त्रों का संग्रह। शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

KP